

!! जय गुरुदेव !!

# वाल्मीकि रामायण तथा महाभास्त में ऋषि तत्व एक परिशीलन

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)  
की विद्या-वारिधि (पी-एच०डी०)  
उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध



निर्देशक

डॉ. जगतनारायण दुबे

भूतपूर्व अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)

संस्कृत विभाग

सी०एम०दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय  
विलासपुर (छ.ग.)

अनुसंधात्री

श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री









यह पुस्तक देय नहीं है।

सन्दर्भ पुस्तक

17335







सूक्तोक्तं देव सुगुणीत  
सुवनेश्वरि  
सङ्काय प्रमुखः / विष्णोः  
महर्षि वेद विज्ञान सङ्कायः  
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालयः  
जबलपुरम् - म.प्र.



महेश्वरी मंत्र  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



**!! जय गुरुदेव !!**

# **वाल्मीकि रामायण तथा महाभास्त में ऋषि तत्व एक परिशीलन**

**महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)  
की विद्या-वारिधि (पी-एच०डी०)  
उपाधि हेतु प्रस्तुत**

## **शोध-प्रबन्ध**



**निर्देशक**

**डॉ. जगतनारायण दुबे**

**भूतपूर्व अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)**

**संस्कृत विभाग**

**सी०एम०दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय  
बिलासपुर (छ.ग.)**

**अनुसंधात्री**

**श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री**







!! जय गुरुदेव !!

# वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत में ऋषि तत्व एक परिशीलन

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)

की विद्या-वारिधि (पी-एच०डी०)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध



निर्देशक

डॉ. जगतनारायण दुबे

भूतपूर्व अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)

संस्कृत विभाग

सी०एम०दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बिलासपुर (छ.ग.)

अनुसंधात्री

श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री







## घोषणा-पत्र

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ०ग०) में विद्या-वारिधि (पी-एच०डी०) की उपाधि के लिए “**वाल्मीकि रामायण व महाभारत के ऋषि तत्त्व - एक परिशीलन**” नामक यह शोध प्रबंध मेरे द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

मैं यह घोषणा करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबंध की विषय वस्तु पर कोई भी शोध कार्य “विद्या वारिधि” उपाधि के लिये किसी भी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

अनुसंधात्री  
किशोरी अग्निहोत्री  
श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री  
एम०ए०(संस्कृत)

---०००---



## प्रश्न-उत्तर

प्रश्न-प्रश्न :- (१०००) प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्न (१०००-१०)  
प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
प्रश्न के प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न

प्रश्नप्रश्न  
प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न प्रश्नप्रश्न  
(१०००) प्रश्नप्रश्न



## प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती किशोरी अग्रिहोत्री ने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ०ग०) में विद्या-दायिनि (पी-एच०डी०) की उपाधि के लिए “वाल्मीकि रामायण व महाभारत के कथित तत्त्व - एक विश्लेषण” नामक शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया किया गया है, यह शोध प्रबंध श्रीमती किशोरी अग्रिहोत्री की पूर्णतः मौलिक कृति है, जिसे उन्होंने अपनी मेहनत व लगन से प्रस्तुत एवं पुष्पित किया है।

निर्देशक

डॉ० जगतनारायण दुबे

पुस्तक अध्येक्ष (अवकाश प्राप्त)

संस्कृत विभाग

सी०एच०दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बिलासपुर (छ०ग०)

---०००---



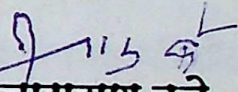




## प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री ने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ०ग०) में विद्या-वारिधि (पी-एच०डी०) की उपाधि के लिए “**वाल्मीकि रामायण व महाभारत के ऋषि तत्व - एक परिशीलन**” नामक शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया किया गया है, यह शोध प्रबंध श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री की पूर्णतः मौलिक कृति है, जिसे इन्होंने अपनी मेहनत व लगन से पल्लवित एवं पुष्पित किया है।

निर्देशक

  
डॉ० जगतनारायण दुबे

भूतपूर्व अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)

संस्कृत विभाग

सी०एम०दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय  
बिलासपुर (छ.ग.)

---०००---







## आभार अभिव्यक्ति

प्रारंभ से ही गृह का वातावरण धार्मिक रहने के कारण मेरी अभिरुचि धार्मिकता की ओर ही रही। मेरी पूज्यनीया दादी माँ नित्य रामायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता रूपी अमृत वचन मेरे कानों को श्रवण करती थीं। इन्हीं से प्रेरणा मिलने के कारण मैं एम०ए० संस्कृत में करने का निश्चय किया और पुनः मुझमें संस्कृत में पी-एच०डी० करने की अभिव्यक्ति जागृत हुई।

मेरी प्रारंभ से ही इच्छा रही कि क्यों न मैं रामायण एवं महाभारत के गूढ़ तत्वों एवं ऋषि-मुनियों के आदर्शों को जानकर गृह एवं समाज के वातावरण को और अधिक रूप से समृद्ध करूँ, जिससे समाज में व्याप्त बुराईयों एवं जनाधार को स्वच्छ वातावरण मिले।

यथावसर मुझे “बाल्मीकि रामायण व महाभारत में ऋषि तत्व एक परिशीलन” नामक विषय पर शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। रामायण एवं महाभारत ऋषि संबंधी विलक्षणताओं से भरा पड़ा है। तथापि प्रातिभ वैदुष्य के धनी परम-पूज्य गुरुवर डॉ० जगतनारायण दुबे जी की अलौकिक प्रतिभा एवं समुद्रवत गंभीर विद्वता से परिपूर्ण निर्देशन के कारण ही यह शोध प्रबंध पूर्ण हो सका है, अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मेरी प्रेरणास्रोत डॉ० श्रीमती प्रेमलता वर्मा, प्राध्यापक-गणित, शासकीय विज्ञान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर का विशेष सानिध्य होने के कारण मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

आदरणीय परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ० श्रीमती विमल शर्मा एवं डॉ० श्रीमती सीमा श्रीवास्तव ने अपना बहुमूल्य समय प्रदान कर मेरा पथ-प्रदर्शित किया है, अतएव मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।







## विषय-परिचय

इस शोध कार्य को मैं अपने स्व० पिता **श्री कृष्ण कुमार मिश्रा** की याद में अपने परम प्रिय चाचा जी **श्री सुभाष चन्द्र मिश्रा** के चरण-कमलों में समर्पित करती हूँ।

**श्री अरुण कश्यप**, आरती कम्प्यूटर एवं ग्राफिक्स, बिलासपुर ने अत्यंत सावधानीपूर्वक टंकण कार्य संपादित किया है, अतएव उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

अंत में **श्री मनोज कुमार अग्निहोत्री** मेरे पतिदेव एवं बच्चों का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्येक क्षण इस महति कार्य को संपादित करने में दिया।

**श्रीमती किशोरी अग्निहोत्री**

---०००---







## भूमिका

‘वेदो नारायणः साक्षात् भगवानिति शुश्रुम’ इस वचन से स्पष्ट है कि वेद साक्षात् नारायण-स्वरूप हैं और उन्हीं के निश्वास रूप में प्रादुर्भूत होकर प्रत्येक कल्प की सृष्टि में ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा मन्त्र-विग्रह- रूप में दृष्ट होते हैं। प्रलय में भी इनका स्वरूप बना रहता है। जब नारायण के नाभि कमल से पद्मोद्भव भगवान् ब्रह्मा आविर्भूत होते हैं, तब वे तपस्या के द्वारा सृष्टिवर्धन-कार्य में प्रवृत्त होते हैं। इसी सृष्टि में उनके मानसी संकल्प से नौ (प्रकारान्तर से दस) ऋषियों का प्रादुर्भाव होता है। जो ‘नवब्रह्माण’ के नाम से पुराणेतिहास ग्रन्थों में विवृत हैं। ये शक्ति, सामर्थ्य, तप, अध्यात्म, ज्ञान, मन्त्रशक्ति आदि सभी गुणों में ब्रह्माजी के ही समान हैं। अपनी प्रजाओं के पालक होने से ये ‘प्रजापति’ भी कहलाते हैं। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, विश्वामित्र, भारद्वाज, गौतम, जमदग्नि आदि ऋषियों को सृष्टि के समय अपनी तपस्या के द्वारा वेद की ऋचाओं का दर्शन हुआ। ऋचाओं का दर्शन होने के कारण ही ये ‘मन्त्रद्रष्टा’ कहलाये। आचार्य यास्क के ‘ऋषिर्दर्शनात्’ आदि वचनों में यह स्पष्ट कहा गया है कि ऋषियों ने मन्त्रों को देखा, इसलिये उनका नाम ‘ऋषि’ पड़ा। इससे यह स्पष्ट है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों ने मन्त्रों की रचना नहीं की, प्रत्युत भगवत्कृपा से उन्होंने तपःपूत अपने अन्तःकरण में मन्त्रशक्ति के स्वरूप का दर्शन किया और श्रुतिमान् के द्वारा अपने शिष्य-प्रशिष्यों में उसे प्रसारित किया, इस प्रकार आगे फिर वेदों का विस्तार होता गया। श्रुति-परम्परा से अध्यापित होने से ही वेदों को ‘श्रुति’ कहा जाता है।

‘ऋषि’ पद का जो व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है, उससे भी ज्ञात होता है कि ‘ऋषी गतौ’ तथा ‘दृशिर प्रेक्षणे’ धातुओं से ज्ञानात्मक अर्थ-दर्शनात्मक रूप में ही ऋषि का तात्पर्य है। इस प्रकार अपनी तपस्या रूप ज्ञानात्मिका शक्ति के द्वारा वैदिक मन्त्रशक्ति का जिन्होंने दर्शन किया वे ‘ऋषि’ कहलाये। वेदों के अनुसार ये ऋषि सत्यवक्ता, धर्मात्मा तथा ज्ञानी







थे और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एवं अपरिग्रह के मूर्तिमान् स्वरूप, ब्रह्मतेज से सम्पन्न तथा दीर्घकालीन समाधि द्वारा तप का अनुष्ठान करते थे। यज्ञों द्वारा देवताओं का आप्यायन तथा नित्य स्वाध्याय इनकी मुख्य चर्या थी। गृहस्थ होते हुए भी ये मुनिवृत्ति से रहा करते थे। पवित्र पुण्यतो या नदियों का सानिध्य, दिव्य-शान्त तपोवन, अरण्य प्रदेश अथवा पर्वतों की उपत्यकाओं में इनका आश्रम हुआ करता था। जहाँ सिंह आदि क्रूर प्राणी भी स्वाभाविक हिंसक-वृत्ति का परित्याग कर परम शान्त तथा मैत्रीभाव का आश्रय लिया करते थे। यह प्रभाव इन ऋषियों के तपोबल का ही था। वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि ऐसे निर्जन एवं शान्त प्रदेशों में ही अध्यात्म-साधना के बीज पल्लवित-पुष्पित और फलित हुए-

उपहरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं तथा ऋषियों का परस्पर अन्योन्याश्रम सम्बन्ध है, यदि ये ऋषि न होते तो हमें वेद प्राप्त ही न होते और न सृष्टि वर्धन ही होता। इन्हीं ऋषियों की सप्तर्षियों में परिणति है। स्वायम्भुव आदि प्रत्येक मन्वन्तर में अलग-अलग सप्तर्षि वेदों की ऋचाओं का दर्शन करते हैं और हमें वेद प्राप्त कराकर जगत् का कल्याण करते हैं। इस प्रकार ऋषियों-कवियों का हम पर महान् उपकार है।

सृष्टिवर्धन में मुख्य रूप से महर्षि मरीचि का योगदान है। उनके पुत्र कश्यप हुए, जिन्हें दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं में से दिति, अदिति आदि तेरह कन्याएँ स्त्रीरूप में प्राप्त हुईं। जिनसे देवता, दानव, पशु-पक्षी, मानव आदि चराचर जगत् की सृष्टि हुई - 'कश्यपात्तु इमाः प्रजाः।' इस प्रकार हम इन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की संतान हैं।

ऋषियों द्वारा दृष्ट वेद-संहिता के मन्त्र भी यज्ञकर्म की दृष्टि से ऋक् यजुष् साम तथा अथर्व नाम से चार रूपों में प्रविभक्त हैं। ऋग्वेद की अधिकांश ऋचाएँ अन्य वेदों में भी प्राप्त होती हैं। शाखा-भेद से इनकी अनेक शाखाएँ भी हैं, जिनका ऋषि और उनके गोत्रज-वंशधरो से सम्बन्ध है।







उपलब्ध ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि अलग-अलग हैं तथा तत्तद् कर्मों में उनका विनियोग भी है। जिस मन्त्र का दर्शन जिस ऋषि को हुआ, वही उस मन्त्र का ऋषि है। मन्त्रों का समूह 'सूक्त' कहलाता है। ऋग्वेद के प्रत्येक मण्डल सूक्तों में विभाजित हैं और सूक्तों के अन्तर्गत मन्त्र हैं। सर्वानुक्रमणी तथा सायण आदि के भाष्यों में यह निर्दिष्ट है कि अमुक मन्त्र समूह या अमुक मण्डल अमुक ऋषि द्वारा दृष्ट है। तदनुसार ऋग्वेद के प्रथम मण्डल तथा दशम मण्डल में मधुच्छन्दा, गौतम, अगस्त्य, भृगु, उशना, कुत्स, अथर्वा, त्रित, शुनःशेष, बृहस्पति पुत्र संयु तथा गौरवीति आदि अनेक ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र अथवा सूक्त हैं। किन्तु द्वितीय मण्डल से नवम मण्डल तक के द्रष्टा ऋषि प्रायः पृथक्-पृथक् ही हैं, अर्थात् अधिकांश पूरे द्वितीय मण्डल के द्रष्टा ऋषि एक हैं, इसी प्रकार पूरे तृतीय मण्डल के द्रष्टा ऋषि एक हैं। ऐसे ही चतुर्थ आदि में भी समझना चाहिये।

इस दृष्टि में प्रायः पूरे द्वितीय मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि गृत्समद हैं, इसलिये ऋग्वेद का दूसरा मण्डल गात्समद-मण्डल कहलाता है। तीसरे मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं। इसलिये यह वैश्वामित्र-मण्डल कहलाता है। इसी प्रकार चौथे मण्डल के ऋषि हैं वामदेवा पाँचवें के अत्रि, छठे के भारद्वाज, सातवें के वसिष्ठ, आठवें के कण्व तथा नवें के द्रष्टा अंगिरा ऋषि हैं। नित्य-निरन्तर परमतत्त्व का चिन्तन करने से ये ऋषि महर्षि या परमर्षि भी कहलाते हैं। अनेक ऋषि पुत्र, ऋषियों के वंशधर तथा गोत्रधर भी मन्त्रों के द्रष्टा हैं। यजुर्वेद की माध्यन्दिन-शाखा महर्षि याज्ञवल्क्य ऋषि की कृपा से प्राप्त है। अथर्ववेद आदि, शौनक तथा पिप्पलाद आदि ऋषियों से प्रवर्तित हैं।

इस प्रकार जहाँ ऋषियों ने सृष्टिवर्धन में योगदान दिया, वहीं अपनी प्रजा की रक्षा के लिये तपस्या द्वारा वेदों को प्राप्त किया और इसी कारण वेद किसी की रचना न होने के कारण अपौरुषेय कहलाये। इन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा वेद हमें प्राप्त हुआ। महर्षि वेदव्यासजी ने अपने सुमन्तु, पैल, जैमिनि तथा वैशम्पायन आदि शिष्यों को वेद की शाखाओं







का अध्ययन कराया और फिर लोक में वेद-मन्त्रों का प्रसार हुआ। उदात्त-अनुदात्त आदि स्वरों तथा जटा, माला, शिखा आदि अष्टविकृतियों के माध्यम से वेद की रक्षा होती आयी है।

वेद-मन्त्रों का अर्थज्ञान अत्यन्त दुरुह होने से तथा सभी का अधिकार न होने से महर्षि वेदव्यासजी ने पञ्चम वेद इतिहास-पुराण की रचना की। साथ ही वेदों के सम्यगर्थ-प्रतिपादन के लिये शिक्षा, कल्प आदि छः अङ्गों के अध्ययन की आवश्यकता हुई। इतने पर भी वेदार्थ का ठीक अधिगम न होते देख वेदों पर भाष्यों का निर्माण हुआ। जिनमें स्कन्दस्वामी, सायण, वेंकटमाधव, उव्वट, महीधर आदि के वेदभाष्य बहुत उपयोगी हैं। यहाँ संक्षेप में कुछ मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के उदात्त चरित्र तथा कतिपय भाष्यकारों का परिचय दिया जा रहा है।

--○○○--







## विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय :-

१-५९

### ऋषि, मुनि, सिद्ध की व्युत्पत्ति

- (१) ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा
- (२) मुनि शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा
- (३) ऋषि एवं मुनि में समानता एवं अंतर
- (४) ऋषि एवं सिद्ध
- (५) ऋषियों का वर्गीकरण -  
गृहस्थाश्रमी, आश्रमवासिक, अध्यापक, यायावर,  
तपस्वी आदि ऋषियों का परिचयात्मक विवरण

द्वितीय अध्याय :-

६०-१०१

### रामायण, महाभारत व पुराणकालीन ऋषि संबंधी आख्यान

- (१) ऋषि संबंधी आख्यान
- (२) सृष्टि वर्णन
- (३) विभिन्न ऋषियों की वंशावली

तृतीय अध्याय :-

१०२-१३५

### ऋषियों द्वारा किए गए लोक संग्रह के कार्य

- (१) आश्रितों का संरक्षण तथा योद्धाओं का उत्साहवर्धन
- (२) राजाओं का वंश क्षय रोकना एवं आततायियों का विनाश
- (३) विश्व विनाश का प्रतिरोध एवं लोक कल्याणार्थ शस्त्रास्य धारण
- (४) शस्त्र ज्ञान एवं युद्धनीति का ज्ञान
- (५) युद्ध कौशल, शस्त्रास्त्र निपुण एवं सामाजिक कार्यों का अवलोकन







पृष्ठ संख्या

- (६) ऋषियों द्वारा लोकोपकारी व्यक्तियों तथा उनके कार्यों की प्रशंसा
- (७) ऋषियों द्वारा राज संस्था का समर्थन
- (८) ऋषियों की सामाजिक प्रतिष्ठा
- (९) ऋषियों के प्रति व्यवहार

चतुर्थ अध्याय :-

१३६-१८३

### ऋषि प्रकृति का वर्णन

- (१) ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, संकल्प, सत्यवादिता, स्पष्टवादिता का वर्णन
- (२) निर्भीकता, निर्लोभता, क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति
- (३) वात्सल्य, दया तथा स्वाभिमानी ऋषिगण
- (४) शाप, शाप का भय व शाप शक्ति का वर्णन
- (५) वरदान, मंत्रशक्ति, भविष्य कथन, दिव्यदृष्टि आदि विशिष्ट शक्तियाँ

पंचम अध्याय :-

१८४-२६२

### ऋषि दर्शन

- (१) श्रीमद्भगवद्गीता का तात्त्विक विवेचन
- (२) महर्षि वाल्मीकि एवं उनके रामायण पर वेदों का प्रभाव
- (३) भारतीय दर्शन एवं नीति में महाभारत का महत्त्व एवं स्थान
- (४) महाभारत के दार्शनिक ग्रंथ

उपसंहार :-

२६३-२७१

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

२७२-२७४



॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (१)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (२)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (३)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (४)

॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (५)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (६)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (७)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (८)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (९)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (१)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (२)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (३)

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ ॥३॥ (४)

॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥ ॥३॥

॥३॥ ॥३॥

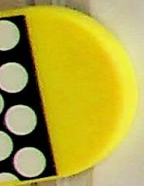
॥३॥ ॥३॥ ॥३॥



## प्रथम अध्याय

# ऋषि, मुनि, सिद्ध की व्युत्पत्ति







## ऋषि, मुनि, सिद्ध की व्युत्पत्ति



सिद्धांत

सिद्धांत कि दुर्गा, गीर्वा, गीर्वा



## ऋषि, मुनि, सिद्ध की व्युत्पत्ति

### (१) 'ऋषि' शब्द का अर्थ -

'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कतिपय विद्वानों का मत है कि 'सर्वधातुभ्य इण्' तथा 'इगुपधात् कित्' - इन सूत्रों के आधार पर 'ऋषी गतौ' धातु से 'इण्' प्रत्यय हुआ, 'कित्' होने के कारण गुण नहीं हुआ और 'ऋषि' शब्द बन गया। 'ऋषन्ति अवगच्छन्ति इति ऋषयः' ऐसा विग्रह मानकर वे ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति को ऋषि मानते हैं। गत्यर्थक 'ऋषी' धातु का 'ज्ञान' अर्थ मानने में उनका तर्क है - 'ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः।' किन्तु हमें यह क्लिष्ट कल्पना निष्फल सी लगती है; क्योंकि जब शास्त्राभ्यासी साधारण मनुष्य परोक्ष-ज्ञान भी सरलतापूर्वक प्राप्त कर लेता है, तब 'ऋषी' धातु का केवल 'ज्ञान' अर्थ निकालने का कोई विशेष महत्त्व नहीं प्रतीत होता।

हमारे विचार से तो 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु से 'ऋषि' शब्द की निष्पत्ति मानी जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा मानने पर 'दृशि' शब्द से 'दकार' का लोप होकर बने हुए 'ऋषि' शब्द का अर्थ होगा - 'द्रष्टा'। सायणभाष्य के अनुसार - 'अतीन्द्रिय पदार्थों का तपस्या द्वारा साक्षात्कार करने वाला।' स्पष्ट है कि ऐसी योग्यता रखने वाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। ऋषि शब्द का यह अर्थ ऋतम्भरा-प्रज्ञा-सम्पन्न, तपस्या द्वारा वेद मन्त्रों का आविर्भाव करने वाले मधुच्छन्दा प्रभृति उन विशिष्ट व्यक्तियों में ही समन्वित हो सकेगा, जिन्हें सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन आदि प्राचीन मुनियों ने 'ऋषि' शब्द से अभिहित किया है।

लोक-व्यवहार के आधार पर भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो किसी घटना के प्रति श्रोता की अपेक्षा द्रष्टा को अधिक प्रामाणिक, साक्षी अथवा यथार्थवादी माना जाता है। किसी विवादास्पद विषय में कोई व्यक्ति कहे कि 'मैंने यह बात सुनी है' और दूसरा कहे कि 'ऐसा नहीं है, मैंने ऐसा देखा है' तो लोग देखने वालो की बात पर







अधिक विश्वास करेंगे, क्योंकि देखने वाले को सुनने वाले की अपेक्षा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का अधिक ज्ञान होता है।

सम्भवतः इसी अभिप्राय से अमर कोशकार ने कहा है - 'ऋषयः सत्यवचसः'। यास्क का वचन 'ऋषिर्दर्शनात्' भी इसी अभिप्राय को स्पष्ट करता है। अब यदि 'ऋषी' धातु से ही 'ऋषि' शब्द की निष्पत्ति मानने का आग्रह हो तो 'गति' का अर्थ 'प्राप्ति' मानने पर ही काम चलेगा - 'ऋषन्ति प्राप्नुवन्ति तपसा वेदमन्त्रान् इति ऋषयः।' इस प्रकार 'ऋषि' शब्द का अर्थ होगा - 'तिरोहित वेद मन्त्रों का तपस्या द्वारा आविर्भाव करने वाला।' महाभारत के निम्नलिखित श्लोक से इस अर्थ को समर्थन प्राप्त होता है -

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।

तपसा लेभिरे पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥

इसके अतिरिक्त यास्क का भी निम्नलिखित वचन इसी अर्थ की पुष्टि करता है -

तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तदृषीणामृषित्वम्।

सृष्टि में भारत वर्ष की उत्पत्ति आदि को स्वीकार की गई है। "ऋषि" उसी भारतवर्ष की मनुष्य सृष्टि में सर्वप्रथम स्थान ग्रहण करते हैं। ऋषियों की उत्पत्ति के संबंध में महाभारत में निम्नलिखित विवरण उल्लेखनीय है :-

(१) एष लोकान्सजीवां देवांश्चर्षिगणैः सह (भीष्म ६३।६)

(वासुदेव ने लोकों का निर्माण करके प्रथम देवता और ऋषियों की सृष्टि की)

(२) ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवानुकल्पयत् (भीष्म ६३।९)

(गोविन्द ने तपस्या एवं ऋषियों की कल्पना की)

(३) पितृन्देवानृषींश्चैव तथा वै यज्ञदानवान्।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



नागासुर मनुष्यांश्च सृजते परमोऽवयः॥ (शांति २०३।१३)

(विष्णु भगवान् ने देव ऋषि एवं मनुष्यों के अतिरिक्त पितर, यक्ष, नाग, दानव और असुरों की सृष्टि की।

परिभाषा :-

इस ज्ञानमयी भारतीय संस्कृति के निर्माता "ऋषि" है। "ऋ" का अर्थ गति है। जो गतिशीलता होकर परमार्थ की ओर अग्रसर होता है, वही सार्थक अर्थ में ऋषि कहा जाता है। ऋषि का अर्थ है - निर्मल बुद्धि संपन्न जीवनोपयोगी मन्त्र रहस्य द्रष्टा पुरुष।

ऋषि शब्द की उत्पत्ति :- (व्याकरण की दृष्टि से )

ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति ऋष् गतौ धातु (संख्या १२८७ सिद्धांत कौमुदी) से मानी जाती है। गति से सामान्य अर्थ में न लेकर विशिष्ट गति और ज्ञान के अर्थ में लेना ही उचित प्रतीत होता है। ऋषति प्राप्नोति सर्वान् मन्त्रान्, ज्ञानेन पशयति संसार पारं वा।

ऋष् + इगुपधात् कित् (४।११९ इति उणादि सूत्रेण इन दिच्च)

इस व्युत्पत्ति का संकेत वायु पुराण - ७।७५, मतस्य पुराण १४५।८३ तथा ब्रह्माण्ड १।३२।८७ में किया गया है।

विभिन्न धर्मशास्त्रों में ऋषि की परिभाषा :-

वायुपुराण (५९।७९) में "ऋषि" शब्द के अनेक अर्थ बतलाये गये हैं।

ऋषीत्येव गतौ धातुः श्रुतौ, सत्ये तपस्यथा।

एतत् संनियतस्तस्मिन् ब्रह्माणा स ऋषिः स्मृतः ॥







इस श्लोक के अनुसार ऋषी धातु के चार अर्थ होते हैं। गति, श्रुति, सत्य तथा तपस्। ब्रह्माजी के द्वारा जिस व्यक्ति में ये चारों वस्तुएं नियत कर दी जाएं वही होता है - 'ऋषि'।

विष्णु पुराण में :-

ऋषि के तीन वर्ग निर्धारित हुए हैं - यथा ब्रह्मर्षि, देवर्षि एवं राजर्षि, किन्तु ऋषि शब्द का शाब्दिक विवेचन तथा गुण विशिष्टता का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है। यहाँ भी तुदादिगण के गत्यर्थक ऋषी से ऋषि शब्द की सिद्धि होती है और तदनुसार इसका अर्थ होता है - संसार का पारगामी।

(२) मुनि शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा :-

मुनि शब्द की व्युत्पत्ति -

सं मन् (जानना+इन्) (मानक हिन्दी कोष)

परिभाषा -

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुसेषु विगत स्पृहः ।

वीतरागमय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ (गीता २।५६)

गीता बतलाती है कि - दुःखों में उद्विग्न न होने वाला सुखों में स्पृहा से विरहित, राग, भय तथा क्रोध से उन्मुक्त होने वाला, स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति 'मुनि' कहलाता है।

मुनि का साक्षात् संबंध तीव्र तपश्चरण के साथ है। जो व्यक्ति शून्यागार में निवास करता है, और जो चलते-चलते सायंकाल हो जाने वाले स्थान पर ही टिक जाता है (यत्र सायंगृहो मुनिः) वही मुनि नाम से अभिहित किया जाता है। श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में गंधमादन पर्वत पर यत्र सायंगृह मुनि के रूप में दस हजार वर्षों तक विचरण



(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

- १ अक्षर (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

- १

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

- १ अक्षर (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

(१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर) (१११३ अक्षर)

- १



### (३) ऋषि एवं मुनि -

ऋषि तथा मुनि शब्दों के अर्थभेद का स्पष्टीकरण कठिन है। आर्य ग्रंथों में एक ही व्यक्ति के लिए कहीं-कहीं दोनों शब्दों को प्रयुक्त किया गया है। ऋषि तथा मुनि शब्दों के अर्थ में कोई भेदक रेखा स्पष्ट नहीं की जा सकती, अपितु उनके कार्यों से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

प्राचीन युग में ऋषि धारा तथा मुनि धारा पृथक-पृथक थी। ऋषियों ने तो वेद का ग्रहण किया और मुनियों ने पुराण का। जब ये दोनों ब्रह्माजी के मुख से निकले। ऋषियों ने वेदों को ग्रहण कर प्रचार-प्रसार एवं विपुलिकरण किया और मुनियों ने पुराण के प्रचार-प्रसार में अपने को व्यावृत किया। ऋषि तथा मुनि के इस पार्थक्य की पुष्टि शंकराचार्य के सन्तसुजातीय भाष्य के एक महनीय उक्ति से भी होती है। सन्तसुजातीय के द्वितीय अध्याय के बारहवें श्लोक में ब्रह्मा विश्व से विलक्षण तथा विपरीत बताया है -

निर्दिश्य सम्यक् प्रवदन्ति वेदाः ।

तद् विश्ववैरूप्य मुदाहरन्ति ॥

इस श्लोक के भाष्य में आचार्य ने उपनिषदों का प्रचुर उदाहरण देकर ब्रह्मा तथा विश्व के वैलक्षण का प्रतिपादन किया है। अनन्तर के पुराणस्थ प्रमाणों की ओर निर्देश करते हैं -

न केवलं वेदा, अपितु मुनयोऽपि तद् ब्रह्मा विश्ववैरूप्यं विश्वरूप विपरीत स्वरूप मुदाहरन्ति।

इस कथन से भी पूर्वोक्त ऋषि धारा तथा मुनि धारा के पार्थक्य के लिए आधार भूमि स्थिर मानी जा सकती है। किन्तु कालान्तर में ये दोनों शब्द समानार्थी होते गए। एक ही व्यक्ति के लिए ऋषि तथा मुनि दोनों शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। साधारणतः वे अभिन्न भले ही माने जायें-दोनों के पंथों में वैभिन्न होना स्वाभाविक है।







महाभारत में मुनि शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। प्रथम ऐसे व्यक्तियों के लिये जो मूलतः मुनि थे तथा दूसरे जिन्होंने मुनि वृत्ति का आचरण किया था। मुनि वृत्ति, प्रारंभ में विभिन्न होते हुए भी महाभारत काल तक अनेक अंशों में ऋषि वृत्ति के समान हो गई थी। अतः उस समानता के आधार पर ऋषियों के लिये मुनि और मुनियों के लिये ऋषि शब्द का प्रयोग किया जाने लगा था। तथापि मुनिवृत्ति का आचरण करने वाले ऋषि-मित्र व्यक्तियों के लिये एकमात्र मुनि शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋषि और मुनि वृत्ति से संबंधित विवरण निम्न है -

मुनिगण अरण्य वासी होते थे (उद्योगः ४३।३५)। जैगीषव्य मुनि अरण्यवास कर रहे थे (शल्य ४९।५२)। ऋषिगण भी अरण्यवासी थे, पर कतिपय ऋषि नगरवासी पाये जाते हैं। द्रोण (आदि १५५।१)। कृपाचार्य (आदि १२१।११) और शुक्राचार्य (आदि ७१।५९) नगरवासी थे। पंचशिख ने विदेह नगर में चातुर्मास व्यतीत किया था। (शांति ३१३।२), ऋस्यश्रंग (वन ११३।९), दीर्घतया (आदि ९८।२३), जरत्करु (४३।११) तथा नारद (शांति ३०।१५) और वेद व्यास (आदि १००।२५) के स्वरूप कालिक नगरवास का विवरण प्राप्त होता है।

मुनिवृत्ति का आचरण करने वाले व्यक्ति भी अरण्यवास करते थे। ययाति मुनिवृत्ति का आश्रयण करके अरण्यवासी हो गये थे (आदि ८१।१२)। भरिश्रवा अरण्यवासी मुनि के तुल्य सा (११८।५०) मुनिवृत्ति व्यक्ति के लिये ग्राम से प्रव्रजित होकर अरण्यवास करने का विधान है (आदि ८६।४)। एक स्थल पर 'अरण्य मुनियों' का विवरण प्रस्तुत किया गया है (आदि ८६।११)।

ऋषिगण आश्रम बनाकर निवास करते थे। मुनिगण अनिकेत होते थे (आदि ८६।१२)। पर्वतकूट, चैत्य या वृक्षशिखर पर स्थित होकर योगाभ्यास करने वाले मुनियों का विवरण प्राप्त होता है (शांति २३२।२३)। नकुल के अनुसार कतिपय मुनिय वृक्षमूलावासी होते थे (शांति १२।९), पाण्डु मुनिवृत्ति का आचरण करते हुए शून्यगृह







तथा वृक्षमूल में निवास करना चाहते थे (आदि ११०।७, १०)। अनिकेत होकर 'वृक्षाधः' वास करने वाले मुनियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

ऋषिगण आश्रमों में परिवार निवास करते थे। पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा शिष्यों से समन्वित, ऋषियों का विवरण प्रार्पित होता है। देवत्व ऋषि को गार्हस्थ्य धर्म में दीक्षित बताया गया है (शल्य ४९।६०) माद्री के अनुसार पाण्डु मुनिवृत्ति से भिन्न, आश्रमों में पत्नियों के साथ तपस्या करता हुआ स्वर्ग की प्राप्ति कर सकते थे (आदि ११०।२६)। मुनिगण एकचर होते थे। जैगीषण्य मुनिय मोक्षधर्म में स्थित होकर एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे थे (शल्य ४९।५२)। सुलभा एकाकी मुनिव्रत का पालन कर रही थी (शांति ३०८।१८४) मुनिवृत्तिक अर्जुन एकचर होकर विचरण करते थे (वन ७८।२९)।

मुनियों में ब्रह्मचर्य धारण अनिवार्य माना जाता था। सुभद्रा के अनुसार शितव्रत मुनिगण ब्रह्मचर्य धारण करते थे (५५।२४)। सुलभा ब्रह्मचारिणी की (शांति ३०८।१८४) ब्रह्मचर्य पर अधिक बल देने से प्रजाजन्तु के व्यवच्छिन्न हो जाने के कारण संभवतः मुनि समाज अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सका। ऋषि समाज में ब्रह्मचर्य का अपेक्षित पालन किया जाता था। अतः मुनियों की अपेक्षा ऋषि अधिक काल तक स्थित रह सके थे।

ऋषि और मुनियों की कतिपय धार्मिक कृत्यों में विभिन्नता थी। ऋषिगण अग्निहोत्र करते थे। मुनियों के अग्निहोत्र का प्रचलन नहीं था। ग्राम्य मुनि के लिये अग्निहोत्र का अनुष्ठान निषिद्ध था (आदि ८६।१२)। मनु के अनुसार मुनिवृत्ति का पालन करने वाला वानप्रस्थाश्रमी 'वैतान अग्नियों' को अपने में आरोपित करके अग्निहोत्र का परित्याग कर देता था (मनुस्मृति ६।२५)। मुनियों में यज्ञों की अपेक्षा ध्यान की महत्ता थी। नर-नारायण के आरम में ऋषि और मुनि दोनों निवास करते थे। उनमें ऋषियों की यज्ञ संलग्न और मुनियों को ध्यान मग्न बताया गया है (अनु० १३ दक्षिणात्य पाठ)। आंशिक कृत्य कुछ अंशों में समान थे। जैगीषव्य मुनि ओर देवल ऋषि दोनों समुद्र स्नान करते थे







(शल्य ४९।१६)। वाल्मीकी के अनुसार कतिपय मुनिसूर्योपस्थान किया करते थे (वा.रा. २।९५।७)। प्रतीत होता है कि मुनियों में वेदाध्ययन की अपेक्षा पुराण गीतों का प्रचलन था। भीष्म पितामह ने भवितात्मा मुनियों से पुराण गीतों का श्रवण किया था (भीष्म ६१।३६)।

शिरोवेष में भिन्नता थी। ऋषिगण जटामुकुट से संवीत होते थे (आदि १००।५), पाण्डु ने मुनिवृत्ति के अनुसार मुण्डित होने का निश्चय व्यक्त किया था (आदि ११०।७), युधिष्ठिर ने कुटुम्बक्षय से दुःखी होकर मुण्डित मुनि होकर जीवनोत्सर्ग करना चाहा था (शांति ९।१२)। भरत के विधान से प्रतीत होता है कि संभवतः ऋषियों के प्रभाव से पश्चादती मुनियों में 'जटामुकुट' का प्रचलन हो गया था (नाट्यशास्त्र २१।१५४)। वाल्मीकी के अनुसार भरत ने जटाधारी मुनि का वेष बनाया था (वा.रा. २।११५।२३)।

परिधानों में पार्थक्य था। ऋषिगण सामान्य रूप से चीर, वल्कल और ऋग्धर्म धारण करते थे (शांति २५३।३)। मुनियों में काषाय वस्त्र का प्रचार था। ऋग्वेद तक मुनियों को 'पिशंगवस्त्रधारी' बनाया गया है (ऋग्वेद १०।१३६।५)। अर्जुन के अनुसार महाभारतीय मुनियों को कषाय वस्त्र सरलता से उपलब्ध हो जाते थे (सभा. १५।१६)। ग्राम्य मुनि का कौपीन (आदि ८६।१२) संभवतः काषाय वस्त्र का होता होगा। जैगीबल का 'भिक्षुवेष' (शल्य ४९।१०) काषायवस्त्र से समन्वित होगा। उत्तरकाल में संभवतः ऋषि-मुनि की समानता से प्रभावित होकर उपमन्यु के आश्रम के मुनिगण चीर वल्क्य तथा मृगधर्म धारण करने लगे थे (अनु०१४।५६) वाल्मीकी के अनुसार मुनिवृत्तिक भरत ने वल्क्य वस्त्रों को धारण किया था (वा.रा. २।११५।२२)।

कतिपय भोज्य पदार्थों में भिन्नता थी। मुनिगण मधु, मांस और मय का कथापि सेवन नहीं करते थे। अन्य व्यक्ति भी इन सब वस्तुओं का उपभोग न करने पर मुनि तुल्य माने जाते थे। विभाण्डक के अनुसार मुनियों में अपेय मधु का प्रचलन न था







(वन ११३।४)। 'अपेय मधु' से सुरा अभिप्रेत होगी। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार अमांस भोजी व्यक्ति को मुनि तुल्य समझा जाता था (याज्ञ १।८१)। ऋषिगण यदाकदा उक्त वस्तुओं का उपयोग कर जाते थे। महाभारत के अनुसार अगस्त्य (शांति १३९।६७), विश्वामित्र (शांति १३९।४९) और सारस्वत महर्षि (शल्य ५०।३७) ने प्रसंग विशेष पर मांस भक्षण किया था। कतिपय ऋषि सुरापी प्रतीत होते हैं। शुक्राचार्य के सुरापान का उल्लेख प्राप्त होता है (आदि ७१।४३)।

नकुल के अनुसार मुनिगण अग्निपक्व पदार्थों का उपभोग नहीं करते थे (शांति १२।९) उधर ऋषियों में पदार्थों को पाक करने की प्रथा थी। विश्वामित्र ने वसिष्ठ के सत्कार के लिये 'चरुपाल' किया था (उद्योग १०४।१४) अरुन्धती (शल्य ४७।३६) और श्रुतावती (शल्य ४७।४३) बदर पाचन का उल्लेख प्राप्त होता है। कपील के अनुसार काननवासी मुनिगण अन्न का संचय नहीं करते थे (शांति १४२।३५) आयोदधौम्य जैसे ऋषिजीवी ऋषियों के यहां अन्न संचय होता होगा (आदि ३।२०) फलों के उपभोग में भी अंतर था। मुनिवृत्ति के अनुसार स्वयं पतित फलों का उपभोग किया जाता था (आदि १००।८)। ऋषिगण फलाहरण करते समय फलों को तोड़ लिया करते थे। लिखित द्वारा शंख के आश्रम के फल तोड़कर भक्षण किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। देवल अपने ऋषि जीवन में फलों को तोड़ा करते थे (शल्य ४९।४७)। भोजन की मात्रा में भी अंतर था। मुनिगण जीवन धारण के उद्देश्य से भोजन करते थे (आदि ८६।१३)। अतः उनके भोजन की मात्रा स्वल्प रहती थी। मनु के अनुसार ऋषिगण पर्याप्त भोजन करते थे (मनु २।१७९)।

भोजन के अन्य पदार्थों में समानता थी। कंद, मूल और फलाहार दोनों को प्रिय था। अन्य भोज्य पदार्थों में जल, वायु, दुग्ध, दुग्धफेन, पिप्पलपत्र, मुन्यन्न (नीवारधान्य), अग्निहोत्र का धूम और सूर्य की किरणों का पान करने का उल्लेख प्राप्त होता है।







कतिपय वैयक्तिक गुणों में भी पार्थक्य देखा जाता था। मुनिगण सत्य भाषण को सर्वाधिक महत्व देते थे (वन १५८।१०)। ऋषिगण यदस-कदा असत्य भाषण कर जाते थे (उद्योग १०।१३-२०)। मुनिगण अहिंसक होते थे। मुनिधर्म के अनुसार चतुर्विध स्थावर - जंगम प्राणियों में हिंसा करने का निषेध था (आदि ११०।७, १५)। ऋषियों में कुछ अंशों तक हिंसा वैध थी। मृगधर्म के उद्देश्य से मृगों की हिंसा की जाती थी। अर्वावसु ने अपने पिता रैभ्य को कृष्ण मृग (वन. १३९।७) समझकर उसकी हिंसा कर डाली थी। कतिपय ऋषि यज्ञों में पशुबलि देते थे। अगरस्त्य ने यज्ञ में दीक्षित होते हुए मृगों की मृगया करके (आदि १०९।१५) उनकी वेपा का हवन किया था। मुनिगण निंदा प्रशंसा में निर्विकार करते थे। मुनि धर्म के अनुसार एक भुजा में छेदन और दूसरी भुजा में चंदन के लेपन से भी मुनियों में राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती थी। (आदि ११०।१५, १९) भूरिश्रवा मुनिवृत्ति के अनुसार अपनी प्रशंसा और कृष्णार्जुन की निंदा को सुनकर निर्द्वन्द्व रहा था (द्रोण ११८।२०) ऋषिगण इतने अंश तक निर्द्वन्द्व नहीं रह पाते थे। उनके शापों के विवरण से महाभारत के पृष्ठ भरे हुए हैं।

मुनियों की तपस्या में भवतः ऋषियों की अपेक्षा अधिक आयाससाध्य होती थी। मुनिगण तपस्या काल में अपने मन और शरीर का अधिक नियंत्रण करते थे (शांति १८२।१४)। मुनियों द्वारा वाणी, मन, क्रोध, विवित्सा, उदर और उपष्य के प्रवृद्धि को नियंत्रित किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है (शांति २८८।१४)। कतिपय मुनिय इच्छा, भय और क्रोध रहित होकर इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम किया करते थे (श्रीमद्भागवत ५।२८)। मुनिवृत्ति के अनुसार तीक्ष्ण व्रत और नियमों का पालन किया जाता था। वाम्पाहार (अनु. १४।५६) और जलाहार (आदि ८१।१४) करने वाले मुनियों का विवरण प्राप्त होता है। जलावास करते हुए अधोमुख तपस्या करने वाले (आदि २६।२) तथा गोचर्या (अनु. १४।५७) और मृगचर्या का (अनु. १४।५८) का पालन करने वाले मुनिगण देखे जाते थे। तपस्या के फलस्वरूप कतिपय मुनियों का रक्त, मांस और अस्थियां सूख







जाया करती थी (आदि ८६।१६)। उर्ध्वबाहु (वन १३।१४) नम्रबदन (वन १३।१४) तथा पंचाग्नि (आदि ८१।१५) सेवन करने वाले मुनियों का विवरण प्राप्त होता है।

मुनियों का मौनव्रत प्रसिद्ध था। जैगीषव्य मुनि ने देवल ऋषि के आश्रम में मौनव्रत धारण किया था (शल्य ४९।१३), भूरिश्रवा ने मुनिव्रत के अनुसार मौन धारण किया था (द्रोण ११८।४४), मोन मुनियों का आवश्यक व्रत था। अतः अरण्यवाज की अपेक्षा मौनव्रत का अधिक महत्व माना जाता था (उद्योग ४३।३५)।

तपस्या के प्रभाव से ऋषियों की अपेक्षा मुनियों में अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। देवताओं के अनुसार जैगीषव्य मुनि की तपस्या देवल ऋषि को भ्रम में डाल सकती थी (शल्य ४९।६४)। 'ऋषि' होने के कारण नारद यद्यपि वैसा मानने को प्रस्तुत नहीं हो रहे थे। तपस्या के प्रभाव से जैगीषव्य मुनि शाश्वत ब्रह्मलोक में चले गये थे (शल्य ४९।४८)। सिद्धों के अनुसार देवल ऋषि की गति ब्रह्मलोक में नहीं थी।

मुनियों में संभवतः किसी प्रकार के योगाभ्यास का प्रचलन था। योगाभ्यास से उनमें योगज शक्तियां उत्पन्न हो जाती थी। मुनिवृत्ति का आचरण करने वाली सुलभा ने नेत्रों से नेत्र और रमियों से रश्मियों को संयुक्त करके 'योगबन्ध' के द्वारा जनक को स्तम्भित कर दिया था (शांति ३०८।५७)। सुलभा योगबल से सुन्दर रूप में परिवर्तित होकर निमेष मात्र में 'लेप्चस्त्र' की गति से मिथिलापुरी पहुंच गई थीं (शांति ३०८।८, ११)। जैगीषव्य मुनि ने योगबल से सिद्धि प्राप्त की थी (शल्य ७९।२२)। योगज प्रभाव से जैगीषव्य मुनि पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक चले गये थे (शल्य ४९।४८)। जम्बुक के अनुसार कोई मुनि, मृत बालक को योगबल से जीवनदान दे सकता था (शांति १४९।६४)।

प्रारंभिक मुनियों के संबंध में कतिपय विवरण इस प्रकार है। मुनियों को भिक्षु (शल्य ४९।२४), योगी (शल्य ४९।२२), मोक्ष धर्मी (शल्य ४९।६०) और परिव्राट (शल्य ४९।९) कहा जाता था। वे काषाय धारण, मौण्ड्य, त्रिविष्टव्य और कमण्डल की







अपेक्षा ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट साधन मानते थे (शांति ३०।८।४७)। प्रारंभिक मुनि ऋषियों की अपेक्षा यतियों के अधिक निकट थे। यतिगण भी मुनियों की भांति स्तुति, नमस्कार और स्वधाकार से रहित होकर (माण्डुक्योपनिषद्, वैतव्य प्रकरण ३७) आत्मनिष्ठ होते थे। भरत ने यतियों को निश्चल नेत्र, अचंचल मन, शांतवेष और काषाय वस्त्रधारी बताया है (नाट्यशास्त्र १२।८१), माण्डुक्योपनिषद् के अनुसार यतिगणा आत्मदर्शन में मग्न रहते थे (माण्डुकोप ३।१।५)। उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारंभिक 'मुनि समुदाय', 'ऋषि सुदाय' से भिन्न था। मुनियों ने कतिपय आधार व्यवहार ऋषियों के समान भले ही रहे हों, पर उनके अधिकांश आचार व्यवहार परिव्राट और यतियों के सदृश थे। उत्तर काल में प्रह्लादादि आसुरि द्वारा चतुर्थ आश्रम का निर्माण किये जाने पर (डॉ. मंगलदेव शास्त्री, भारतीय संस्कृति का विकास, बोधायन धर्मसूत्र) संभवतः भिक्षु, यति परिव्राट् और मोक्ष्यधर्मियों का सन्यासाश्रम में समावेश हो गया। इधर ब्रह्मचर्य पर अधिक बल देने के कारण मुनियों की संख्या कम हो गई। ऐसी स्थिति में मुनियों की अपेक्षा मुनिवृत्ति से ही परिचय संभव रहा होगा। फलस्वरूप मुनिवृत्ति का आचरण करने वाले व्यक्ति मुनि नाम से अभिहित होने लगे होंगे। संभवतः यही कारण है कि अधिकांश महाभारतीय ऋषियों को मूलतः ऋषि होने पर भी मुनिवृत्ति का आचरण करने वाले व्यक्ति मुनि नाम से अभिहित होने लगे होंगे। संभवतः यही कारण है कि अधिकांश महाभारतीय ऋषियों को मूलतः ऋषि होने पर भी मुनिवृत्ति का न्यूनाधिक आचरण करने के कारण मुनि नाम से भी संबोधित किया जाता था एवं मुनि शब्द के ऋषि शब्द का पर्यायवाची हो जाने के कारण कतिपय मुनिवृत्तिक व्यक्ति अन्जान में अग्निहोत्र, पितृदेव तर्पण (आदि ८।१।१२) जैसे ऋषिवृत्तिक कार्यों का आचरण करते देखे गये।

उक्त आधार पर कतिपय महाभारतीय ऋषियों को ऋषि के अतिरिक्त मुनि नाम से संबोधित किया जाता था। कश्यप ऋषि थे (आदि २७।६) उन्होंने 'पुत्रेष्टि यज्ञ' किया था। उनके आश्रम में 'समिदाहरण' होता था। पर उनके लिये मुनि शब्द का प्रयोग







होता था। कथाश्रावण करने वाले नैमिषारण्य के ऋषियों को मुनि कहा गया है (आदि १।३)। वेदाध्ययन करने वाले शुकदेव ऋषि (शांति ३१३।४२) के लिए मुनि शब्द का भी प्रयोग किया गया है। उत्ताङ्ग गुरुचर्या करता था (आश्व ५२।८) वेदाभ्यास भी करता होगा। एक बार वह कृष्ण पर कुपित भी हुआ था, पर ऐसे ऋषि के लिये भी मुनि शब्द का प्रयोग देखा जाता है (आश्व ५२।८) वेदाभ्यास करने वाले (शांति ३१५।२३) तथा ग्रंथ निर्माता (आदि ५६।३२) महर्षि वेदव्यास को कुछ स्थानों पर मुनि कहा गया है। ऋष्यश्रंग अग्निहोत्र करता था। आश्रमवासी के साथ स्वाध्यायशील भी था (वन १११।१७।८)। उक्त विशेषताओं के कारण उसे ऋषि कहा जाना चाहिए था पर उसके लिये मुनि शब्द का प्रयोग हुआ है (वन १११।७)। किंदम को पत्नी के साथ अरण्यवास (आदि १०९।२६) करने से ऋषि कहा जाना चाहिये था पर उसके लिये मुनि शब्द (आदि १०९।८) का प्रयोग हुआ है। यज्ञकर्त्ता संवर्त ऋषि (आश्व ९।८) के लिये भी मुनि (आश्व ९।११) का प्रयोग प्राप्त होता है। यह करने वाले बालखिल्य ऋषि (आदि २७।१२) रहे होंगे पर उन्हें मुनि (आदि २६।२) नाम से अभिहित किया गया है। महाभारत में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

#### (४) ऋषि और सिद्ध :-

सिद्धों की कतिपय विशेषताएं ऋषियों के समान होने के कतिपय स्थलों पर वे ऋषियों से अभिन्न प्रतीत होते हैं। उसी समानता के आधार पर कतिपय ऋषियों को 'सिद्ध' नाम से अभिहित कर दिया जाता था। नारद महर्षि को एक स्थल पर 'त्रैलोक्य सम्मत सिद्ध' कहा गया है (शांति ३४०।५)। पाण्डु को अवभृथ करने के उपरान्त पाण्डवों को हस्तिनापुर लाने वाले ऋषियों को सिद्ध नाम से अभिहित किया गया है (आदि ११७।५)। पर शक्तिपय ऋषियों की अनिवार्य विशेषताएं सिद्धों में उपलब्ध न होने से हम उन्हें ऋषियों से भिन्न विशिष्ट योनि मानने को बाध्य हैं। इसी सादृश्य और वैषम्य का विवरण नीचे प्रस्तुत है।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



सिद्धों की कतिपय विशेषताएं ऋषियों के समान थीं। सिद्ध तपस्या करते थे। एक स्थल पर तपस्या के प्रभाव से समाहित होकर तीनों लोकों का दर्शन करने वाले सिद्धों का विवरण प्राप्त होता है (आश्व. ५०।१५)। अन्य स्थल पर सिद्धों को सुव्रत और उग्र तपस्वी बनाया गया है (भीष्म ७।२५)। भीष्म के अनुसार सिद्धगण तपस्या से चित्त को समाहित करके 'दिव्य दृष्टि' प्राप्ति कर लेते थे (शांति १५।५।३)। वाल्मीकी के अनुसार तपस्या शम और दम से युक्त सिद्धगण मंदाकिनी में नित्य स्नान करते थे (वा.रा. २।९५।१३)।

सिद्धों की कतिपय भोज्य वस्तुएं ऋषियों के तुल्य होती थीं। तपस्या काल में फल और मूल का आहार (आश्व. ५०।१५) करने वाले सिद्धों का उल्लेख मिलता है।

सिद्धों के निवास स्थान ऋषियों की भांति प्रायः पर्वतों पर होते थे। भीष्म पितामह के अनुसार सिद्धगण हिमालय पर निवास करते थे (शांति ३१।४।३)। संजय के अनुसार सिद्धों का निवास स्थल हिमवान, हेमकूट, निषध, वैडूर्यमय-नील, रजत्कान्तिमय श्वेत तथा धातुओं से पूरित श्रृङ्गान पर्वत पर था (भीष्म ७।३।४)। एक स्थान पर उत्तर कुरुदेश में सिद्धों की वसति (निवास स्थान) बतायी गई है। उत्तर कुरुदेश नील पर्वत के दक्षिण तथा मेरुपर्वत की उत्तरी तलहटी पर स्थित होने से पार्वत्य प्रदेश रहा होगा (भीष्म ८।२)। पृथ्वी के कतिपय तीर्थ, आश्रम और नदियों में सिद्धों के निवास स्थान थे। नागधन्वा तीर्थ में सिद्धों का निवास स्थान था (शल्य ३६।३०)। कुरुक्षेत्र के कतिपय आरम सिद्धों से व्याप्त थे (आश्रम ३१।२०)। वाल्मीकि के अनुसार कीचक जाति के बांसें का बेड़ा बनाकर सिद्धगण 'शैलोदा' नदी को पार करते थे (वा.रा. ४।४३।३९।४०)। चित्रकूट की मंदाकिनी नदी में सिद्धों द्वारा स्नानादि कृत्य करने का विवरण पाया जाता है (वा.रा. २।९५।१३)। कृष्ण के अनुसार युधिष्ठिर को उपलब्ध होने वाली वसुन्धरा सिद्धों द्वारा निषेवित थी (आश्व १५।३०)।







अन्य लोकों में सिद्धों की स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। कतिपय सिद्ध स्वर्गलोक में निवास करते थे (महाप्रस्था ३।३३)। युधिष्ठिर के साथ इन्द्र के विमान पर बैठकर स्वर्ग लोक की यात्रा करने वाले सिद्धों का उल्लेख मिलता है (महाप्रस्था ३।२३)। यम की सभा में स्थित होकर धर्मराज की उपासना करने वाले सिद्ध यमलोक के निवासी होंगे (सभा ६।२६)। अंतरिक्ष लोक को अनेक स्थलों पर सिद्धों से सेवित बताया गया है (शांति १७।५।२३)। सिद्धों द्वारा ऋषियों की भांति देवों की उपासना करने का विवरण प्राप्त होता है। कतिपय सिद्ध पशुपति महोदय के उपासक थे (शांति २७।४।१२)।

सिद्धों को संभवतः उनकी तपस्या के फलस्वरूप कतिपय सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती थीं। वे भविष्यवाणी कर सकते थे। सिद्धों ने दुर्योधन के जन्म के अवसर पर उसके क्षत्रिय जाति के विनाश में 'हेतु' होने की भविष्यवाणी की थी (शल्य २३।४२)। अश्वत्थामा के जन्म के अवसर पर सिद्धों ने भविष्यवाणी की कि वह सारे विश्व को पांचाल रहित बना देगा (द्रोण १३।४।८०)। सिद्धगण सूक्ष्मदर्शी होते थे। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से, जीव के च्युत होने, योनि में प्रवेश करने तथा उत्पन्न होने की सूक्ष्म क्रियाओं को देख सकते थे (आश्व १७।३)। द्रोण और सात्यिकी के अस्त्रलाधव को कतिपय सिद्ध दिव्यदृष्टि से देख रहे थे (द्रोण ७३।४०)। कतिपय सिद्ध दिव्यदृष्टि से सम्पन्न होने से दिव्यदृष्टि द्वारा तीनों लोकों का साक्षात्कार कर सकते थे। संजय के अनुसार सिद्धगण दिव्यदृष्टि से, कृष्ण के प्रभाव का अवलोकन कर सकते थे (द्रोण १२२।४१)। अंतर्धान होने वाले सिद्धों का विवरण पाया जाता है।

ऋषियों की भांति सिद्धों में कतिपय विशिष्ट गुण पाये जाते थे। वाल्मीकि ने शम और दम से संयुक्त कतिपय सिद्धों का उल्लेख किया है (वा.रा. २।९।५।१३)।

कतिपय सिद्ध जनहितकारी कार्यों में योगदान देते थे। लोकरक्षण और प्रजापालन के लिये राजा का होना अनिवार्य था। अतः चौदह हजार सिद्धों ने ऋषियों के साथ नागधन्वा तीर्थ में वासुकि का 'सर्वपन्नगराज' के पद पर अभिषेक किया था (शल्य







३६।३०)। कतिपय सिद्ध सामूहिक रूप से प्राणियों के कल्याण की आशंसा करते थे। अश्वस्थामा की बाण वर्षा से कृष्णादि के त्रस्त होने पर, विश्व में संकट की स्थिति आ गई। उस अवसर पर प्राणियों के हितचिन्तक सिद्धों ने प्राणियों के हितों की कामना की थी (वर्ण ४०।११५)। कतिपय सिद्धों में शैक्षणिक योग्यता पायी जाती थी। वे गूढ़ प्रश्नों का समाधान कर सकते थे। काश्यप के प्रश्नों का समाधान एक सिद्ध ने किया था (आश्व १७।२)।

सिद्धगण ऋषियों की भांति कौतूहल प्रेमी होते थे। प्रसिद्ध वीरों के पराक्रम का अवलोकन करने के लिए विमानारुढ़ होकर पहुँच जाते थे। कर्ण और भीम ने अचिन्त्य, अद्भुत और अमानवीय युद्ध कौशल को सिद्धगण हर्षान्वित होकर अवलोकन कर रहे थे (द्रोण ११३।२४)। अर्जुन ने लोमहर्षक कृत्य को देखकर सिद्धगण संतुष्ट हो गये थे (कर्ण १२।१४)। घृष्टकेतु और वीरधन्वा के नुमलयुद्ध को सिद्धों ने विस्मित होकर देखा था (द्रोण ८२।१३)। कर्ण और अर्जुन का संग्राम देखकर सिद्धगण आश्चर्यान्वित हो उठे थे (कर्ण ६३।२२)। वृत्रासुर और इन्द्र का युद्ध कौशल सिद्धों ने विमानारुढ़ होकर देखा था (शांति २७२।१७)। शल्य ने अपना अस्त्रसाध्व और भुजाओं की शक्ति सिद्धों को दिखानी चाही थी (शल्य ७।१७)।

लोकोत्तर पराक्रम को देखकर सिद्धगण वरेण्य व्यक्ति की प्रशंसा भी करते थे। सिद्धों ने अश्वत्थामा के युद्धकौशल की प्रशंसा की थी (द्रोण १३१।१३५)। भीम और अश्वस्थामा के पराक्रम से प्रसन्न होकर सिद्धों ने उन दोनों को 'युगल सूर्य' रुद्र और यमराज के नाम से अलंकृत किया था (कर्ण ११।३१।३२)। सिद्धों ने अनेक वीरों के साथ शल्य को एकाकी लड़ते देखकर उनकी प्रशंसा की थी (शल्य १२।२)।

धृतराष्ट्र, भीष्म और पाण्डु जैसे राजन्वियों के संबंध में किया गया 'ऋषि' शब्द का प्रयोग जैसे 'ऋषि' नाम की पदवी का सूचक है एवं नारद तथा अन्य ऋषियों के संबंध में 'सि' शब्द का प्रयोग हाने से 'सि' नामक पदवी का अस्तित्व ज्ञात होता है।







कतिपय ऋषि सिद्ध पदवी से अलंकृत थे। नारद को त्रैलोक्य सम्मत सिद्ध कहा जाता था (शांति ३४०।२)। कतिपय ब्राह्मण भी सिद्ध पदवी से अलंकृत थे।

शारदण्डायनी ने जिस द्विज से नियोग कराकर तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था उसे सिद्ध कहा जाता था (आदि ११.१।३५)। कतिपय ब्राह्मणी सिद्धा कहलाती थीं। तपस्या से सुपर्ण (गरुड़) को मांसपिंड बना देने वाली शाण्कली नाम की ब्राह्मणी को सिद्धा कहा गया है (उद्योग ११.१।८)। वाल्मीकि के अनुसार शवरी नाम की श्रमणी सिद्धा थी (रा.रा. ३।७४।६)। इस सिद्धा द्वारा राम और लक्ष्मण के पादवंदन करने का उल्लेख पाया जाता है एवं स्पष्ट है कि उपर्युक्त स्थलों पर सिद्ध शब्द का प्रयोग सिद्ध योनि विषयक न होकर सिद्ध पदवी विषयक रहा होगा।

उपर्युक्त समानताओं के आधार पर यद्यपि सिद्धगण ऋषियों के स्थानापन्न से प्रतीत होते हैं, पर निम्नलिखित विशेषताओं से वे ऋषियों से भिन्न वर्ग के प्रमाणित होते हैं।

सिद्धों में ऋषियों की भांति वेदों के अध्ययन तथा अध्यापन का प्रचलन न था। धार्मिक कृत्यों में अंतर था। संभवतः सिद्धगण, संध्या, तर्पण अग्निहोत्र जैसे आहिक कृत्यों का अनुष्ठान नहीं करते थे। पंच महायज्ञ तथा इष्टिकृत जैसे यज्ञों में सिद्धों की रुचि न थी। भोजनवृत्तियाँ विभिन्न थीं। फलमूलाहारी होकर भी (आश्व ५०।१५) शिलोरुछ वृत्ति तथा कपोत जैसी वृत्तियों का आश्रयण नहीं करते थे।

सिद्धों में ऋषियों की भांति आश्रम पद्धति का भी प्रचलन न था। कुरुक्षेत्राश्रम में सिद्धों की उपस्थिति (आश्रम ३१।२०) सिद्धगण संभवतः ऋषियों की भांति आश्रम बनाकर निवास न करते थे। सिद्धगण समूह बनाकर रहते (द्रोण ६३।३९) पर उनके साथ पत्नी, पुत्र और शिष्यगण के स्थायी निवास का विवरण उपलब्ध नहीं होता। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से सिद्धगण ऋषियों से पर्याप्त पीछे दिखायी देते हैं।







सिद्धों के समीप विमान होते थे। पुण्य के क्षय हो जाने पर विमानों से भूमि पर पतित हो जाते थे (शल्य २२।८६)। कतिपय स्थलों पर सिद्धों के विमान सहित भूमि पर पतित होने का विवरण प्राप्त होता है (कर्ण ५९।५)। वाल्मीकि ने इन विमानों को सिद्धों का 'भवन' कहा है। रामायण के अनुसार सब पुण्यों का क्षय हो जाने पर आकाश से टूटकर गिर पड़ते हैं (वा.रा. ५।५४।२४)।

#### (५) ऋषियों का वर्गीकरण :-

वैदिक काल में पूर्व ऋषि और नवीन ऋषि - ये दो भेद माने जाते थे। वैदिक साहित्य में ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि - इस प्रकार ऋषि वर्ग का क्रमिक विभाजन दृष्टिगोचर नहीं होता।

निरुक्तकाल के अनुसार ऋषियों के तीन प्रकार थे - (१) साक्षात्कृतधर्मा (२) असाक्षात्कृतधर्मा (३) अवर । प्रथम प्रकार के ऋषियों ने वेद मंत्रों का स्वतः साक्षात्कार किया था। अतः वे साक्षात्कृतधर्मा कहे जा सकते थे। उक्त ऋषियों के अतिरिक्त कतिपय ऋषि वेदमंत्रों का साक्षात्कार करने में असमर्थ थे। ऐसे ऋषियों को प्रथम प्रकार के ऋषि उपदेश द्वारा मंत्रज्ञान कराया करते थे। ये असाक्षात्कृतधर्मा कहे जाते थे। उक्त दोनों प्रकार के अतिरिक्त कतिपय ऐसे ऋषि भी थे। जो उपदेश मात्र से वेद मंत्रों को धारण करने में असमर्थ थे। अतः ऐसे ऋषियों के लिए वेद और वेदाङ्गों को लेखबद्ध करना आवश्यक था। निरुक्तकार ने लेखबद्ध वेद और वेदाङ्गों का अध्ययन करने वाले ऋषियों को अवर कहकर सूचित किया है।

धर्म सूत्रों में ऋषियों के अनेक अवान्तर भेदों का उल्लेख है। बोधायन धर्मसूत्र में श्रुतर्षि, तपर्षि, सत्यर्षि और काण्डर्षि के अतिरिक्त राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, जनर्षि, सप्तर्षि तथा महर्षि का नामोल्लेख है। उक्त अवान्तर भेदों में ऋषि शब्द समान है और श्रुत, तप आदि शब्द ऋषियों की विशेषताओं के सूचक हैं।







भाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार ऋषियों से दो भेद प्रतीत होते हैं - मंत्रकृत और मंत्रकृतसमय।

अर्वाचीन कोषकारों ने ऋषियों के सात प्रकारों का उल्लेख किया है। त्रिकाण्डशेष में ऋषियों के महर्षि, परमर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, श्रुतर्षि, राजर्षि और काण्डर्षि नामक भेदों का उल्लेख कर उनके क्रमशः व्यासादि, भेलादि, कणादादि, वसिष्ठादि, सुश्रुतादि, श्रुतपर्णादि और जैमिनि आदि उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। मत्स्य पुराण में - ऋषि, महर्षि, ऋषिक इत्यादि में भेद किया गया है -

गृहस्थाश्रमी -

ऐसे ऋषि परिवार के साथ रहते हुए तपस्या, अग्निहोत्र तथा अतिथि सत्कार आदि करते रहते थे। अगस्त्य गृहस्थाश्रमी थे। उनकी पत्नी लोपामुद्रा थीं, उन्होंने वृद्धदस्यु नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। जरत्कारु, देवशर्मा, गौतम, रुरु, शामीक, वसिष्ठ, अत्रि (की पत्नी अनुसुया) जमदग्नि, भरद्वाज, कश्यप, उद्दालक, उत्तथ्य (की पत्नी का नाम ममता) तथा पुत्र का नाम दीर्घतमा था (च्यवन इत्यादि का उदाहरण।

उर्ध्वरेता -

ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट न होकर आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। शुकदेव महर्षि उर्ध्वरेता थे। वे गार्हस्थ्यमूल तीन आश्रमों में रुचि न रखकर प्रारंभ से ही मोक्षधर्मी हो गये थे। मंकणक ऋषि कौमार ब्रह्मचारी थे। दुष्यन्त के अनुसार कण्वऋषि उर्ध्वरेता थे।

एक स्थल पर अट्ठासी हजार ऋषियों में से पचास ऋषियों के अतिरिक्त अन्य सभी ऋषियों को उर्ध्वरेता बताया गया है।

अष्टाशीतिसहस्राणि यातीनामूर्ध्वरेतसाम् ।

प्रजावतां च पंचाशत् ऋषीणामपि पाण्डव ॥



प्रमाण - वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

अथर्ववेद में

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

अथर्ववेद में

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

अथर्ववेद में

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

अथर्ववेद में

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं

वेदों में जो भी बातें हैं, वे सब सत्य हैं, वे सब सत्य हैं



### आश्रमवासिक ऋषि -

ये किसी निश्चित स्थान पर आश्रम बनाकर निवास करते थे। (आदि ३।२४) आयोदधौम्य (१३।२४) देवशर्मा के आश्रम में महर्षि के अतिरिक्त उनकी पत्नी रुचि और विपुल नाम का शिष्य निवास करता था। (अनु ४०।२२) गौतम (आश्व ५५।६) जमदग्नि (चप ११६।२९) कृण्व (आदि ६४।२९) का आश्रम मालिनी नदी के तट पर था। उपमन्यु का आश्रम हिमगिरि की चोटी पर था। (अनु १४।५१) कतिपय ऋषियों के अनेक आश्रमों का वर्णन है। व्यास का एक आश्रम कुरुक्षेत्र में (स्त्री १०।२१) और दूसरा मेरुपर्वत के कर्णिकार वन में था। (शांति ३१०।१३) वसिष्ठ का एक आश्रम स्थाणुतीर्थ में (कर्ण ४१।४) तथा दूसरा बदरीपाचन तीर्थ में (शल्य ४७।२७) और तीसरा कहीं मेरुपर्वत के पश्चिम भाग में स्थित था। (आदि ९३।११।१२) अगस्त्य का एक आश्रम गंगाद्वार (वन ९५।११) तथा दूसरा अगस्त्य सर के निकट था। (वन ८०।८३)

### यायावर -

ये निरन्तर भ्रमण करते हुए यायावर का जीवन बिताते थे। जरत्कारु यायावर ऋषि थे। (यायावराणां प्रवरो, आदि १३।११) नारद भ्रमण करते रहते थे। (शल्य ५३।१५) महाभारत में दुर्वासा (द्रोण १०।९) बकदालभ्य (शल्य ४०।३) और लोमश (वन ४५।९) को भ्रमणशील के रूप में वर्णित किया गया है। तेरह वर्ष तक पाण्डवों के साथ भ्रमण करने वाले धौम्य का कोई निश्चित आश्रम नहीं प्रतीत होता। (सभा ६९।१४)

### अध्यापक ऋषि -

अध्यापन कर्म वाले ऋषियों का विवरण प्राप्त होता है। अध्यापक ऋषियों के दो प्रकार प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकार में वेद-वेदाङ्ग तथा विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करने वाले ऋषियों को समाविष्ट किया जा सकता है। द्वितीय प्रकार में अस्त्र और शस्त्रों की शिक्षा देने वालों का समावेश होगा।







वेद व्यास (वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान्महातया (शांति ३१४।२३), आयोद धौम्य (आदि २।२०, ३।७७) ने अपने शिष्यों को वेद वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्रों का प्रतिज्ञान कराया था। याज्ञवल्क्य ने "शतपथ ब्राह्मण" की रचना कर सौ शिष्यों को उसका अध्ययन कराया था। (शांति ३०६।१६, १७)

शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देने वाले ऋषि परशुराम ने द्रोणाचार्य (आदि १२१।२२) के अतिरिक्त भीष्म और कर्ण (कर्ण २२।३९) को भी शस्त्रास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया था। द्रोणाचार्य के यहां ज्याघोष और ब्रह्मघोष की मिश्रित ध्वनि सुनाई देती थी।

द्रोणं ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः।

द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तन्नशृणोम्यहम्॥ (द्रोण ६१।१९)

कृपाचार्य ने पाण्डवों को शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी थी (द्रोण ८०।१४) अग्निवेश्य शस्त्रास्त्र व्यवसायी थे। (आदि १२१।७) शरद्वान् वेदों की अपेक्षा अस्त्र-शस्त्रों के संचालन में अधिक रुचि रखते थे। (आदि १२०।३) उन्होंने कृपाचार्य को शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी थी। (आदि १२०।२०) भरद्वाज ने कतिपय दिव्य अस्त्रों का ज्ञान उपयुक्त पात्रों को प्रदान किया था। (आदि १२१।६) जमदग्नि शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता होने से उनका अध्यापन करते थे। (वन ११५।३०) कर्ण उनसे ब्रह्मास्त्र सीखने उनके आश्रम जो हिमालय में है, गया था।

### पौरोहित्य वृत्तिक ऋषि -

पौरोहित्य कर्म करने वाले ऋषियों को पौरोहित्यवृत्तिक कहा जा सकता है। एकत, द्विते, त्रित नामक ऋषि अपने यजमानों से यज्ञादि कराकर गायें प्राप्त करते थे। (शल्य ३६।१८) धौम्य पाण्डवों के पुरोहित थे। (सभा. ४९।१०) कतिपय ऋषि अनेक राजाओं के यहां पौरोहित्य कर्म करते थे। वृहस्पति इन्द्र के पुरोहित थे। (आश्व ५।१६) वृहस्पति का एक यजमान उपरिचर वसु भी था (शांति ३२३।३) वसिष्ठ के अनेक यजमानों







का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत के अनुसार महर्षि वसिष्ठ संवरण (आदि ८१।३८) सौदास (अनु. ७८।२) और हिरण्यकाशिपु (शांति ३१३।२) के यहां पौरोहित्य कर्म करते थे।

कतिपय ऋषि के उद्देश्य से यज्ञादि कर्म करते थे। वेद व्यास के द्वारा यज्ञ संपादन के उद्देश्य से "अरणिमन्थन" किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है (शांति ३११।१) एकत, द्वित और त्रित नामक ऋषि यज्ञ करके "सोमपान" करना चाहते थे (शल्य ३५।३१, ३४) यज्ञ संपादन करते हुए भरद्वाज ऋषि के हविर्धन (आदि १२१।३१) में भ्रमण करने का विवरण प्राप्त होता है। परशुराम ने बाजपेय और अश्वमेघ जैसे महायज्ञों का संपादन किया था। (शल्य ४८।७८)

तपस्या के आधार पर ऋषियों का भेद किया जा सकता है। कतिपय ऋषि सुख साध्य तपस्या का अनुष्ठान करते थे। ऐसे ऋषि तपस्या करते हुए शास्त्रों का चिन्तन तथा यज्ञादि कर्मों का संपादन करते थे। वृहस्पति का पुत्र कच गुरुकुल में निवास करते हुए तपस्या करता था। कच को तपस्या के प्रभाव से दैदीप्यमान बनाया गया था। (आदि ७२।२) शुकदेव शास्त्रों का पर्यालोचन करते हुए तपस्या के प्रभाव से सुहुत अग्नि की भांति प्रज्वलित हो रहे थे। (शांति ३११।१०) निरन्तर भ्रमणशील महर्षि नारद को तपस्वी कहा गया है (शांति २२३।६) आश्रमवासी कृष्ण यज्ञादि का संपादन करते हुए तपोनिरत थे। प्रमति का पुत्र रुरु आश्रमवासी होकर तपोनिष्ठ रहता था।

कतिपय ऋषि उग्र तपस्वी बताये गये हैं। तपोनिष्ठ जाजलि की जटाओं में कुलिंग-दम्पति ने घोंसला बना लिया था। (शांति २५३।१९) जाजलि जलविष्ट होकर तपस्या कर रहे थे। (शांति २५३।४) सरोवर के तट पर तपस्या करते समय च्यवन वाल्मीक से घिर गये थे। (वन १२२।२३) माण्डव्य ऋषि शूलाविष्ट होकर भी तपस्या से विरत नहीं हुए थे। (आदि १०१।१४) ऊर्ध्वबाहु तपस्वियों का विवरण प्राप्त होता है। (आदि १०१।३) बालखिल्य महर्षि रोहिणी वृक्ष की शाखा में अधोमुख लटक कर उग्र







तपस्या कर रहे थे। (आदि २६।४४) उग्र तपस्वीयों में वाय्वाहर, जलाहार, फेनाहार, किरणाहार आदि की गणना भी की जा सकती है।

वेद-विज्ञाताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है - नित्यवादी, आर्षमतवादी और ऐतिहासिक। इसमें संदेह नहीं कि यास्काचार्य ने वेदार्थ करने के इन नौ पक्षों को उद्धृत किया है - अध्यात्म, अधिदैवत, आख्यान समय, ऐतिहासिक, नैदान, नैरुक्त, परिव्राजक, याज्ञिक और पूर्वयाज्ञिक। इन बारह निरुक्तकारों के बारह प्रकार के मत भी लिखे हैं - औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्पायणि, गार्ग्य, आग्रायण, शांकपूर्णि, और्णनाभ, तैटिकि, गालव, स्थौलाष्ठिवि, क्रौष्टुकि और कात्थक्य; परन्तु पूर्वोक्त तीन प्रधान मतवादों में सारे पक्ष और मत समाविष्ट हो जाते हैं। तीनों में पहला मत तो वेद को नित्य मानता है, दूसरा वेद की ज्ञान-राशि को शाश्वत समझता है और तीसरा वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ समझता है। पुराने और नये - जितने भी ऐतिहासिकों ने वेदों का स्वाध्याय या शोध कार्य किये हैं, उन सबका सुदृढ़ मत है कि ईजिप्शियन, मंगोलियन, जोरॉसि-ट्रयन, ग्रीक, रोमन, असीरियन, बैबीलोनियन, सुमेरियन, फिनिशियन, ट्युनिक, स्लावोनियन, वेंडिक, केलिटक, मूसाई तथा यहूदी आदि जितने भी प्राचीन धर्म हैं, उनमें से एक का भी ग्रन्थ वेद-विशेषतः ऋग्वेद के समान प्राचीन नहीं है। इसलिये मानव-जाति के प्राचीनतम धर्म, आचार-विचार, त्याग, तप, कला, विज्ञान, इतिहास, राष्ट्र-संघटन और समाज-व्यवस्था आदि का परिज्ञान प्राप्त करने के लिये एकमात्र साधन ऋग्वेद ही है। यही कारण है कि संसार की अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि प्रधान भाषाओं में ऋग्वेद का अनुवाद हो चुका है और सारी वसुन्धरा में ऐसे अनेक वैदिक संस्थान स्थापित हैं, जहाँ अब तक ऋग्वेदीय वाङ्मय पर अन्वेषण और गवेषण का कार्य चल रहा है। अनेक वेदाध्यानियों ने तो इस दिशा में अपना जीवन ही खपा डाला है। बड़े-बड़े चिन्तनशील पुरुष ऋग्वेद के विमल विज्ञान पर विमुग्ध हैं। पौरस्त्य मनीषी तो इसे धर्म-मूल समझते ही हैं - उनके मत से तो चराचर-ज्ञान का







आधार यह है ही; किंतु अधिकांश पाश्चात्त्य वेद-विद्यार्थी भी ऋग्वेद की अलौकिकता पर आसक्त हैं।

हिन्दू-जाति की प्रख्यात पुस्तक मनुस्मृति (२।६) में कहा गया है - 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' अर्थात् 'समस्त वेद धर्म का मूल है।' मनु महाराज एक-दूसरे स्थल पर कहते हैं - 'वेद न पढ़कर और यज्ञ न करके जो मनुष्य मुक्ति पाने की चेष्टा करता है, वह नरक में जाता है' (मनुस्मृति ६।२७)। जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य) वेद न पढ़कर किसी भी शास्त्र या कार्य में श्रम करता है, वह जीते-जी अपने वंश के साथ अतिशीघ्र शूद्र हो जाता है' (मन. २।१६८)। मनुजी ने वेदनिन्दक को ही नारितक कहा है, ईश्वर न मानने वालों को नहीं (मनु. २।११)। 'भस्मड्यलु स्रष्टु तच्छ्रुति' में जकोलियट ने लिखा है - 'धर्म ग्रन्थों में एकमात्र वेद ही ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान विज्ञान से मिलते हैं; क्योंकि वेद में विज्ञानानुसार सृष्टि-रचना का प्रतिपादन किया गया है।' बाल साहब ने 'मग्नलट्टीछ्व ग्रलट्ट-उद्गुडुकरस्त्रुय' में कहा है - 'संसार का प्राचीनतम धर्मग्रन्थ ऋग्वेद है।' रैगोजिन का मत है - 'ऋग्वेद का समाज बड़ी सादगी, सुन्दरता और निष्कपटता का था।' वाल्टेयर का अभिमत है - 'केवल इसी ऋग्वेद की देन के कारण, पश्चिम पूर्व का सदा ऋणी रहेगा।' विख्यात वेदानुसंधित्सु मैक्समूलर ने यह उद्गार प्रकट किया है -

यावत्स्थायन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावद्वेदमहिमा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

अर्थात् 'जब तक इस जगतीतल पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तब तक मानव-जाति में ऋग्वेद की महिमा का प्रचार रहेगा।'

संस्कृत-साहित्य में ऋग्वेद की २१ संहिताएँ बतायी गयी हैं; परंतु इन दिनों केवल शाकलसंहिता ही प्राप्त और प्रकाशित है। सैकड़ों वर्षों से देश और विदेश में इसी







पर कार्य हुआ है और हो रहा है। इन दिनों ऋग्वेद का अर्थ या तात्पर्य यही संहिता है। इसमें सब १०४६७ मन्त्र हैं। चारों वेदों की ११३१ संहिताओं में केवल साढ़े ग्यारह प्रकाशित हो सकी हैं, जिनमें यह सबसे बड़ी है। सामवेद की कौथुमसंहिता में इसी के मन्त्र भरे पड़े हैं - केवल ७५ मन्त्र कौथुम के अपने हैं। अथर्ववेद की शौनकसंहिता में भी शाकल के १,२०० मन्त्र हैं। इसीलिये कहा जाता है कि 'इसके सविधि स्वाध्याय से प्रायः सारे वेदों का स्वाध्याय हो जाता है।' परन्तु इसके लिये पहले ब्राह्मणग्रंथ, निरुक्त, प्रातिशाख्य, जैमिनीय मीमांसा, सायण-भाष्य आदि का अध्ययन आवश्यक है।

शाकल संहिता पर स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, हस्तामलक, वेङ्कटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द, रावण, मुद्गल, देवस्वामी, चतुर्वेदस्वामी आदि के भाष्य हैं। परन्तु कुछ तो अप्रकाशित हैं और जो प्रकाशित भी हैं, वे अधूरे हैं। केवल सायण-भाष्य पूर्ण है। सम्पूर्ण शाकल संहिता के स्वाध्याय, मनन-चिन्तन और अन्वेषण का आधार एकमात्र यही है। इसी सायण-भाष्य के अवलम्ब पर निखिल जगत् के ऋग्वेद के अनुवाद और शोध का कार्य चल रहा है। यह भाष्य परम्परा-प्राप्त अर्थ का अनुधावन करने वाला है, इसीलिये प्रामाणिक माना जाता है। सायण-भाष्य नहीं रहता तो विश्व में ऋग्वेद का विशद विस्तार भी नहीं होता, इस ओर संसार अन्धकार में ही रहता।

ऋग्वेदीय मन्त्रों के द्रष्टा केवल साधारण या उद्धट साहित्यिक ही नहीं थे, वे तपोमूर्ति और सत्यसंध थे। आर्षमतवादी कहते हैं कि 'ईश्वरीय ज्ञान अनन्त और अगाध है। किसी-किसी सत्यकाम योगी को समाधि दशा में इस वैदिक ज्ञान-राशि के अंश का साक्षात् हो जाता है। योगी या ऋषि अपनी अनुभूति को जिन शब्दों में व्यक्त करता है, वे मन्त्र हैं। स्फूर्ति दैवी है, परन्तु शब्द ऋषि के हैं।'।

ऋग्वेद में ही ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि 'ऋषि वह है, जिसने मन्त्रगत ज्ञान के साथ मन्त्रों को भी समाधि-दशा में अपने निर्मल अन्तःकरण में प्राप्त किया है।' ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ४३, मन्त्र ५ में उसे ही ऋषि कहा गया है, जो







अतीन्द्रिय द्रष्टा है। ५।४५।७ और ८।६।५ में भी प्रायः यही बात है। १०।८०।४ में कहा गया है, कि 'सहस्र' गायों के सेवक ऋषि को अग्निदेव मन्त्र-द्रष्टा पुत्र देते हैं।' १०।७१।३ में कहा गया है - 'विद्वान् यज्ञ के द्वारा वचन (भाषा) का मार्ग पाते हैं। ऋषियों के अन्तःकरण में जो वाक् (वेदवाणी) थी, उसको उन्होंने प्राप्त (प्रकट) किया। उसको उन्होंने सारे मनुष्यों को पढ़ाया। सातों छन्द उसी वैदिक भाषा (वाणी) में स्तुति करते हैं।' कात्यायन के 'सर्वानुक्रम-सूत्र' में कहा गया है - 'द्रष्टार ऋषयः स्मर्तारः।' अर्थात् 'ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा और स्मर्ता हैं।' यास्कने निरुक्त (नैगमकाण्ड २।११) में लिखा है - 'ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श।' आशय यह है कि 'ऋषियों ने मन्त्रों को देखा; इसलिये उनका नाम 'ऋषि' पड़ा।' इन सबके अतिरिक्त यह भी विदित होता है कि 'परमात्मा से ऋक्, ऋचा या मन्त्र प्रकट हुए (१०।९०।९)। केवल मन्त्रगत् ज्ञानराशि के प्रकटीकरण की बात कहीं नहीं पायी जाती।

सभी स्तोता ऋषि 'मानव-हितैषी' कहे गये हैं (शौनक), तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पञ्चम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज, सप्तम के वसिष्ठ, अष्टम के कण्व और एकमत से नवम के अङ्गिरा द्रष्टा कहे गये हैं। प्रथम तथा दशम मण्डलों के द्रष्टा अनेक ऋषि कहे गये हैं, तो भी इन ऋषियों के पुत्र, पौत्र आदि तथा अन्यान्य ऋषि और इनके अपत्य एवं गोत्रज भी मन्त्रद्रष्टा हैं। तत्तद् मण्डलों में उक्त ऋषि और उनके वंशधर ही प्रधान द्रष्टा हैं, इसलिये उनके ही नाम कहे गये हैं। पिता, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का एक साथ रहना सम्भव नहीं है; इसलिये सभी मन्त्र एक साथ ही नहीं प्रकट हुए। ऋग्वेद के दूसरे ही मन्त्र में प्राचीन और नवीन ऋषियों की बात आयी है। १।१९।११ में 'पूर्ववर्ती' और ४।२०।५ में 'नवीन' ऋषियों के स्तवन का विवरण है। इसके आगे के २१ से २४ सूक्तों के ग्यारहवें मन्त्रों में भी 'पूर्ववर्ती' ऋषियों की स्तुति की गयी है। ६।२१।५ में प्राचीन, मध्ययुगीन और नवीन-तीन प्रकार के ऋषियों का कथन है। ६।४४।१३ में तो प्राचीन और नवीन स्तोत्रों की भी बात आयी है। ७।२२।९ में वसिष्ठ इन्द्र से कहते हैं - 'जितने प्राचीन ऋषि हो गये हैं और जितने नवीन हैं, सभी तुम्हारे लिये स्तोत्र उत्पन्न



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



(अभिव्यक्त) करते हैं।' इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि ऋषियों ने विभिन्न समयों में विविध मन्त्र देखे। बहुत पीछे व्यास और उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि ने मन्त्र-संकलन करके संहिताएँ बनायीं।

ऋग्वेदीय मन्त्रद्रष्टा गृहस्थ थे - प्रायः सबके गोत्र और वंश चले हैं; तो भी वे जल में कमलपत्र के समान गार्हस्थ्य के प्रपञ्च-पाखण्ड से निर्लिप्त थे। वे चेतन-तत्त्व के चिन्तक थे, जीवन्मुक्त थे। वे अरण्यानी में पावन जीवन बिताते थे, वे एकान्त-शान्त स्थान में ब्रह्म-द्रव की साधना में लीन रहते थे। वे चेतनगत प्राण थे और उनका बाह्य एवं आन्तर अध्यात्म-ज्योति से उद्गसित रहता था। वे स्थितप्रज्ञ थे और आत्मरस में विभोर रहते थे। वे ईश्वर की दिव्य विभूतियों में रमण करते थे। वे चेतन के भव्य भावों की अभिरामता में निमग्न रहते थे। वे विशाल विश्व के प्रत्येक कण में, प्रत्येक अणु में, प्रकृति की प्रत्येक लय में परम तत्त्व का विकास पाते थे, प्राञ्जल प्रकाश देखते थे, ललित नृत्य देखते थे, मनः-प्राण-परिप्लुतकारी संगीत सुनते थे, सबकी स्तुति और पूजन करते थे। वे सभी पदार्थों को चेतनमय देखते थे - वे चेतन के साथ ही खाते-पीते, सोते-जागते और बोलते-बतलाते थे। वे वस्तुतः ऐसा ही अनुभव करते थे और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' में अनुस्यूत रहते थे। वे अपने में सारी सृष्टि को और सारी सृष्टि में अपने को देखते थे, उनका भी नमन करते थे, उनका भी यजन करते थे। जो वीर अपनी तलवार से बातें नहीं करता, वह भी कोई वीर है? जो वैद्य अपनी औषधियों के आगे सिर नहीं झुकाता, वह भेषज का रहस्य क्या जाने। यदि आप भी परमात्मा की दिव्य विभूतियों को जीवन में ढाल लें - देवों से घिरे रहें तो आपका जीवन भी आनन्दमय, तेजोमय, सुगन्धमय और रसमय हो जाय तथा आप भी समदर्शी होकर प्रत्येक जड़-पदार्थ को भी चेतन-प्लावित समझने लगें।

मन्त्रद्रष्टा ऋषि सिद्धयोगी थे। वे त्रिकालदर्शी थे। वे 'वर्तमान और भविष्य की अद्भुत घटनाओं को भी देखते थे।' (१।२५।११)। वे महान् तपस्वी थे। कितने ही ऋषि







वल्कल धारण करते थे (१०।१३६।२)। कितने ही 'लौकिक व्यवहार छोड़कर परमहंस बन जाते थे।' वे योगबल से वायु पर चढ़ जाते थे। वायु भी उनकी वशंवर्तिता में आबद्ध थी (१०।१३६।३)। वे आकाश में उड़ते और सारे पदार्थों को देख लेते थे (१।१३६।४)। वे पूर्व तथा पश्चिम दोनों समुद्रों में निवास करते थे और चराचर के सारे ज्ञातव्य विषयों को जानते थे। वे आत्मरस के उत्पादक एवं आनन्ददाता मित्र थे (१०।१३६।५-६)।

ऋषि सेवा का मर्म समझते थे; इसलिये वे 'सेवाव्रती' - पर सदा प्रसन्न रहते थे (१।५३।१)। उनका मत था - सेवक यम पथ से नहीं जाते हैं (१।३८।५)। वे पूजा का महत्त्व समझते थे; वे यह भी जानते थे कि देवता तपस्वी के ही मित्र होते हैं (४।३३।११); इसलिये वे अपूजक को महान् पापी समझते थे (२।१२।१०)। वे गृहागत अतिथि का यथेष्ट सम्मान करके उसे प्रचुर धन प्रदान करते थे (२।१३।४; ५।४।५)। वे समाज की सुव्यवस्था के लिये परस्पर सहायता करना आवश्यक समझते थे (१।२६।३)। उनका मत था कि दाता दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं और जरा-मरण-शून्य स्थान को जाते हैं (१।१२५।६)। विद्वान ही समाज के मस्तिष्क होते हैं; इसलिये 'विद्वान् पुरुष को द्रव्य-दान देना' अत्यावश्यक समझते थे (१।१२७।४)। उनका निर्देश था - दाता के नाम की मृत्यु नहीं होती, दाता दरिद्र नहीं होते; उन्हें क्लेश, व्यथा और दुःख नहीं सताते, उन्हें स्वर्ग और मर्त्यलोक के सारे पदार्थ सुलभ हो जाते हैं (१०।१०७।८)। उनका अनुभव था - याचक को अवश्य धन देना चाहिये; क्योंकि जैसे रथ-चक्र नीचे-ऊपर घूमता रहता है, वैसे ही धन भी कभी किसी के पास रहता है और कभी दूसरे के पास चला जाता है। वह कभी स्थिर रहने वाला नहीं है (१०।११७।५)। ऋषि का स्पष्ट घोष है -

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्या।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ (ऋक. १०।११७।६)

अर्थात् 'जो स्वार्थी है, उसका अन्न-धन उत्पन्न करना वृथा है। मैं सच कहता हूँ, इस प्रकार का उत्पादन उत्पाद का वध करा देता है - जो न तो धन को धर्म-कार्य में







लगाता है, न अपने मित्र-हितैषी को देता है, जो स्वयं पेट पालने वाला है, वह केवल साक्षात् पापी है और पापी सत्पथ से नहीं जाते' (९।७३।६)। ऋषि कक्षीवान् कहते हैं 'जो धनी दूसरे का पालन नहीं करता, उसे मैं घृणित समझता हूँ (१।१२०।१२)।' ऋषि देवल का सिद्धान्त है 'देवता अदाताओं के हिंसक हैं' (९।१३।९)।

ऋषि हितैषी पुरुष का बड़ा सम्मान करते थे (१।६९।२)। मन्त्रद्रष्टा इन्द्र के इसलिये उपासक थे कि इन्द्र मनुष्य-हितैषी थे (१।८४।२०)। वे उसी को सच्चा आर्य अपत्य समझते थे, जो मनुष्य-पालक है (४।२।१८)। पुण्यवान् स्तोता को ही सन्मार्ग की प्राप्ति होती है (३।३।१)।

ऋषियों की उत्कट अभिलाषा थी, 'हमारी बुद्धि वेदज्ञान समर्थ बने (१।११२।२४)। वे 'विद्वान् पुत्र' ही चाहते थे (१।७३।९)। 'वे ऐसा पुत्र चाहते थे, जो कानों में स्वर्ण और गले में मणि धारण करने वाला हो' (१।१२२।११४)। वीर पुत्र में उनकी बड़ी रुचि थी (१।१२५।३; ९।९७।२१, २६)। वे उत्साही, जनप्रिय और विद्याध्ययन में 'दक्ष पुत्र' की कामना करते थे (१।१४१।११)। वे देवता से 'बलवान्, हव्यवाहक, महान्, यज्ञकारी और सत्यबल विशिष्ट पुत्र' की याचना करते थे (४।११।४)। वे 'अपने कार्य से पिता, पितामह आदि की कीर्ति को प्रख्यात करने वाले पुत्र को बहुत पसंद करते थे (५।२५।५)। वे अपने 'मानव-हितैषी पुत्र' की इच्छा करते रहते थे (७।१।२१)।

वे आलसी से घृणा करते थे (२।३०।७)। निन्दक और दुर्बुद्धि को हेय समझते थे (१।१२९।६; १।१३१।७)। निन्दक से कोसों दूर रहना चाहते थे (६।५४।२७)। द्वेषी से भी दूर रहना चाहते थे (२।२९।२ तथा २।३०।६)। ब्राह्मण-द्वेषी तथा मांस-भक्षक को अपना शत्रु समझते थे (७।१०४।२)। पापियों और हिंसकों से त्राण पाने के लिये अग्निदेव से प्रार्थना करते थे (८।४४।३०)। यही बात १।२९।७ में भी है। उनके देवता मन्त्रद्वेषियों के संतापक और क्रोधी हिंसक थे (२।२३।४-५)।







हव्यदाता एवं धार्मिक के हिंसक को ऋषि वध्य समझते थे (६।६२।३; ७।२५।३); परंतु वे उदार और दयालु इतने थे कि राक्षस भी यदि रोगी है तो उसका विनाश नहीं चाहते थे (३।१५।१)।

यज्ञ, दान और तप - धर्म के ये तीन प्रधान अङ्ग हैं - इन तीनों के ही उपासक और साधक ऋषि थे। वे यज्ञ को 'ऋत' अथवा 'सत्यात्मा' मानते थे (९।७३।८-९)। यज्ञ का साध्यार्थ है पूजन। मन, वचन एवं कर्म से चराचर का पूजन, सेवन और आराधन यज्ञ है। इसी यज्ञ से सृष्टि-चक्र संचरणशील है। इसीलिये यज्ञ को विश्व का उत्पत्ति-स्थान तथा श्रेष्ठ कर्म कहा गया है। (शातपथब्राह्मण १।७।४।५)। ऐतरेय ब्राह्मण (१।४।३) का मत है कि 'यज्ञ से एवं मन्त्रों के उच्चारण से वायुमण्डल में परिवर्तन हो जाता है और निखिल विश्व में धर्मचक्र चलने लगता है। जैमिनीय मीमांसा तो केवल यज्ञ से ही मुक्ति मानती है। श्रीमद्भगवद्गीता में सृष्टि-चक्र का संचालक यज्ञ को माना गया है। ऋग्वेद के मत से तो 'यज्ञ ही प्रथम या मुख्य धर्म है' (१०।९०।१६)। अनेकानेक मन्त्रों में यज्ञ को 'सत्यभूत' और 'सत्यरूप' कहा गया है (४।२।१६; ४।३।९; ९।६९।३; ९।७२।६; ९।९७।३२; १०।६३।११)। यज्ञ के द्वारा परस्पर हित होता है, समाज का सुचारुरूप से संचालन होता है और जागतिक समृद्धि होती है। यज्ञाग्नि से मेघ बनते हैं, वृष्टि होती है, अन्न उत्पन्न होता है और अन्ततः प्रजा सुखी होती है। यही नहीं, यज्ञ में आत्मशक्ति और मन्त्रशक्ति जागरित होती है तथा दैवी स्फूर्ति प्राप्त होती है, जिससे याज्ञिक मोक्षमार्ग में आरुढ़ हो जाता है; फिर उसके मङ्गलभागी होने में क्या संदेह (२।३८।१)। जो यज्ञहीन है, वह सत्य-शून्य है। उसे नरक के सिवा अन्य स्थान कहाँ मिले (४।५।५)।

जैन-बौद्धों में अहिंसा, ईसाइयों में प्रेम, सिखों में भक्ति और मुसलमानों में नमाज़ का जो महत्त्व है, उससे भी बढ़कर वैदिक धर्म में यज्ञ का महत्त्व है; जो अमोघ शक्ति और मुक्ति की प्राप्ति का महान् साधन है। वैदिक वाङ्मय ही नहीं, श्रीमद्भगवद्गीता भी यज्ञ से मोक्ष मानती है (४।३२)। यहाँ गाँधीजी ने भी अपने 'अनासक्ति-योग' में



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



लिखा है - 'यज्ञ के बिना मोक्ष नहीं होता।' इसीलिये आर्य ऋषि याज्ञिक शक्ति को उद्बुद्ध रखते थे। इसका सूक्ष्मतम रहस्य उन्हें सम्यक् ज्ञात था। इसीलिये उनके प्रति दैवी शक्ति ही नहीं, परमात्मशक्ति भी जागरुक रहती थी और इसीलिये आर्य-ऋषि को ज्योति अथवा आभ्यन्तर प्रकाश प्रदान किया गया था (२।११।१८)। कदाचित् इसीलिये उन्हें सारी पृथ्वी भी दे दी गयी थी, ताकि वे इसे सुख-समृद्धि से सम्पन्न रखें तथा अपने सुकर्मों और आदेशों के द्वारा मानवों को परमधाम का मार्ग दिखाया करें (४।२६।२)।

आदर्श मानवता के लिये जिस सदगुणावली की आवश्यकता होती है, उसमें गाँधीजी के समान ही अनेक महापुरुषों ने सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य को प्राधान्य दिया है। इन तीनों सदगुणों के सम्बन्ध में ऋग्वेदीय मन्त्र-द्रष्टाओं का अभिमत देखिये। पहले ब्रह्मचर्य को लीजिये। ऋषि ब्रह्मचर्य को परम धन मानते थे। वे इस धन के परम उपासक थे, इसे वे तेजःपुञ्ज समझते थे और याज्ञिक के लिये अनिवार्य मानते थे। ऋषि कहते हैं-

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु।

यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥(ऋक. २।२३।१५)

अर्थात् 'हे यज्ञजात बृहस्पति ! आर्य लोग जिस धन की पूजा करते हैं, जो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगों में शोभा पाता है, जो धन अपने ओज से प्रदीप्त है, वही विलक्षण तेजःशाली ब्रह्मचर्य-धन हमें दो।'

प्रत्येक धार्मिक तथा धर्म-कार्य के लिये वे ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक और अनिवार्य समझते थे। वे अब्रह्मचारी को यज्ञ में विघ्न जानते थे; इसलिये वे इन्द्र से प्रार्थना करते थे कि 'हमार यज्ञ में अब्रह्मचारी (शिश्रदेव) विघ्न न डालने पायें।'

ऋषियों का अनुभव था कि हिंसक की बुद्धि भ्रष्ट होती है; इसलिये अहिंसा-पालन तो वे और भी आवश्यक समझते थे। ऋषि अगस्त्य मरुद्गणों से प्रार्थना







करते हैं - 'मरुतो ! अहिंसक होकर हमें (मानवों को) सुबुद्धि प्रदान करो' (१।१६६।६)। ऋषि गृत्समद कहते हैं - 'हम हिंसाशून्य होकर परम सुख में निवास करें' (२।२७।१६)। ऋषि वसुश्रुति की कामना है - 'इला, सरस्वती और मही नाम की तीनों देवियाँ हिंसा-शून्य होकर इस यज्ञ में आगमन करें' (५।५।८)। अत्रि ऋषि के अपत्य स्वस्ति कहते हैं - 'वायु और इन्द्र ! अहिंसक होकर सोमरस का सेवन करो।' (५।५१।६)। ऋषि अर्चनाना की कामना है - 'गृह में हमें अहिंसक मित्र का सुख प्राप्त हो' (५।६४।३)। ऋषि वसिष्ठ कहते हैं - 'इन्द्र ! हम अहिंसक होकर ही तुम्हारी दया प्राप्त करते हैं' (७।२०।८)। ये ही ऋषि मरुतों से विनय करते हैं - 'मारुतो ! तुम लोग अहिंसक होकर इस यज्ञ में सोमरूप हव्य ग्रहण करो' (७।५९।६)। ऐसे कथन प्रभूत मात्रा में पाये जाते हैं, जिनसे जाना जाता है कि आदर्श मानवता के लिये वे अहिंसा को अनिवार्य नियम मानते थे।

सत्य के तो वे प्रबल पक्षपाती थे ही। उनका प्रधान धर्मानुष्ठान (यज्ञ) सत्यस्वरूप (ऋत) था। वे असत्य पोषक को 'राक्षस' समझते थे (१०।८७।११)। उनके देवता सत्य-स्वभाव थे (८।९।१५)। कण्व-पुत्र प्रस्कण्व ऋषि उषा से याचना करते हैं - 'उषा ! मुझे सत्य वाक् दो' (१।४८।२)। शक्ति-पुत्र पराशर का अनुभव है - 'सत्य मन्त्र द्वारा ही आकाश धृत है' (१।६७।३)। उक्थ्य-पुत्र दीर्घतमा ऋषि का विश्वास था - 'सूर्य सत्य की पूर्ति तथा असत्य का नाश करके संसार का भार वहन करते हैं' (१।१५२।३)। स्पष्ट है कि ऋषि सत्य को प्रकाश तथा असत्य को अन्धकार समझते थे। अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा का कहना है - 'सत्य-रक्षक ऋषि देवों से सच्ची बात कहते थे' (२।१७९।२)। आगे के मन्त्रों में कहा गया है - 'हम सत्यप्रतिज्ञ होकर स्तुति करते हैं' (१।१८०।७)। उनके इन्द्रदेव 'सत्यसंकल्प' थे (२।१५।१)। यही बात २।२२ के प्रथम तीन सूक्तों के अन्त में भी कही गयी है। २।२४।७ में अङ्गिरा लोगों को 'सत्यवादी' और 'सर्वज्ञाता' बताया गया है। वाक्-पुत्र प्रजापति की उक्ति है - 'पुरातन सत्यवादी महर्षियों ने द्यावापृथिवी से अपना



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



अभिलषित अर्थ प्राप्त किया था' (३।५४।४)। ऋषि वामदेव का अनुभव है - 'सत्यरहित और सत्य-वचन-शून्य पापी नरक-स्थान को उत्पन्न करता है' (४।५।५)। यहीं ११वें मन्त्र में वामदेव कहते हैं - 'हम नमस्कारपूर्वक अथवा विनम्र होकर सत्य बोलते हैं।' ४।११।३ में वे पुनः कहते हैं - 'सत्यकर्मा यजमान के लिये शक्तिशाली रूप और धन उत्पन्न हुए हैं।' ५।४०।७ में अत्रि ऋषि को 'सत्य-पालक' कहा गया है। ऋषि-वृन्द केवल 'सत्य-धारकों' को ही यज्ञ में बुलाते थे (५।५१।२)। ४।५१।१० में लिखा है - 'वरुण, मित्र और अग्नि सत्यकर्मा स्तोताओं के एकान्त पक्षपाती हैं।' ७।१०४।१२-१३ में वसिष्ठ का उद्धार है - 'विद्वान् को ज्ञात है कि सत्य एवं असत्य परस्पर प्रतिसपद्धी हैं। इनमें जो सत्य और सरलतम है, सोमदेव उसी का पालन करते हैं तथा असत्य की हिंसा करते हैं।' 'सोमदेव पापी और मिथ्यावादी को नहीं छोड़ते, मार देते हैं। वे राक्षस तथा असत्यवादी को मार डालते हैं।' १०।३७।२ में कहा गया है - 'सत्य वह है, जिसका अवलम्बन करके आकाश और दिन वर्तमान है, सारा संसार एवं प्राणिवृन्द जिस पर आश्रित हैं, जिसके प्रभाव से प्रतिदिन जल प्रवाहित होता है और सूर्य उगते हैं।' इन उद्धरणों से जाना जाता है कि वे सत्य के कितने अनन्य अनुरागी थे और असत्य को कितना जघन्य समझते थे। वे सत्यचक्र के द्वारा ही विश्वचक्र का संचालन मानते थे। सत्य के द्वारा सूर्य अपनी किरणों को सायंकाल एकत्र करते और सत्य के द्वारा ही प्रातःकाल किरणों को विस्तृत करते हैं (८।७५।५)।

मेध्य ऋषि का सिद्धांत है - 'देवताओं की संख्या तैंतीस है और वे सत्यस्वरूप हैं' ('बालखिल्य-सूक्त' १।२)। यम ने यमी से कहा है - 'मैं सत्यवक्ता हूँ। मैंने कभी भी मिथ्या-कथन नहीं किया है।' (१०।१०।४)। ऐसे उद्धरण और भी दिये जा सकते हैं। मुख्य बात यह है कि मन्त्र-द्रष्टाओं का सर्वस्व सत्य था और सर्वाधिक घृणा उन्हें असत्य से थी। फलतः आदर्श मानवता के लिये जिस सद्गुणावली की आवश्यकता है, वह उनमें चूड़ान्त रूप में थी।







## (६) ऋषियों का संक्षिप्त परिचय :-

### महर्षि विश्वामित्र

पुरुषार्थ, सच्ची लगन, उद्यम और गरिमा के रूप में महर्षि विश्वामित्र के समान शायद ही कोई हो। इन्होंने अपने पुरुषार्थ से, अपनी तपस्या के बल से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया, राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने, देवताओं और ऋषियों के लिये पूज्य बन गये और उन्हें सप्तर्षियों में अन्यतम स्थान प्राप्त हुआ। साथ ही सबके लिये वे वन्दनीय भी बन गये।

इन्हें अपनी समाधिजा प्रज्ञा से अनेक मन्त्रस्वरूपों का दर्शन हुआ, इसलिये ये 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि' कहलाते हैं। ऋग्वेद के दस मण्डलों में तृतीय मण्डल, जिसमें ६२ सूक्त हैं, इन सभी सूक्तों (मन्त्रों का समूह) के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसीलिये तृतीय मण्डल में इन्द्र, अदिति, अग्निपूजा, उषा, अश्विनी तथा ऋभु आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं और अनेक ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म आदि की बातें विवृत हैं। अनेक मन्त्रों में गो-महिमा का वर्णन है। तृतीय मण्डल की कतिपय ऋचाओं के द्रष्टा विश्वामित्र के मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्र हुए हैं।

### वैश्वामित्र मण्डल का वैशिष्ट्य -

वैसे तो वेद की महिमा अनन्त है ही, किंतु महर्षि विश्वामित्र जी के द्वारा दृष्ट तृतीय मण्डल में ब्रह्म-गायत्री का जो मूल मन्त्र है, वह उपलब्ध होता है। इस ब्रह्म-गायत्री-मन्त्र के मुख्य द्रष्टा तथा उपदेष्टा आचार्य महर्षि विश्वामित्र ही हैं। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ६२वें सूक्त का दसवाँ मन्त्र 'गायत्री-मन्त्र' के नाम से विख्यात है, जो इस प्रकार है -

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥'







यदि महर्षि विश्वामित्र न होते तो यह मन्त्र हमें उपलब्ध न होता, उन्हीं की कृपा से - साधना से यह गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ है। यह मन्त्र सभी वेदमन्त्रों का मूल है - बीज है, इसी से सभी मन्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिये गायत्री को 'वेदमाता' कहा जाता है। यह मन्त्र सनातन परम्परा के जीवन में किस तरह अनुस्यूत है तथा इसकी कितनी महिमा है, यह तो स्वानुभव-सिद्ध है।

ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र के आख्यान तथा शुनःशेष के आख्यान में महर्षि विश्वामित्र की महिमा का वर्णन आया है। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में ३०वें तथा ५३वें सूक्त में महर्षि विश्वामित्र का परिचयात्मक विवरण आया है। वहाँ से ज्ञान होता है कि ये कुशिक गोत्रोत्पन्न कौशिक थे (३।२६।२-३)। ये कौशिक ब्राह्मण महान् ज्ञानी थे, सारे संसार का रहस्य जानते थे (३।२९।१५)। ५३वें सूक्त के ९वें मन्त्र से ज्ञात होता है कि महर्षि विश्वामित्र अतिशय सामर्थ्यशाली, अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा, देदीप्यमान तेजों के जनयिता, अध्वर्यु आदि के उपदेष्टा तथा राजा सुदास के यज्ञ के आचार्य रहे हैं। महर्षि विश्वामित्र के आविर्भाव का विस्तृत आख्यान पुराणों तथा महाभारत आदि में आया है। तदनुसार कुशिक वंश में उत्पन्न चंद्रवंशी महाराज गाधि की सत्यवती नामक एक श्रेष्ठ कन्या हुई। जिसका विवाह मुनिश्रेष्ठ भृगुपुत्र ऋचीक के साथ सम्पन्न हुआ। ऋचीक ने पत्नी की सेवा से प्रसन्न होकर अपने तथा महाराज गाधि को पुत्र सम्पन्न करते हुए कहा - 'देवि! यह दिव्यचरु दो भागों में विभक्त है। इसके भक्षण से यथेष्ट पुत्र की प्राप्ति होगी। इसका एक भाग तुम ग्रहण करना और दूसरा भाग अपनी माता को दे देना। इससे तुम्हें एक श्रेष्ठ महातपस्वी पुत्र प्राप्त होगा और तुम्हारी माता को क्षत्रिय शक्ति सम्पन्न तेजस्वी पुत्र होगा।' सत्यवती यह दोनों चरु-भाग प्राप्त कर बड़ी प्रसन्न हुई।

अपनी श्रेष्ठ पत्नी सत्यवती को ऐसा निर्देश देकर महर्षि ऋचीक तपस्या के लिये अरण्य में चले गये। इसी समय महाराज गाधि भी तीर्थ दर्शन के प्रसंगवश अपनी कन्या सत्यवती का समाचार जानने आश्रम में आये। इधर सत्यवती ने पति द्वारा प्राप्त







चरु के दोनों भाग माता को दे दिये और दैवयोग से माता द्वारा चरु-भक्षण में विपर्यय हो गया। जो भाग सत्यवती को प्राप्त होना था, उसे माता ने ग्रहण कर लिया और जो भाग माता के लिये उद्दिष्ट था, उसे सत्यवती ने ग्रहण कर लिया। ऋषि-निर्मित चरु का प्रभाव अक्षुण्ण था, अमोघ था। चरु के प्रभाव से गाधि-पत्नी तथा देवी सत्यवती - दोनों में गर्भ के चिन्ह स्पष्ट होने लगे।

इधर ऋचीक मुनि ने योग बल से जान लिया कि चरु-भक्षण में विपर्यय हो गया है। यह जानकार सत्यवती निराश हो गयीं, परन्तु मुनि ने उन्हें आश्वस्त किया। यथा समय सत्यवती पुत्र रूप में जमदग्नि पैदा हुए और उनके पुत्र परशुराम हुए। दूसरी ओर गाधि-पत्नी ने चरु के प्रभाव से दिव्य ब्रह्मशक्ति-सम्पन्न महर्षि विश्वामित्र को पुत्र रूप में प्राप्त किया। संक्षेप में यही महर्षि विश्वामित्र के आविर्भाव की कथा है। आगे चलकर महर्षि विश्वामित्र के अनेकपुत्र-पौत्र हुए, जिनसे कुशिकवंश विख्यात हुआ। ये गोत्रकार ऋषियों में परिगणित हैं। आज भी सप्तर्षियों में स्थित होकर महर्षि विश्वामित्र जगत् के कल्याण में निरत हैं।

### महर्षि अत्रि

सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के ऋषि अलग-अलग हैं। उसमें से ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिए यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में ८७ सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रि द्वारा विशेषरूप से अग्नि, इन्द्र, मरुत्, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवों की महनीय स्तुतियाँ ग्रथित हैं। इन्द्र तथा अग्नि देवता के महनीय कर्मों का वर्णन है।

महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। पुराणों में इनके आविर्भाव का तथा उदात्त चरित्र का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। वहाँ के वर्णन के अनुसार महर्षि अत्रि ब्रह्माजी के मानस-पुत्र हैं और उनके चक्षुभाग से इनका प्रादुर्भाव हुआ - 'अक्ष्णोऽत्रिः'







(श्रीमद्भा. ३।१२।२४)। सप्तर्षियों में महर्षि अत्रि का परिगणन है। साथ ही इन्हें 'प्रजापति' भी कहा गया है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया पतिव्रताओं की आदर्शभूता और महान् दिव्य तेज से सम्पन्न हैं। महर्षि अत्रि जहाँ ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के मूर्तिमान् स्वरूप हैं; वहीं देवी अनसूया पतिव्रता धर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। भगवान् श्रीराम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूया की भक्ति को सफल करने स्वयं उनके आश्रम पर पधारे। माता अनसूया ने देवी सीता को पतिव्रता धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पतिव्रत के बल पर शैव्या ब्राह्मणी के मृत पति को जीवित किया तथा बाधित सूर्य को उदित कराकर संसार का कल्याण किया। देवी अनसूया का नाम ही बड़े महत्त्व का है। असूया नाम है परदोष-दर्शन का - गुणों में भी दोष-बुद्धि का और जो इन विकारों से रहित हो, वही 'अनसूया' है। इसी प्रकार महर्षि अत्रि भी 'अ+त्रि' हैं अर्थात् वे तीनों गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) से अतीत हैं - गुणातीत हैं। इस प्रकार महर्षि अत्रि-दम्पति अपने नामानुरूप जीवन यापन करते हुए सदाचार परायण हो चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे। अत्रि पत्नी अनसूया के तपोबल से ही भागीरथी गङ्गा की एक पवित्र धारा चित्रकूट में प्रविष्ट हुई और 'मंदाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई -

अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि ॥ (रा.च.मा. २।१३।५-६)

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इन दम्पति को ब्रह्माजी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो इन्होंने उस ओर उन्मुख न हो तपस्या का ही आश्रय लिया। इनकी तपस्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया और दम्पति की प्रार्थना पर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया।

अत्रि-दम्पति की तपस्या और त्रिदेवों की प्रसन्नता के फलस्वरूप विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूया के पुत्ररूप में आविर्भूत हुए -







सोमोऽभूद् ब्रह्मणोऽशन दत्तो विष्णोस्तु योगवित्।  
दुर्वासाः शांकरस्यांशो॥ (श्रमद्भा. ४।१।३३)

वेदों में उपर्युक्त वृत्तान्त यथावत् नहीं मिलता है, कहीं-कहीं नामों में अन्तर भी है। ऋग्वेद (१०।१४३) में 'अत्रिः सांख्यः' कहा गया है। वेदों में यह स्पष्ट रूप से वर्णन है कि महर्षि अत्रि को अश्विनी कुमारों की कृपा प्राप्त थी। एक बार जब ये समाधिस्थ थे, तब दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डाल दिया और आग लगाकर इन्हें जलाने का प्रयत्न किया, किन्तु अत्रि को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय अश्विनी कुमारों ने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ५१वें तथा ११२वें सूक्त में यह कथा आयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के दीर्घ तपस्या के अनुष्ठान का वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते-करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनी कुमारों ने इन्हें नवयौवन प्रदान किया (ऋक्. १०।१४३।१)। ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवधि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि रहे हैं (ऋक्. ५।२५-२६, ५।७८)। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के द्रष्टा हैं।

### महर्षि गृत्समद

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में महर्षि गृत्समद द्वितीय मण्डल के द्रष्टा ऋषि हैं। इनके विषय में ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शातपथ ब्राह्मण, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी (कात्यायन), महाभारत तथा गणेश पुराण आदि में बड़े ही रोचक आख्यान प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं कुछ अन्तर भी है, किन्तु उन सभी से इनकी महिमा वही आख्यापन होता है। उन आख्यानों से ज्ञात होता है कि महर्षि गृत्समद आङ्गिरस गोत्रीय शुनहोत्र ऋषि के पुत्र थे और इनका पैतृक नाम शौनहोत्र था। बाद में इन्द्र के प्रयत्न से भृगु कुलोत्पन्न शुनक ऋषि के दत्तक पुत्र के रूप में इनकी प्रसिद्धि हुई







और ये शौनक 'गृत्समद' नाम से विख्यात हो गये। इनके गृत्समद नाम की आध्यात्मिक व्याख्या में बताया गया है कि 'गृत्स' का अर्थ प्राण तथा 'मद' का अर्थ है अपान। अतः प्राणापान का समन्वय ही गृत्समद तत्त्व है। इनके द्वारा दृष्ट ऋग्वेद का द्वितीय मण्डल, जिसमें कुल ४३ सूक्त हैं 'गृत्समद मण्डल' कहलाता है।

आचार्य शौनक ने बृहद्देवता में बतलाया है कि महर्षि गृत्समद में तपस्या का महान् बल था, मन्त्र शक्ति प्रतिष्ठित थी, वे यथेच्छ रूप बनाकर देवताओं की सहायता करते थे और असुरों से देवताओं की रक्षा भी किया करते थे। उन्हें इन्द्र स्वयं उस यज्ञ में उपस्थित हुए। असुर देवताओं, विशेष रूप से इन्द्र से द्वेष रखते थे। असुरों में भी धुनि तथा चुमुरि नामक दो महाबलशाली असुर थे। वे इन्द्र पर घात करने के लिये अवसर ढूँढ़ा करते थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि इन्द्र महर्षि गृत्समद के यज्ञ में गये हुए हैं तो वे भी बड़ी शीघ्रता से आयुधों को लेकर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ यज्ञ हो रहा था। असुरों को दूर से आते देख और उनके मनोभाव जानकार महर्षि गृत्समद ने इन्द्र की रक्षा के लिये अपनी तपस्या तथा योग के बल से अपने को दूसरे इन्द्र के रूप में परिवर्तित कर लिया और क्षणभर में वे असुरों के सामने से ही अदृश्य भी हो गये। दोनों असुरों ने सोचा कि इन्द्र हमारे भय से अदृश्य हो गया है, अतः वे भी इन्द्ररूपधारी गृत्समद को ढूँढ़ने लगे। वे इन्द्र रूपधारी मुनि कभी अन्तरिक्ष में दिखलायी पड़ते तो कभी द्युलोक में। भयंकर धुनि तथा चुमुरि आयुध लेकर उन्हें मारने के लिये दौड़ते रहे। मुनि ने उन्हें खूब भटकाया और अन्त में उन दानों असुरों को बतलाया कि मैं इन्द्र नहीं हूँ, वास्तविक इन्द्र जो तुम्हारा शत्रु है, वह तो यज्ञ स्थल में ही है। असुरों को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ, तब गृत्समद महर्षि ने इन्द्र की महनीय कीर्ति का, उनके बल-पराक्रम का और उनके गुणों का गुणगान किया। गृत्समद द्वारा इन्द्र की कीर्ति का गुणगान उन असुरों के लिये वज्र के समान घातक हुआ। गृत्समद ने उन दोनों के समक्ष इन्द्र की वीरता, शौर्य तथा प्रभुत्व का इतना वर्णन किया कि धुनि तथा चुमुरि नामक उन महादैत्यों का नैतिक बल समाप्त







हो गया और उसी समय इन्द्र ने उपस्थित होकर उन दानों महादैत्यों का वध कर दिया। मुनि ने भी अपना वह ऐन्द्ररूप त्याग दिया।

महर्षि गृत्समद का ऐसा अद्भुत प्रयत्न और तपोबल देखकर इन्द्र उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें अपना अत्यन्त प्रिय सखा बना लिया। अक्षय तप, वाक्सिद्धि, अद्भुत पराक्रम, मन्त्र-शक्ति तथा अपनी अखण्ड भक्ति का वर उन्हें प्रदान किया। देवराज इन्द्र ने अपने सखा गृत्समद का दाहिना हाथ पकड़ा और उन्हें लेकर वे महेन्द्र सदन में आये। बड़े ही आदर-भाव से उन्होंने महर्षि का पूजन किया और कहा -

गृणन्मदसखे यस्मात् त्वमस्मानृषिसत्तम।  
तस्माद्गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि ॥ (बृहद्देवता)

तभी से शौनहोत्र गृत्समद उनका नाम पड़ गया। बल-वीर्य एवं पराक्रम सम्बन्धी महर्षि गृत्समद द्वारा की गयी इन्द्र की वह स्तुति जो उन्होंने दैत्यों के समक्ष की थी, ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के १२वें सूक्त में गुम्फित है। यह सूक्त 'सजनीय सूक्त' भी कहलाता है, क्योंकि इस सूक्त में आयी हुई प्रायः सभी ऋचाओं के अंतिम चरण में 'स जनास इन्द्रः' यह पद आया है। इस सूक्त में पंद्रह मन्त्र हैं। उदाहरण के लिये पहला मन्त्र यहाँ दिया जा रहा है -

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।  
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य महा स जनास इन्द्रः ॥  
(ऋक्. २।१२।१)

इस प्रकार यह सजनीय सूक्त इन्द्र की महिमा में पर्यवसित है और महर्षि गृत्समद द्वारा गुम्फित है। इससे महर्षि गृत्समद की उदारता, परोपकारिता, देवसुखिव आदि अनेक गुणों का परिज्ञान होता है और उनकी दिव्य मन्त्र-शक्ति का भी आभास प्राप्त होता है।







महाभारत में महामुनि गृत्समद का एक अन्य रोचक आख्यान आया है। तदनुसार गृत्समद हैहय क्षत्रियों के राजा और वीतहव्य के पुत्र थे। एक बार काशिराज प्रतर्दन के भय से वीतहव्य महर्षि भृगु के आश्रम में जा छिपे। इन्हें खोजते हुए प्रतर्दन भी वहाँ जा पहुँचे। पूछने पर भृगु ने कहा कि - 'मेरे आश्रम में क्षत्रिय नहीं रहता।' तपोधन ऋषियों के वचन झूठे होते नहीं, अमोघ होते हैं। अतः भृगु के उस वचन मात्र से क्षत्रिय राजा वीतहव्य ब्राह्मण हो गये। ब्रह्मर्षि हो गये और इनके पुत्र भी गृत्समद क्षत्रिय से मन्त्रद्रष्टा परमर्षि हो गये। तब से इनको भृगुवंशीयता प्राप्त हो गयी। यथा -

भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ॥  
 वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ।  
 तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥  
 शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत् ।  
 ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ॥  
 यत्र गृत्समदो राजन् ब्राह्मणैः स महीयते ।  
 स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत् ॥

(महा. अनु. ३०।७५-६०)

गणेश पुराण में बताया गया है कि गृत्समद भगवान् गणेश के महान् भक्त थे। उनकी प्रसन्नता के लिये उन्होंने हजारों वर्ष पर्यन्त कठिन तप किया था। अनन्तर उन्हें उनके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए और अनेक वर भी प्राप्त हुये।

इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में महर्षि गृत्समद के अनेक प्रकार के आख्यान प्राप्त होते हैं, जिनसे उनके दिव्य चरित्र का ख्यापन होता है।

गार्त्समद-मण्डल - इस मण्डल में ४३ सूक्त हैं, जिनमें इन्द्र, अग्नि, आदित्य, मित्रावरुण, वरुण, विश्वेदेव तथा मरुत् आदि देवों की स्तुतियाँ हैं। इन्द्र और महर्षि के परस्पर सख्य का वृत्तान्त भी वर्णित है। इस मण्डल में लगभग १६ सूक्तों में इन्द्र की स्तुतियाँ हैं। अंतिम ४२ तथा ४३वें सूक्त में इन्द्र का कपिंजल के रूप में आख्यापन है।







राका, सिनी वाली आदि देवताओं की भी स्तुतियाँ हैं (३२वें सूक्त)। मण्डल के प्रारम्भिक सूक्तों में अग्निदेव की महानता का वर्णन हुआ है -

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋक्. १।२३।१)

मण्डल का अंतिम ४२वाँ तथा ४३वाँ सूक्त 'वायस सूक्त' भी कहलाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (३।१०।९) में बताया गया है कि वायस पक्षी के अमङ्गल शब्द का श्रवण होने पर इन दो सूक्तों (६ ऋचाओं) का जप करना चाहिये - 'वयसाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वा कनिक्रदञ्जनुषं प्रब्रुवाण इति सूक्ते जपेत्।'।

इन सूक्तों के देवता कपिंजल रूपधारी इन्द्र हैं और इनसे प्रार्थना की गयी है कि हे कपिंजल ! तुम हमारे लिये प्रकृष्ट कल्याणकारी होओ - 'सुमङ्गलश्च शकुने भवासि।' (२।४२।१), 'सुमङ्गलो भद्रवादी वेदेह' (२।४२।२)। साथ ही उत्तम बुद्धि की प्रार्थना भी की गयी है - 'सुमतिं चिकिद्धि नः॥' (२।४३।३)।

इस प्रकार महर्षि गृत्समद का 'गार्त्समद-मण्डल' माङ्गलिक अभिलाषा के साथ पूर्ण हुआ था।

### महर्षि वामदेव

महर्षि वामदेव ऋग्वेद के चौथे मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। चौथे मण्डल में कुल ५८ सूक्त हैं। जिनमें महर्षि द्वारा अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, ऋभु, दधिकोष्ण, विश्वेदेव तथा उषा आदि देवताओं की स्तुतियाँ की गयी हैं। उन स्तुतियों में लोक कल्याण की उदात्त भावना निहित है। महर्षि वामदेव ब्रह्मज्ञानी तथा जातिस्मर महात्मा रहे हैं। वायु पुराण में आया है कि इन्होंने अपने ज्ञान से ऋषित्व प्राप्त किया था - 'ज्ञानतो ऋषितां गतः' (वायु. ५९।९९)। ऋग्वेद में ऋषि ने स्वयं अपना परिचय







दिया है, तदनुसार स्पष्ट होता है कि इन्हें गर्भ में ही आत्मज्ञान और ब्रह्मविद्या का साक्षात्कार हो गया था। ऋग्वेद की निम्न ऋचा का उन्हें माता के गर्भ में ही दर्शन हो गया था, इसलिये उन्होंने माता के उदर में ही कहा था -

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।

शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥

(ऋक्. ४।२७।१)

ऋचा का भाव यह है कि 'अहो ! कितने आश्चर्य और आनन्द की बात है कि गर्भ में रहते-रहते ही मैंने इन अन्तःकरण और इन्द्रिय रूप देवताओं के अनेक जन्मों का रहस्य भलीभाँति जान लिया, अर्थात् मैं इस बात को जान गया कि ये जन्म आदि वास्तव में इन अन्तःकरण और इन्द्रियों के ही होते हैं, आत्मा के नहीं। इस रहस्य को समझने से पहले मुझे सैकड़ों लोहे के समान कठोर शरीर रूपी पिंजरो में अवरुद्ध कर रखा था। उनमें मेरी ऐसी दृढ़ अहंता हो गयी थी कि उससे छूटना मेरे लिये कठिन हो रहा था। अब मैं बाज पक्षी की भाँति ज्ञानरूप बल के वेग से उन सबको तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ। उन शरीर रूप पिंजरो से मेरा कोई संबंध नहीं रहा, मैं सदा के लिये उन शरीरों की अहंता से मुक्त हो गया हूँ।' इस ऋचा में गर्भस्थित वामदेव ने यह उपदेश दिया है कि देह आदि में आत्मबुद्धि नहीं करनी चाहिये, क्योंकि देहात्मवाद ही अविद्याजन्य बन्धन है और उस बन्धन का नाश ही मोक्ष है। जैसे पक्षी घोंसले से भिन्न हैं, वैसे ही यह आत्मतत्त्व भी शरीर से सर्वथा व्यतिरिक्त है।

इस प्रकार गर्भज्ञानी महात्मा वामदेव ऋषि को गर्भ में भी मोह नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि मेरा आविर्भाव भी सामान्य न होकर कुछ विशिष्ट ढंग से ही होना चाहिये। उन्होंने सोचा कि माता की योनि से तो सभी जन्म लेते हैं और इसमें अत्यन्त कष्ट भी है, अतः मैं माता के पार्श्व भाग का भेदन करके बाहर निकलूँगा -

नाहमतो निरया दुर्गहैतात्तिरश्रुता पार्श्वान्निर्गमाणि । (ऋक्. ४।१८।२)







इन्द्रादि देवों ने जब गर्भस्थित वामदेव को ऐसा कार्य करने से रोका तो उन्होंने अपने समस्त ज्ञान और अनुभव का परिचय देते हुए उनसे कहा - 'हे इन्द्र ! मैं जानता हूँ कि मैं ही प्रजापति मनु हूँ, मैं ही सबको प्रेरणा देने वाला सविता देव हूँ, मैं ही दीर्घतमा का मेधावी कक्षीवान् नामक ऋषि हूँ, मैं ही अर्जुनी का पुत्र कुत्स नामक ऋषि हूँ और मैं ही क्रान्तदर्शी उशना ऋषि हूँ। तात्पर्य यह है कि परमार्थ दृष्टि से मैं ही सब कुछ हूँ, इसलिये मुझे आप सर्वात्मा के रूप में देखें।' वामदेवी ऋचा इस प्रकार है -

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।

अहं कुत्समार्जुनेयं न्यूञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ (ऋक्. ४।२६।१)

इस प्रकार अपने आत्मज्ञान तथा जन्मान्तरीय ज्ञान का परिचय देकर वामदेव ने अपने योगबल से श्येन (बाज) पक्षी का रूप धारण कर लिया और बड़े वेग से वे अपनी माता की कुक्षि-प्रदेश से बाहर निकल पड़े। उनके इस कार्य से इन्द्र रुष्ट हो गये, किन्तु वामदेव ने अपनी स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रसन्न कर लिया और इन्द्र की उन पर कृपा हो गयी। कालान्तर में वामदेव ऋषि जब दरिद्रता से ग्रस्त हो गये, तब भी इन्द्र देवता ने उन पर कृपा की और उन्हें अमृत के समान मधुर पेय प्रदान किया, इससे वामदेव संतुष्ट हो गये। इन्द्र की प्रशंसा में वामदेव ऋषि कह उठते हैं - 'द्योतित होने वाले अग्नि आदि देवताओं के मध्य मैं इन्द्र के समान अन्य किसी देवता को नहीं देखता हूँ, जो सुख-शान्ति दे सके' - 'न देवेषु विविदे मर्डितारम्' (ऋक्. ४।१८।१३)। 'उन्होंने ही मुझे मधुर जल प्रदान किया' - 'मध्वा जभार' (ऋक्. ४।१८।१३)।

महर्षि वामदेव ने विश्वामित्र द्वारा दृष्ट संयात सूक्तों का प्रचार किया - 'विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजत्।' (ऐत०ब्राह्म० ४।२)। इन्होंने अनेक यज्ञ-यज्ञादि का अनुष्ठान किया था। स्वयं इंद्र उपस्थित होकर इनके यज्ञ की रक्षा करते थे (ऋक्० २।१६।१८)। वामदेव ऋषि ने स्वयं कहा है कि हम सात (६ अंगिरा और वामदेव) मेधावी हैं, हमने ही अग्नि की रश्मियों को उत्पन्न किया है (ऋक्० ४।२।१५)।







महर्षि वामदेव गौतम के पुत्र कहे गये हैं। गोत्रकार ऋषियों में इनकी गणना है। गायत्री-मन्त्र के चौबीस अक्षरों के पृथक्-पृथक् ऋषि हैं, उनमें पाँचवें अक्षर के ऋषि वामदेव ही हैं। इनका तप, स्वाध्याय, अनुष्ठान तथा आत्मनिष्ठैक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। मुख्य रूप से ये इन्द्र, अग्नि तथा सविता देव के उपासक थे। इनके जीवन में शौच, संतोष, अपरिग्रह तथा परहित का उदात्त-भाव प्रतिष्ठित था। इसी तप, स्वाध्याय और अध्यात्म-साधना के बल पर उन्हें मन्त्र शक्ति का दर्शन हुआ था। रामायण आदि में वर्णन आया है कि महर्षि वामदेव राजर्षि दशरथ के प्रधान ऋत्विक् और कुल पुरोहित रहे हैं -

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तपस्यास्तामृषिसत्तमौ ।

वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणस्व तथापरे ॥ (वा०रा० १।७।४)

वामदेव रघुकुल गुर ग्यानी॥ (रा०च०मा० २।१६९।७-८)

इस प्रकार महर्षि वामदेव की मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में विशेष महिमा है।

### महर्षि वामदेव और 'वामदेव-मण्डल'

ऋग्वेद का चौथा मण्डल महर्षि वामदेव के द्वारा दृष्ट है। इसीलिये वह 'वामदेव-मण्डल' और इनके द्वारा दृष्ट ऋचाएँ 'वामदेवी ऋचाएँ' कहलाती हैं। चतुर्थ मण्डल के प्रारम्भ के कई सूक्तों में अग्निदेव की महनीय स्तुतियाँ हैं, जिनमें अग्निदेव के विभिन्न स्वरूपों तथा उनके कार्यों का विवरण है। इस मण्डल में कई आख्यान भी आये हैं। सोलहवें सूक्त की ऋचाओं में राजर्षि कुत्स का आख्यान आया है।

'सौरी ऋचा - चतुर्थ मण्डल में एक मुख्य ऋचा (मन्त्र) आयी है जो 'सौरी' ऋचा कहलाती है। इस ऋचा के द्रष्टा वामदेव ऋषि हैं और इसमें भगवान् सूर्य ही सर्वात्मा, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, सर्वाधार तथा परब्रह्म परमात्मा के रूप में निरूपित किये गये हैं, अतः इस ऋचा का सूर्य आदित्य या सविता संबंधी सभी मन्त्रों में विशेष महत्त्व है। यह ऋचा इस प्रकार है -







हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।

नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥

(ऋक्० ४।४०।५)

यह मन्त्र विशेष महत्त्व का होने के कारण यजुर्वेद (१०।२४, १२।१४), काण्वशाखा (१६।५।१८, १५।६।२५), तैत्तिरीय संहिता (१।८।१५।२, ४।२।१।५), ऐतरेय ब्राह्मण (४।२०) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१०।२) आदि में यथावत् उपन्यस्त है। आश्वलायन श्रौतसूत्र आदि में निर्दिष्ट है कि यह सौरी ऋचा मैत्रावरुण शास्त्रयाग में विनियुक्त है। ऋग्विधान (२।२४०) में एक श्लोक इस प्रकार आया है -

हंसः शुचिषदित्यूचा शुचिरीक्षेद्विवाकरम् ।

अन्तकाले जपन्नेति ब्रह्मणः सद्यः शाश्वतम् ॥

इस श्लोक से यह भाव स्पष्ट है कि 'पूर्वोक्त ऋचा 'हंसः शुचिषद्' में भगवान् दिवाकर, जो साक्षत् परमात्मा के रूप में दर्शन दे रहे हैं, उनकी आराधना करनी चाहिये। अन्त समय में इस ऋचा का जप करने तथा आदित्य-मण्डल में जो हिरण्मय पुरुष नारायण स्थित हैं, उनका ध्यान करने से परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है और उनका शाश्वत परमधाम प्राप्त होता है।'

महर्षि वामदेव द्वारा दृष्ट चतुर्थ मण्डल अत्यन्त महत्त्व का है। इसके अध्ययन से महर्षि वामदेव के महनीय चरित्र का किञ्चित् ख्यापन होता है। औपनिषदिक श्रुति है कि जन्म-जन्मान्तर के ज्ञान रखने वाले वे ऋषि वामदेव इस शरीर का भेदन कर भगवान् के धाम को प्राप्त करके आप्तकाम हो सदा के लिये अमर हो गये -

विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्।

स्वर्गं लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत् समभवत्॥

(ऐतरेयोपनिषद् २।१।६)







## महर्षि भरद्वाज

ऋग्वेद के छोटे मण्डल के द्रष्टा भरद्वाज ऋषि कहे गये हैं। इस मण्डल में भरद्वाज के ७६५ मन्त्र हैं। अथर्ववेद में भी भरद्वाज के २३ मन्त्र मिलते हैं। वैदिक ऋषियों में भरद्वाज ऋषि का अति उच्च स्थान है। भरद्वाज के पिता बृहस्पति और माता थीं।

भरद्वाज का वंश - ऋषि भरद्वाज के पुत्रों में १० ऋषि ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा हैं और एक पुत्री जिसका नाम 'रात्रि' था, वह भी रात्रि सूक्त की मन्त्रद्रष्टा मानी गयी है। भरद्वाज के मन्त्रद्रष्टा पुत्रों के नाम हैं - ऋजिष्वा, गर्ग, नर, पायु, वसु, शास, शिराम्बिठ, शुनहोत्र, सप्रथ और सुहोत्र। ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋषि 'कशिपा' भरद्वाज की पुत्री कही गयी है। इस प्रकार ऋषि भरद्वाज की १२ संतानें मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कोटि में सम्मानित थीं। भरद्वाज ऋषि ने बड़े गहन अनुभव किये थे। उनकी शिक्षा के आयाम अतिव्यापक थे।

भरद्वाज ने इन्द्र से व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन किया था और उसे व्याख्या सहित अनेक ऋषियों को पढ़ाया था। 'ऋक्तन्त्र' और 'ऐतरेय ब्राह्मण' दोनों में इसका वर्णन है।

भरद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद पढ़ा था, ऐसा चरक ऋषि ने लिखा है। अपने इस आयुर्वेद के गहन अध्ययन के आधार पर भरद्वाज ने आयुर्वेद संहिता की रचना भी की थी।

भरद्वाज ने महर्षि भृगु से धर्मशास्त्र का उपदेश प्राप्त किया और 'भरद्वाज-स्मृति' की रचना की। महाभारत, शान्तिपर्व (१८२।५) तथा हेमाद्रि ने इसका उल्लेख किया है। पाश्चरात्र-भक्ति-सम्प्रदाय में प्रचलित है कि सम्प्रदाय की एक संहिता 'भरद्वाज-संहिता' के रचनाकार भी ऋषि भरद्वाज ही थे।







महाभारत, शांतिपर्व के अनुसार ऋषि भरद्वाज ने 'धनुर्वेद' पर प्रवचन किया था (२१०।२१)। वहाँ यह भी कहा गया है कि ऋषि भरद्वाज ने 'राजशास्त्र' का प्रणयन किया था (५८।३)। कौटिल्य ने अपने पूर्व में हुए अर्थशास्त्र के रचनाकारों में ऋषि भरद्वाज को सम्मान से स्वीकारा है।

ऋषि भरद्वाज ने 'यन्त्र-सर्वस्व' नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ का कुछ भाग स्वामी ब्रह्ममुनि ने 'विमान-शास्त्र' के नाम से प्रकाशित कराया है। इस ग्रन्थ में उच्च और निम्न स्तर पर विचरने वाले विमानों के लिये विविध धातुओं के निर्माण का वर्णन है।

इस प्रकार एक साथ व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद और भौतिक विज्ञानवेत्ता ऋषि भरद्वाज थे - इसे उनके ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थों में दिये उनके ग्रन्थों के उद्धरण ही प्रमाणित करते हैं। उनकी शिक्षा के विषय में एक मनोरंजक घटना तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलती है। घटना का वर्णन इस प्रकार है -

भरद्वाज ने सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन का यत्न किया। दृढ़ इच्छा-शक्ति और कठोर तपस्या से इन्द्र को प्रसन्न किया। भरद्वाज ने प्रसन्न हुए इन्द्र से अध्ययन हेतु सौ वर्ष की आयु माँगी। भरद्वाज अध्ययन करते रहे। सौ वर्ष पूरे हो गये। अध्ययन की लगन से प्रसन्न होकर दुबारा इन्द्र ने फिर वर माँगने को कहा, तो भरद्वाज ने पुनः सौ वर्ष अध्ययन के लिये और माँगा। इन्द्र ने सौ वर्ष प्रदान किये। इस प्रकार अध्ययन और वरदान का क्रम चलता रहा। भरद्वाज ने तीन सौ वर्षों तक अध्ययन किया। इसके बाद पुनः इन्द्र ने उपस्थित होकर कहा - 'हे भरद्वाज! यदि मैं तुम्हें सौ वर्ष और दे दूँ तो तुम उनसे क्या करोगे?' भरद्वाज ने सरलता से उत्तर दिया, 'मैं वेदों का अध्ययन करूँगा।' इन्द्र ने तत्काल बालू के तीन पहाड़ खड़े कर दिये, फिर उनमें से एक मुट्ठी भर रेत हाथों







में लेकर कहा - 'हे भरद्वाज, समझो ये तीन वेद हैं और तुम्हारा तीन सौ वर्षों का अध्ययन यह मुट्ठीभर रेत है। वेद अनन्त हैं। तुमने आयु के तीन सौ वर्षों में जितना जाना है, उससे न जाना हुआ अत्यधिक है।' अतः मेरी बात पर ध्यान दो - 'अग्नि है सब विद्याओं का स्वरूप। अतः अग्नि को ही जानो। उसे जान लेने पर सब विद्याओं का ज्ञान स्वतः हो जायगा, इसके बाद इन्द्र ने भरद्वाज को सावित्र्य-अग्नि-विद्या का विधिवत् ज्ञान कराया॥ भरद्वाज ने उस अग्नि को जानकर उससे अमृत-तत्त्व प्राप्त किया और स्वर्गलोक में जाकर आदित्य से सायुज्य प्राप्त किया' (तै०ब्रा० ३।१०।११)।

इन्द्र द्वारा अग्नि-तत्त्व का साक्षात्कार किया, ज्ञान से तादात्म्य किया और तन्मय होकर रचनाएँ कीं। आयुर्वेद के प्रयोगों में ये परम निपुण थे। इसीलिये उन्होंने ऋषियों में सबसे अधिक आयु प्राप्त की थी। वे ब्राह्मण ग्रंथों में 'दीर्घजीवितम' पद से सबसे अधिक लम्बी आयु वाले ऋषि गिने गये हैं (ऐतरेय आरण्यक १।२।२)। चरक ऋषि ने भरद्वाज को 'अपरिमित' आयु वाला कहा है (सूत्र स्थान १।१६)। भरद्वाज ऋषि काशिराज दिवोदास के पुरोहित थे। वे दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के पुरोहित थे और फिर प्रतर्दन के पुत्र क्षत्र का भी उन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न कराया था (जै०ब्रा० ३।२।८)। वनवास के समय श्रीराम इनके आश्रम में गये थे, जो ऐतिहासिक दृष्टि से त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल था। उक्त प्रमाणों से भरद्वाज ऋषि को 'अनूचानतम' और 'दीर्घजीवितम' या 'अपरिमित' आयु कहे जाने में कोई अत्युक्ति नहीं लगती है।

साम-गायक - भरद्वाज ने 'सामगान' को देवताओं से प्राप्त किया था। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है - 'यों तो समस्त ऋषियों ने ही यज्ञ का परम गुह्य ज्ञान जो बुद्धि की गुफा में गुप्त था, उसे जाना, परन्तु भरद्वाज ऋषि ने द्युस्थान (स्वर्गलोक) के धाता, सविता, विष्णु और अग्नि देवता से ही बृहत्साम का ज्ञान प्राप्त किया' (ऋक्० १०।१८।१२)। यह बात भरद्वाज ऋषि की श्रेष्ठता और विशेषता दोनों दर्शाती है।







‘साम’ का अर्थ है (सा+अमः) ऋचाओं के आधार पर आलाप। ऋचाओं के आधार पर किया गया गान ‘साम’ है। ऋषि भरद्वाज ने आत्मसात् किया था ‘बृहत्साम’। ब्राह्मण-ग्रन्थों की परिभाषाओं के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि ऋचाओं के आधार पर स्वरप्रधान ऐसा गायन जो स्वर्गलोक, आदित्य, मन, श्रेष्ठत्व और तेजस् को स्वर-आलाप में व्यञ्जित करता हो, ‘बृहत्साम’ कहा जाता है। ऋषि भरद्वाज ऐसे ही बृहत्साम-गायक थे। वे चार प्रमुख साम-गायकों - गोतम, वामदेव, भरद्वाज और कश्यप की श्रेणी में गिने जाते हैं।

संहिताओं में ऋषि भरद्वाज के इस ‘बृहत्साम’ की बड़ी महिमा बतायी गयी है। काठक संहिता में तथा ऐतरेय-ब्राह्मण में कहा गया है कि ‘इस बृहत्साम के गायन से शासक कीर्ति सम्पन्न होता है तथा ओज-तेज और वीर्य बढ़ता है। ‘राजसूय यज्ञ’ समृद्ध होता है। राष्ट्र और दृढ़ होता है (ऐत०ब्रा० ३६।३)। राष्ट्र को समृद्ध और दृढ़ बनाने के लिये भरद्वाज ने राजा प्रतर्दन से यज्ञ में इसका अनुष्ठान कराया था, जिससे प्रतर्दन का खोया राष्ट्र उन्हें पुनः मिला था’ (काठक २१।१०)। प्रतर्दन की कथा महाभारत के अनुशासन पर्व (अ०३०) में आयी है।

भरद्वाज के विचारों में, वही विद्या है, जो हम सबका पोषण करे, कपटी दुष्टों का विनाश करे, युद्ध में हमारा रक्षण करे, हमारी बुद्धि शुद्ध रखे तथा हमें वाञ्छित अर्थ देने में समर्थ हो। ऐसी विद्या को जिन्होंने प्राप्त किया है, ऋषि का उन्हें आदेश है - ‘श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः’ (६।३१।५)। अरे, ज्ञान को प्रत्यक्ष करने वाले ! प्रजाजनों को उस उत्तम ज्ञान को सुनाओ और जोदास हैं, सेवक हैं, उनको श्रेष्ठ नागरिक बनाओ - ‘दासान्यार्याणि करः’ (६।२२।१०)। ज्ञानी, विज्ञानी, शासक, कुशल योद्धा और राष्ट्र को अभय देने वाले ऋषि भरद्वाज के ऐसे ही तीव्र, तेजस्वी और प्रेरक विचार हैं।







## महर्षि भृगु

भगवान् विष्णु के हृदय-देश में स्थित भृगु का पद चिह्न उपासकों में सदा के लिये श्रद्धास्पद हो गया। पौराणिक कथा है कि एक बार मुनियों की इच्छा यह जानने की हुई कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव - इन तीनों देवों में सर्वश्रेष्ठ कौन है? परंतु ऐसे महान् देवों की परीक्षा की सामर्थ्य कौन करे? उसी मुनि मण्डली में महर्षि भृगु भी विद्यमान थे। सभी मुनियों की दृष्टि महर्षि भृगु पर जाकर टिक गयी, क्योंकि वे महर्षि के बुद्धिबल, कौशल, असीम सामर्थ्य तथा आध्यात्म-मन्त्र ज्ञान से सुपरिचित थे। अब तो भृगु त्रिदेवों के परीक्षक बन गये। सर्वप्रथम भृगु अपने पिता ब्रह्मा के पास गये और उन्हें प्रणाम नहीं किया, मर्यादा का उल्लंघन देखकर ब्रह्मा रुष्ट हो गये। भृगु ने देखा कि इनमें क्रोध आदि का प्रवेश है; अतः वे वहाँ से लौट आये और महादेव के पास जा पहुँचे, किन्तु वहाँ भी महर्षि भृगु को संतोष न हुआ। अब वे विष्णु के पास गये। देखा कि भगवान् नारायण शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं और माता लक्ष्मी उनकी चरण सेवा में निरत हैं। निःशंक भाव से भगवान् के समीप जाकर महामुनि ने उनके वक्षःस्थल पर तीव्र वेग से लात मारी, पर यह क्या? भगवान् जाग पड़े और मुस्कराने लगे। भृगुजी ने देखा कि यह तो क्रोध का अवसर था, परीक्षा के लिये मैंने ऐसे दारुण कर्म किया था, लेकिन यहाँ तो कुछ भी असर नहीं है। भगवान् नारायण ने प्रसन्नतापूर्वक मुनि को प्रणाम किया और उनके चरण को धीरे-धीरे अपना मधुर स्पर्श देते हुए वे कहने लगे - 'मुनिवर ! कहीं आपके पैर में चोट तो नहीं लगी? ब्राह्मण देवता आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। आज आपका यह चरण-चिह्न मेरे वक्षःस्थल पर सदा के लिये अंकित हो जायगा।' भगवान् विष्णु की ऐसी विशाल सहृदयता देखकर भृगुजी ने यह निश्चय किया कि देवों के देव देवेन्द्र नारायण ही श्रेष्ठ हैं।

ये महर्षि भृगु ब्रह्माजी के नौ मानस पुत्रों में अन्यतम हैं। एक प्रजापति भी हैं और सप्तर्षियों में इनकी गणना है। सुप्रसिद्ध महर्षि च्यवन इन्हीं के पुत्र हैं। प्रजापति दक्ष की कन्या ख्यातिदेवी को महर्षि भृगु ने पत्नीरूप में स्वीकार किया, जिनसे इनकी पुत्र-







पौत्र परम्परा का विस्तार हुआ। महर्षि भृगु के वंशज 'भार्गव' कहलाते हैं। महर्षि भृगु तथा उनके वंशधर अनेक मन्त्रों के द्रष्टा हैं। ऋग्वेद (५।३।१।८) में उल्लेख आया है कि कवि उशना (शुक्राचार्य) भार्गव कहलाते हैं। कवि उशना भी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद के नवम मण्डल के ४७ से ४९ तथा ७५ से ७९ तक के सूक्तों के ऋषि भृगु पुत्र उशना ही हैं। इसी प्रकार भार्गव वेन, सोमाहुति, स्यूमरश्मि, भार्गव, आर्वि आदि भृगुवंशी ऋषि अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद में पूर्वोक्त वर्णित महर्षि भृगु की कथा तो प्राप्त नहीं होती; किन्तु इनका तथा इनके वंशधरों का मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के रूप में ख्यापन हुआ है। यह सब महर्षि भृगु की महिमा का ही विस्तार है।

### महर्षि कण्व

देवी शकुन्तला के धर्म पिता के रूप में महर्षि कण्व की अत्यन्त प्रसिद्धि है। महाकवि कालिदास ने अपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में महर्षि के तपोवन, उनके आश्रम प्रदेश तथा उनका जो धर्माचारपरायण उज्ज्वल एवं उदात्त चरित प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। उनके मुख से एक भारतीय कथा के लिये विवाह के समय जो शिक्षा निकली है, वह उत्तम गृहिणी का आदर्श बन गयी। वेद में ये बातें तो वर्णित नहीं हैं, पर इनके उत्तम ज्ञान, तपस्या, मन्त्रज्ञान, अध्यात्मशक्ति आदि का आभास प्राप्त होता है। १०३ सूक्त वाले ऋग्वेद के आठवें मण्डल के अधिकांश मन्त्र महर्षि कण्व तथा उनके वंशजों तथा गोत्रजों द्वारा दृष्ट हैं। कुछ सूक्तों के अन्य भी द्रष्टा ऋषि हैं, किन्तु 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार महर्षि कण्व अष्टम मण्डल के द्रष्टा ऋषि कहे गये हैं। ऋग्वेद के साथ ही शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथ कण्व - इन दो शाखाओं में से द्वितीय 'कण्व-संहिता' के वक्ता भी महर्षि कण्व ही हैं। उन्हीं के नाम से इस संहिता का नाम 'कण्व-संहिता' हो गया। ऋग्वेद (१।३६।१०-११) में इन्हें अतिथि-प्रिय कहा गया है। इनके ऊपर अश्विद्वय की कृपा की बात अनेक जगह आयी है और यह भी बताया गया है कि कण्व-पुत्र तथा इनके वंशधर प्रसिद्ध याज्ञिक थे (ऋक्० ८।१।८) तथा वे इन्द्र के भक्त थे। ऋग्वेद के







८वें मण्डल के चौथे सूक्त में कण्व गोत्रज देवातिथि ऋषि हैं; जिन्होंने सौभाग्यशाली कुरुङ्ग नामक राजा से ६० हजार गायें दान में प्राप्त की थी। जो राजा ६०-६० हजार गायें एक साथ दान कर सकता है, उसके पास कितनी गायें होंगी?

इस प्रकार ऋग्वेद का अष्टम मण्डल कण्ववंशीय ऋषियों की देवस्तुति में उपनिबद्ध है। महर्षि कण्व ने एक स्मृति की भी रचना की है, जो 'कण्व-स्मृति' के नाम से विख्यात है।

अष्टम मण्डल में ११ सूक्त ऐसे हैं, जो 'बालखिल्य सूक्त' के नाम से विख्यात हैं। देवस्तुतियों के साथ ही इस मण्डल में ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्रों में लौकिक ज्ञान-विज्ञान तथा अनिष्ट-निवारण संबंधी उपयोगी मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये 'यत् इन्द्र मपामहे०' (८।६१।१३) इस मन्त्र का दुःस्वप्न-निवारण तथा कपोल शक्ति के लिये पाठ किया जाता है। गौ की सुन्दर स्तुति है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। ऋषि गो-प्रार्थना में उसकी महिमा के विषय में कहते हैं -

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥

(ऋक्० ८।१०१।१५)

गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, अदिति पुत्रों की बहिन और घृतरूप अमृत का खजाना है, प्रत्येक विचारशील पुरुष को मैंने यही समझाकर कहा है कि निरपराध एवं अवध्य गौ का वध न करो।

### महर्षि याज्ञवल्क्य

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों तथा उपदेष्टा आचार्यों में महर्षि याज्ञवल्क्य का स्थान सर्वोपरि है। ये महान् अध्यात्म-वेत्ता, योगी, ज्ञानी धर्मात्मा तथा श्रीराम कथा के मुख्य प्रवक्ता हैं। भगवान् सूर्य की प्रत्यक्ष कृपा इन्हें प्राप्त थी। पुराणों में इन्हें ब्रह्माजी का अवतार बताया गया है। श्रीमद्भागवत (१।२।६।६४) में आया है किये देवरात के पुत्र हैं।







महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा वैदिक मन्त्रों को प्राप्त करने की रोचक कथा पुराणों में प्राप्त होती है, तदनुसार याज्ञवल्क्य वेदाचार्य महर्षि वैशम्पायन के शिष्य थे। इन्हीं से उन्हें मन्त्र शक्ति तथा वेदज्ञान प्राप्त हुआ। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से बहुत स्नेह रखते थे और इनकी भी गुरुजी में अनन्य श्रद्धा एवं सेवा-निष्ठा थी; किन्तु दैवयोग से एक बार गुरुजी से इनका कुछ विवाद हो गया, जिससे गुरुजी रुष्ट हो गये और कहने लगे - 'मैंने तुम्हें यजुर्वेद के जिन मन्त्रों का उपदेश दिया है, उन्हें तुम उगल दो।' गुरु की आज्ञा थी, मानना तो था ही। निराश हो याज्ञवल्क्य जीने सारी वेदमन्त्र विद्या मूर्तरूप में उगल दी, जिन्हें वैशम्पायन जी के दूसरे अन्य शिष्यों ने तित्तिर (तीतर पक्षी) बनकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लिया अर्थात् वे वेदमन्त्र उन्हें प्राप्त हो गये। यजुर्वेद की वही शाखा जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी थी, 'तैत्तिरीय शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अश्वरूप सूर्य से प्राप्त होने के कारण शुक्लयजुर्वेद की एक शाखा 'वाजसनेय' और मध्य दिन के समय प्राप्त होने से 'माध्यन्दिन' शाखा के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। इस शुक्लयजुर्वेद संहिता के मुख्य मन्त्रद्रष्टा ऋषि आचार्य याज्ञवल्क्य हैं।

इस प्रकार शुक्लयजुर्वेद हमें महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने ही दिया है। इस संहिता में चालीस अध्याय हैं। आज प्रायः अधिकांश लोग इस वेदशाखा से ही सम्बद्ध हैं और सभी पूजा, अनुष्ठानों, सांस्कारों आदि में इसी संहिता के मन्त्र विनियुक्त होते हैं। रुद्राष्टाध्यायी नाम से जिन मन्त्रों द्वारा भगवान् रुद्र (सदाशिव) की आराधना होती है, वे इसी संहिता में विद्यमान हैं। इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्यजी का लोक पर महान् उपकार है।

इतना ही नहीं, इस संहिता का जो ब्राह्मण भाग 'शतपथ ब्राह्मण' के नाम से प्रसिद्ध है और जो 'बृहदारण्यक उपनिषद्' है, वह भी महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा ही हमें प्राप्त है। गार्गी, मैत्रेयी और कात्यायनी आदि ब्रह्मवादिनी नारियों से जो इनका ज्ञान-विज्ञान एवं ब्रह्मतत्त्व-सम्बन्धी शास्त्रार्थ हुआ, वह भी प्रसिद्ध ही है। विदेहराज







जनक-जैसे अध्यात्म-तत्त्ववेत्ताओं के ये गुरुपदभाक् रहे हैं। इन्होंने प्रयाग में भरद्वाज जी को श्री रामचरितमानस सुनाया। साथ ही इनके द्वारा एक महत्त्वपूर्ण धर्मशास्त्र का प्रणयन हुआ है, जो 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के नाम से प्रसिद्ध है, जिस पर मिताक्षरा आदि प्रौढ़ संस्कृत टीकाएँ हुई हैं।

### महर्षि अगस्त्य

ब्रह्मतेज के मूर्तिमान् स्वरूप महामुनि अगस्त्यजी का पावन चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा दिव्य है। वेदों में इनका वर्णन आया है। ऋग्वेद का कथन है कि मित्र तथा वरुण नामक देवताओं का अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञिय कलश में पुञ्जीभूत हुआ और उसी कलश के मध्य भाग से दिव्य तेजः सम्पन्न महर्षि अगस्त्य का प्रादुर्भाव हुआ। पुराणों में यह कथा आयी है कि महर्षि अगस्त्य की पत्नी महान् पतिव्रता तथा श्रीविद्या की आचार्य हैं, जो 'लोपामुद्रा' के नाम से विख्यात हैं। आगम-ग्रन्थों में इन दम्पति की देवी साधना का विस्तार से वर्णन आया है।

महर्षि अगस्त्य महातेजा तथा महातपा ऋषि थे। समुद्रस्थ राक्षसों के अत्याचार से घबराकर देवता लोग इनकी शरण में गये और अपना दुःख कह सुनाया। फल यह हुआ कि ये सारा समुद्र पी गये, जिससे सभी राक्षसों का विनाश हो गया। इसी प्रकार इल्वल तथा वातापी नामक दुष्ट दैत्यों द्वारा हो रहे ऋषि-संहार को इन्होंने बंद किया और लोक का महान् कल्याण हुआ।

एक बार विन्ध्याचल सूर्य का मार्ग रोककर खड़ा हो गया, जिससे सूर्य का आवागमन ही बंद हो गया। सूर्य इनकी शरण में आये, तब इन्होंने विन्ध्य पर्वत को स्थिर कर दिया और कहा - 'जब तक मैं दक्षिण देश से न लौटूँ, तब तक तुम ऐसे ही निम्न बनकर रुके रहो।' हुआ ऐसा ही है। विन्ध्याचल नीचे हो गया, फिर अगस्त्यजी लौटे नहीं; अतः विन्ध्य पर्वत उसी प्रकार निम्न रूप में स्थिर रह गया और भगवान् सूर्य का सदा के लिये मार्ग प्रशस्त हो गया।







इस प्रकार अनेक असम्भव कार्य महर्षि अगस्त्य ने अपनी मन्त्र शक्ति से सहज ही कर दिखाया और लोगों का कल्याण किया। भगवान् श्रीराम वनगमन के समय इनके आश्रम पर पधारे थे। भगवान् ने उनका ऋषि-जीवन कृतार्थ किया। भक्ति की प्रेममूर्ति महामुनि सुतीक्ष्ण इन्हीं अगस्त्यजी के शिष्य थे। अगस्त्य संहिता आदि अनेक ग्रन्थों का इन्होंने प्रणयन किया, जो तान्त्रिक साधकों के लिये महान् उपादेय है।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपस्या से अनेक ऋचाओं के स्वरूपों का दर्शन किया था, इसीलिये ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेद के अनेक मन्त्र इनके द्वारा दृष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६५ सूक्त से १९१ तक के सूक्तों के द्रष्टा ऋषि महर्षि अगस्त्यजी हैं। साथ ही इनके पुत्र दृढच्युत तथा दृढच्युत के पुत्र इध्मवाह भी नवम मण्डल के २५वें तथा २६वें सूक्त के द्रष्टा ऋषि हैं। महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आज भी पूज्य और वन्द्य हैं, नक्षत्र-मण्डल में ये विद्यमान हैं। दूर्वाष्टमी आदि व्रतोपवासों में इन दम्पति की आराधना-उपासना की जाती है।

### मन्त्रद्रष्टा महर्षि वसिष्ठ

वैदिक मन्त्रद्रष्टा आचार्यों में महर्षि वसिष्ठ का स्थान सर्वोपरि है। ऋग्वेद का सप्तम मण्डल 'वसिष्ठ-मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल के मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि महर्षि वसिष्ठजी ही हैं। ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं तथा मित्रावरुण के तेज से इनके आविर्भूत होने की कथाएँ पुराणों में प्राप्त हैं। इनकी पत्नी देवी अरुन्धती महान् पतिव्रता हैं। सप्तर्षि मण्डल में महर्षि वसिष्ठ के साथ देवी अरुन्धती भी विद्यमान रहती हैं। इनका योग वसिष्ठ ग्रन्थ अध्यात्म ज्ञान का मुख्य ग्रन्थ है। महर्षि वसिष्ठ की मन्त्र शक्ति, योगशक्ति, दिव्यज्ञान शक्ति तथा तपस्या की कोई इयत्ता नहीं। ये क्षमा-धर्म के आदर्श विग्रह हैं। इनका उदात्त दिव्य चरित्र परम पवित्र है।







## महर्षि अंगिरा

पुराणों में बताया गया है कि महर्षि अंगिरा ब्रम्हाजी के मानस पुत्र हैं तथा ये गुणों में ब्रम्हाजी के ही समान हैं। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है और सप्तर्षियों में वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा मरीचि आदि के साथ इनका भी परिगणन हुआ है। इनके दिव्य अध्यात्म ज्ञान, योगबल, तपःसाधना एवं मन्त्रशक्ति की विशेष प्रतिष्ठा है। इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति (मतान्तर से श्रद्धा) थीं, जिनसे इनके वंश का विस्तार हुआ।

इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिरा के तपोबल के सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है तो वे दुःखी हो अंगिरा के पास गये और कहने लगे - 'आप प्रथम अग्नि हैं, मैं आपके तेज की तुलना में अपेक्षाकृत न्यून होने से द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज आपके सामने फीका पड़ गया है, अब मुझे कोई अग्नि नहीं कहेगा।' तब महर्षि अंगिरा ने सम्मान पूर्वक उन्हें देवताओं को हवि पहुँचाने का कार्य सौंपा। साथ ही पुत्ररूप में अग्नि का वरण किया। तत्पश्चात् वे अग्निदेव ही बृहस्पति-नाम से अंगिरा के पत्र रूप में प्रसिद्ध हुए। उत्थय तथा महर्षि संवर्त भी इन्हीं के पुत्र हैं। महर्षि अंगिरा की विशेष महिमा है। ये मन्त्रद्रष्टा, योगी, संत तथा महान् भक्त हैं। इनकी 'अंगिरा-स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वेद में महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्य-प्रशिष्यों का जितना उल्लेख है, उतना अन्य किसी ऋषि के संबंध में नहीं है। विद्वानों का यह अभिमत है कि महर्षि अंगिरा से संबंधित वेश और गोत्रकार ऋषि ऋग्वेद के नवम मण्डल के द्रष्टा हैं। नवम मण्डल के साथ ही ये आंगिरस ऋषि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अनेक मण्डलों के तथा कतिपय सूक्तों के द्रष्टा ऋषि हैं। जिनमें से महर्षि कुत्स, हिरण्यस्तूप, सप्तगु, नृमेध, शांकपूत, प्रियमेध, सिन्धुसित्, वीतहव्य, अभीवर्त, आङ्गिरस, संवर्त तथा हरिर्धान आदि मुख्य हैं।







ऋग्वेद का नवम मण्डल जो ११४ सूक्तों में उपनिबद्ध है, 'पवमान-मण्डल' के नाम से विख्यात है। इसकी ऋचाएँ पावमानी ऋचाएँ कहलाती हैं। इन ऋचाओं में सोम देवता की महिमापरक स्तुतियाँ हैं, जिनमें यह बताया गया है कि इन पावमानी ऋचाओं के पाठ से सोम देवताओं का आप्यायन होता है।

--०००--







रामायण, महाभारत व पुराणकालीन ऋषि संबंधी आख्यान

(१) ऋषि संबंधी आख्यान :-

## द्वितीय अध्याय

# रामायण, महाभारत व पुराणकालीन ऋषि संबंधी आख्यान



विष्णु अष्टावक्र

अष्टावक्र, अष्टावक्र  
अष्टावक्र अष्टावक्र  
अष्टावक्र अष्टावक्र



## रामायण, महाभारत व पुराणकालीन ऋषि संबंधी आख्यान

### (१) ऋषि संबंधी आख्यान :-

महाभारत तथा अन्य धर्मग्रंथों में ऋषियों की उत्पत्ति संबंधित अनेक कथाएं उल्लिखित हैं। यहाँ हम उन्हीं ऋषियों की जन्म कथाओं को लेंगे जो असाधारण हैं अर्थात् सामान्य रूप से जिनका जन्म नहीं हुआ है। महाभारत तथा अन्य धर्मग्रंथों पुराणादि में कई ऋषियों की जन्म कथा असामान्य तथा आश्चर्यजनक रूप में वर्णित है। उदाहरणार्थ - वसिष्ठ एवं अगस्त्य की उत्पत्ति कुम्भ से वर्णित है। ऋषिशृंग की उत्पत्ति हिरणी से हुई, ऐसी कथा है। इस तरह से अनेक ऋषियों के जन्म संबंध में विचित्र कथाएं वर्णित हैं। कई ऋषियों की जन्म कथा महाभारत, रामायण तथा पुराणों में भिन्न-भिन्न हैं। यथा अष्टावक्र की कथा, वसिष्ठ एवं अगस्त्य की कथा इत्यादि। इनका विस्तृत विवरण इसी अध्याय में आगे दिया जाएगा। कुछ ऋषियों का तो उनके जन्म से संबंधित विचित्र घटनाओं के आधार पर ही एक नामकरण भी किया गया है। जैसे आठ अंगों से वक् उत्पन्न होने के कारण उन्हें अष्टवक्र कहा गया। इस अध्याय के प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड में महाभारत में स्थान-स्थान पर उपलब्ध ऋषियों के जन्म की विचित्र कथाओं का प्रतिपादन किया जाएगा और उनका वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आधार पर विश्लेषण करने का यथा संभव प्रयत्न किया जाएगा। यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि महाभारत के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में जैसे रामायण तथा पुराणों में भी उन ऋषियों की जो कुछ भिन्न कथाएं हैं, उनका भी वर्णन किया जाएगा।

### महर्षि पराशर की जन्म कथा :-

महर्षि पराशर महान् ऋषि थे। महातपस्वी पराशर वसिष्ठ के पौत्र एवं शक्ति के पुत्र थे, उन्होंने महातपस्वी व्यास को उत्पन्न किया था। महर्षि पराशर जब गर्भ में







थे तब ही उनके पिता महर्षि शक्ति को शापग्रस्त राजा कल्माषपाद ने (राक्षस रूप में) वन में मार डाला था। पुत्र शोक से पीड़ित महर्षि वसिष्ठ जब नाना विधि से आत्महत्या के प्रयास में विफल हो अपने आश्रम में लौटे, तब उन्हें पीछे की ओर से संगीतपूर्वक छहों अंगों से अलंकृत तथा स्फुट अर्थों से युक्त वेदमंत्रों के अध्ययन का शब्द सुनाई पड़ा। तब उन्होंने पूछा मेरे पीछे पीछे कोन आ रहा है? शक्ति पत्नी अदृश्यन्ती ने कहा - महाभाग। मैं तप में ही संलग्न रहने वाली महर्षि शक्ति की अनाथ पत्नी अदृश्यन्ती हूँ। वसिष्ठ ने पूछा - पहले शक्ति के मुंह से मैं अंगों सहित वेदों का जैसा पाठ सुना करता था, ठीक उसी प्रकार यह किसके द्वारा किए हुए सामवेद के अध्ययन की ध्वनि मेरे कानों में आ रही है? अदृश्यन्ती ने कहा - भगवन्। यह मेरे उदर में उत्पन्न हुआ आपके पुत्र शक्ति का बालक है। मुने! उसे मेरे गर्भ में ही वेदाभ्यास करते बारह वर्ष हो गये। अयं कुक्षा -

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्यसे।

समाद्वादश तस्येह वेदानभ्यस्तो मुने ॥ (आदि १७७।१५)

महर्षि वसिष्ठ यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गए। वसिष्ठ ने अपनी पुत्रवधू अदृश्यन्ती को अपने आश्रम में सुरक्षापूर्वक रखा। तदंतर वसिष्ठ जी के आश्रम में रहते हुए अदृश्यन्ती ने शक्ति के वंश को बढ़ाने वाले पुत्र को जन्म दिया। मुनिवर वसिष्ठ ने स्वयं अपने पौत्र के जातकर्म आदि संस्कार किए। उस बालक ने गर्भ में आकर परासु (मरने की इच्छा रखने वाले) वसिष्ठ मुनि को पुनः जीवित रहने के लिए उत्साहित किया था। इसलिए यह इस लोक में पराशर नाम से विख्यात हुआ।

परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।

गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥ (आदि १७७।१९)







## महर्षि व्यास की जन्म कथा :-

सत्यवती जमुनाजी के जल में नाव चलाया करती थी। एक दिन महर्षि शक्ति के पुत्र पराशर तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से सब ओर विचरने वाले थे - उन महर्षि पराशर ने सत्यवती को देखा। वह अतिशय रूप सौन्दर्य से सुशोभित थी। सिद्धों से हृदय में भी उसे प्राप्त करने की इच्छा जाग उठती थी। उसकी हंसी बड़ी मोहक थी। उस दिव्य व सुकुमारी को देखकर बुद्धिमान मुनिवर पराशर ने उसके साथ समागम की इच्छा प्रकट की। और कहा - कल्याणी ! मरे साथ संगम करो। वह बोली - देखिये, नदी के दोनों ओर से बहुत से ऋषि खड़े हैं और हमें देख रहे हैं। ऐसी दशा में हमारा समागम कैसे हो सकता है? उसके ऐसा कहने पर शक्तिशाली भगवान् पराशर ने कुहरे की सृष्टि की। जिससे वहां का सारा प्रदेश अंधकार से आच्छादित हो गया। महर्षि द्वारा कुहरे की सृष्टि देखकर तपस्विनी सत्यवती आश्चर्य चकित एवं सज्जित हो गयी। सत्यवती ने कहा - भगवन् ! आपको मालूम होना चाहिए कि मैं सदा अपने पिता के अधीन रहने वाली कुमारी कन्या हूँ। निष्पाप महर्षि ! आपके साथ संयोग से मेरा कन्याभाव (कुमारीपन) दुषित हो जाएगा। द्विजश्रेष्ठ ! कन्याभाव से दुषित हो जाने पर मैं कैसे अपने घर जा सकती हूँ। अपने कन्यापन के कलंकित हो जाने पर मैं जीवित रहना नहीं चाहती। भगवन् ! इस बात पर भलीभाँति विचार कर जो उचित जान पड़े, वह कीजिए?

सत्यवती के कहने पर मुनिश्रेष्ठ पराशर प्रसन्न होकर बोले - भीरु ! तुम मेरा प्रिय कार्य करके भी तुम कन्या ही रहोगी। भामिनी ! तुम जो चाहो वह मुझसे वर मांग लो। आज से पहले कभी भी मेरा अनुग्रह व्यर्थ नहीं गया है।

महर्षि के ऐसा कहने पर सत्यवती ने अपने शरीर में उत्तम सुगंध होने का वरदान मांगा। भगवान् पराशर ने इस भूतल पर उसे मनोवांछित वर दे दिया।







तत्पश्चात् वरदान पाकर प्रसन्न हुई सत्यवती नारीपन के समागमोचित गुण से विभूषित हो गई और उसने अद्भुतकर्मा महर्षि पराशर के साथ समागम किया। उसके शरीर से उत्तम गंध फैलने के कारण उसका गंधवती तथा एक योजन दूर तक उसकी गंध फैलने के कारण योजनगंध नाम से विख्यात हुई।

इस प्रकार उत्तम वर प्राप्त कर हर्षोल्लास से भरी हुई सत्यवती ने महर्षि पराशर का संयोग प्राप्त किया और तत्काल ही एक शिशु को जन्म दिया। यमुना के द्वीप में अत्यंत शक्तिशाली पराशर नंदन व्यास प्रकट हुए।

परशरेण संयुक्ता स्पृगर्भ सुभाव सा।

जयं च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान् ॥ (आदि ८३।८४)

उन्होंने माता से यह कहा - आवश्यकता पड़ने पर तुम मेरा स्मरण करना। मैं अवश्य दर्शन दूँगा। इतना कहकर माता की आज्ञा से व्यास जी ने तपस्या में ही मन लगाया। इस प्रकार महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से द्वैपायन व्यास जी का जन्म हुआ। वे बाल्यावस्था में ही यमुना के द्वीप में छोड़ दिए गए, इसलिए द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुए। (आदि ६३।७०)

**महर्षि वसिष्ठ की उत्पत्ति :-**

वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। उनकी पत्नी का नाम अरुन्धती है। इंद्रियों को वश में रखने के कारण ही वे वसिष्ठ कहलाते हैं। महाभारत में वसिष्ठ ने जन्म के संबंध में कहीं भी विस्तृत विवरण नहीं है। कहीं उन्हें ब्रह्मा का मानसपुत्र (ब्राह्मणों मानसः पुत्रो वसिष्ठो - इत्यादि, आदि १७३।५) तथा कहीं मित्रावरुण पुत्र वसिष्ठ - ऐसा कहा गया है। मत्स्य पुराण में उनके जन्म से संबंधित निम्न कथा वर्णित है :-







**मत्स्य पुराण में महर्षि वसिष्ठ एवं अगस्त्य जी उत्पत्ति की कथा :-**

राज निमि एवं वसिष्ठ पूर्व जन्म में परस्पर शाप के कारण विदेह हो गए। दोनों के जीव ब्रह्म के पास पहुंचे। ब्रह्मा के आदेशानुसार निमि तो मनुष्य की पलकों पर स्थित हुए और वसिष्ठ जी की उत्पत्ति इस प्रकार हुई :- (ब्रह्मा ने कहा कि - हे वसिष्ठ। तुम मित्रा वरुण के पुत्र होंगे। वहां भी तुम्हारा नाम वसिष्ठ रहेगा। बीते हुए दो जन्मों का वृत्तांत तुम्हें स्मरण रहेगा।) ठीक इसी अवसर पर मित्र और वरुण ये दोनों देवता बदरी आश्रम के समीप घोर तपस्या में निरत थे। इसी समय वसंत आया। सभी वहां उर्वशी नामक अप्सरा फूलों को चुनती हुई आयी। उर्वशी को देखकर दोनों तपस्वी उसके अनुपम रूप सौन्दर्य से विमोहित होकर क्षुब्ध हो गए और मृग चर्म के आसन पर तपस्या में निरत उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया। शाप के भय से डरी हुई उर्वशी ने उन महानुभाव ऋषियों के मृगासन पर स्खलित हुए वीर्य को देखकर जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को उठा कर रख लिया। उसी घट से अनुपम तेजस्वी वसिष्ठ तथा अगस्त्य उत्पन्न हुए, जो मित्र और वरुण के पुत्र कहे जाते हैं। वसिष्ठ ने नारद ऋषि की बहिन परम सुंदरी अरुन्धती के साथ विवाह किया, जिसके संयोग से उन्हें शक्ति नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। शक्ति के पराशर नामक पुत्र उत्पन्न हुए। (मत्स्य २०।१।१५)

**महर्षि च्यवन की जन्म कथा :-**

महर्षि च्यवन ब्रह्मपुत्र महर्षि भृगु के पुत्र थे। उन्हें भार्गव भी कहा जाता था। वे महान् तपस्वी एवं धर्मात्मा थे। उनका आहार-विहार नियमित था। उनके जन्म की कथा विचित्र है। उनकी माता पुलोमा थीं।

महर्षि च्यवन की जन्म भृगु की पत्नी का नाम पुलामा था। वह अपने पति को बहुत प्यारी थीं। उसके गर्भ में भृगुजी के वीर्य से उत्पन्न गर्भ में पल रहा था।







पुलोमा यशस्वी भृगु की अनुकूल शील स्वभाव वाली धर्मपत्नी थी। उसके कुक्षि में उस गर्भ के प्रकट होने पर एक समय धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भृगु जी स्नान करने के लिए आश्रम से बाहर निकले। उसी समय एक राक्षस जिनका नाम भी पुलोमा था उनके आश्रम में आया।

आश्रम में प्रवेश करते ही उसकी दृष्टि महर्षि भृगु की पतिव्रता पत्नी पर पड़ी और वह काम के वशीभूत हो गया और अपनी सुधबुध खो बैठा। उस सुंदरी पुलोमा ने उस राक्षस को अभ्यागत अतिथि जानकर वन में फल-मूल से उसका सत्कार करने के लिए आमंत्रित किया। पुलोमा को अकेली देख उसका काम पीड़ित राक्षस ने हर्ष का अनुभव किया क्योंकि वह उसे हर ले जाना चाहता था। मन ही मन प्रसन्न हो रहे उस राक्षस ने पुलोमा को पहले वरण किया था। (बाल्यावस्था में पुलोमा रो रही थी। उसके रोदन की निवृत्ति के लिए पिता ने डरते हुए कहा - रे राक्षस। तू इसे पकड़ लो। घर में पुलोमा राक्षस पहले से ही छिपा हुआ था। उसने मन ही मन वरण कर लिया - यह मेरी पत्नी है।) किन्तु पीछे शास्त्र विधि के अनुसार उसके पिता ने भृगु के साथ पुलोमा का विवाह कर दिया। उसके पिता का वह अपराध उस राक्षस के मन में सदा खटकता था।

यही सुअवसर है ऐसा विचार कर उसने उसी समय पुलोमा को हर ले जाने का पक्का निश्चय कर लिया। इतने में ही राक्षस ने देखा - अग्निहोत्र गृह में अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे थे। तब पुलोमा ने उस समय उस प्रज्वलित पावक से पूछा - अग्निदेव मैं सत्य की शपथ देकर पूछता हूँ, बताओ, ठीक ठीक बताओ। पहले तो मैंने ही इस सुंदरी को पत्नी बनाने के लिए वरण किया था किन्तु बाद में असत्य व्यवहार करने वाले इसके पिता ने भृगु के साथ इसका विवाह कर दिया। यदि एकान्त में मिली हुई यह सुंदरी भृगु की भार्या है तो सच-सच बता दो क्योंकि मैं इसे इस आश्रम से हर







कर ले जाना चाहता हूँ। इस प्रकार वह पुलोमा राक्षस भृगु की पत्नी के प्रति-गह गेरी है यह भृगु की, ऐसा संशय रखते हुए बार-बार अग्नि को संबोधित करके पूछने लगा।

राक्षस की यह बात सुनकर ज्वालामयी सतत विद्वाओं वाले अग्निदेव बहुत दुखी हुए। वे एक ओर तो झूठ से डरते थे और दूसरी ओर भृगु के श्राप से। अतः धीरे से इस प्रकार बोले - दानवनंदन। इसमें संदेह नहीं कि तुम्ही ने पहले इस पुलोमा का वरण किया था, किंतु विधिपूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए विवाह नहीं किया। पिता ने तो इस यशस्विनी पुलोमा को भृगु को ही दी है। महर्षि भृगु ने ही मुझे साझी बनाकर वेदोक्त क्रिया द्वारा विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण किया था।

अग्नि का वह वचन सुनकर उस राक्षस ने वराह रूप धारण करके मन और वायु के समान वेग से उसका अपहरण किया। उस समय वह गर्भ जो अपनी माता की कुक्षि में निवास कर रहा था, अत्यंत रोष के कारण योगबल से माता के उदर से च्युत होकर बाहर निकल आया। च्युत होने के कारण ही उसका नाम च्यवन हुआ।

ततः स गर्भो निवसन् कुक्षौ भृगुकुलोहह ।

रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवन स्तेन होहभवत् ॥ (आदि ६।२)

माता के गर्भ से च्युत होकर गिरे हुए सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखते ही राक्षस पुलोमा को छोड़कर गिर पड़ा और तत्काल ही जल कर भष्म हो गया।

पुनलोमा दुख से मूर्छित हो गई और किसी तरह अपने पुत्र को उठाकर ब्रह्माजी के पास चली गई। उन्होंने रोती हुई पुत्र वधू को देखा और सांतवना दी। उसके आंसुओं के बूंदों से एक बहुत बड़ी नदी प्रकट हो गई। जो पुलोमा के मार्ग को आप्लावित किए हुए थी। वधूसरा नाम ब्रह्माजी ने उसे दिया जो आज भी च्यवन के आश्रम के पास से बहती है। महर्षि भृगु के सब वृत्तान्त जानने पर परक्मक्रोधी महर्षि







भृगु का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने अग्निदेव को श्राप दिया - तुम सार्वभक्षी हो जाओगे। (आदि १३।६) महर्षि च्यवन की पत्नी का नाम सुकन्या था। (आदि ८।१२)

### कृपाचार्य :-

गौतम गोत्रीय कृपाचार्य प्रकाण्ड विद्वान तथा महान् तपस्वी थे। वे विधिशास्त्रों के पारंगत विद्वान थे। राजा घृतराष्ट्र ने कौरवों तथा पाण्डवों को शिक्षा देने के लिये उन्हें नियुक्ति किया था। उन्हीं को गुरु बनाकर कुरुकु के उन सभी कुमारों को उन्हें (कृपाचार्य को) सौंप दिया गया, फिर वे बालक कृपाचार्य से धनुर्वेद का अध्ययन करने लगे। (आदि १२८।४२, ४३)

### कृपाचार्य की जन्मकथा :-

(साथ ही उनके पिता शरद्वान् गौतम की भी कथा) महर्षि गौतम के शरद्वान् गौतम नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र थे। गौतम गोत्रीय होने के कारण शरद्वान् को भी गौतम कहा जाता था। कहते हैं - वे सरकन्दों के साथ उत्पन्न हुए थे।

महर्षिगौतमस्यासीच्छरद्वान्, नाम गौतमः ।

पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभोः ॥ (आदि १२९।२)

उनकी बुद्धि धनुर्वेद में जितनी लगती थी, उतनी वेदों के अध्ययन में नहीं। जैसे अन्य ब्रह्मचारी तपस्यापूर्वक वेदों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने तपस्या युक्त होकर संपूर्ण अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये थे।

वे धनुर्वेद में पारंगत तो थे ही, उनकी तपस्या भी बड़ी भारी थी। इससे (अपनी तपस्या से) गौतम ने देवराज इन्द्र को अत्यंत चिंता में डाल दिया था।



६३  
 ... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...



तब इन्द्र ने जानपदी नाम की एक देवकन्या (अप्सरा) को उनके पास भेजा और आदेश दिया कि - तुम शरद्वान की तपस्या में विघ्न डालो। वह जानपदी शरद्वान के रमणीय आश्रम में जाकर धनुषबाण धारण करने वाले गौतम को लुभाने लगी।

गौतम ने एक वस्त्र धारण करने वाली उस अप्सरा को वन में देखा। संसार में उसके सुंदर शरीर की कहीं तुलना नहीं थी। उसे देखकर शरद्वान प्रसन्नता से खिल उठे। उनके हाथों से धनुष और बाण छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़े तथा उसकी ओर देखने से उनके शरीर में कम्प हो आया। शरद्वान ज्ञान में बहुत बढ़े-चढ़े थे और उनकी तपस्या की भी प्रबल शक्ति थी। अतः वे महाप्राज्ञ मुनि अत्यन्त धीरतापूर्वक अपनी मर्यादा में स्थित रहे। किन्तु उनके मन में सहसा जो विचार देखा गया इससे उनका वीर्य स्खलित हो गया। परन्तु इस बात का उन्हें भान न हुआ। वे मुनि, बाण सहित धनुष, काला मृगचर्म, आश्रम और वह अप्सरा, सब को वहीं छोड़ कर वहां से चल दिये। उनका वह वीर्य सरकंडे के समुदाय पर गिर पड़ा। वहां गिरने पर उनका वह वीर्य दो भागों में बंट गया।

तदंतर गौतमनन्दन शरद्वान के उसी वीर्य से एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई।

जगाम रेतस्तत् तरस्य शरस्तम्हे पषात च ।  
 शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभ्वन्नृप ॥  
 तस्याथ मिथुनं जडे  
 गौतमस्य शरद्वतः ॥ (आदि १२९।१३, १४)

उसी दिन देवेच्छा से राजा शान्तनु वन में शिकार खेलने आये थे। उनके किसी सैनिक ने वन में उन युगल सन्तानों को देखा। वहां बाण सहित धनुष और







काला मृगचर्म देखकर उसने यह जान लिया कि ये दोनों किसी धनुर्वेद पारंगत विद्वान् ब्राह्मण की संतान हैं। ऐसा निश्चित होने पर उसने राजा को उन दोनों बालकों को और बाण सहित धनुष को दिखाया। राजा उन्हें देखते ही कृपा से वशीभूत हो गए और उन दोनों को साथ ले अपने घर आ गये। वे किसी के पूछने पर यही उत्तर देते थे कि ये दोनों मेरी ही संतान हैं। शान्तनु ने शरद्वान के उन दोनों बालकों का पालन पोषण किया और यथासमय उन्हें सब संस्कारों से सम्पन्न किया।

गौत (शरद्वान) भी उस आश्रम से अन्यत्र जाकर धनुर्वेद के अभ्यास में तत्पन रहने लगे। राजा शान्तनु यह सोचकर कि मैंने इन बालकों को कृपापूर्वक पाला है, उन दोनों का उन्होंने नाम रखा - कृप और कृपी। राजा द्वारा पालित हुई अपनी दोनों संतानों का हाल शरद्वान ने अपने तपोबल से जान लिया और वहां गुप्त रूप से आकर अपने पुत्र को गोत्र आदि सब बातों का पूरा परिचय दे दिया। चार प्रकार के धनुर्वेद, नाना प्रकार के शास्त्र तथा उन सब के गूढ़ रहस्य का भी पूर्ण रूप से उसको उपदेश दिया। इससे कृप थोड़े ही समय में धनुर्वेद के उत्कृष्ट आचार्य हो गये।

धृतराष्ट्र के महारथी पुत्र, पाण्डव, यादव - सबने उन्हीं कृपाचार्य से धनुर्वेद का अध्ययन किया। वृष्णिवंशी तथा विभिन्न देशों से आये हुए अन्य नरेश भी उनसे धनुर्वेद की शिक्षा लेते थे। (आदि १२९।२३)

### परशुराम की जन्म कथा :-

जन्हु के पुत्र गाधि के रूप में इन्द्र ने स्वयं जन्म लिया था। गाधि की कन्या सत्यवती का विवाह भृगुपुत्र ऋचीक के साथ हुआ। सत्यवती बड़े शुद्ध आचार-विचार से रहती थी। उसकी शुद्धता से प्रसन्न होकर ऋचीक मुनि ने उसे तथा राजा गाधि को भी पुत्र देने के लिये मंत्रपूत चरु तैयार किया। ऋचीक ने अपनी पत्नी को बुलाकर







कहा - यह चरु तुम खा लेना और दूसरा अपनी मां को दे देना। तुम्हारी माता को जो पुत्र होगा वह अत्यंत तेजस्वी एवं क्षत्रिय शिरोमणी होगा। इस जगत् के क्षत्रिय उसे नहीं जीत सकेंगे। कल्याणि! मैंने तुम्हारे लिये जो यह चरु तैयार किया है, यह तुम्हें धैर्यवान्, शांत एवं तपस्या परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण पुत्र प्रदान करेगा।

तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं शामात्मकम्।

तपो निवतं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ (शांति ४९।११)

अपनी पत्नी से ऐसा कहकर भृगुनंदन श्रीमान् ऋचीक मुनि तपस्या में तत्पर हो जंगल में चले गये। इसी समय तीर्थ यात्रा करते हुए राजा गाधि अपनी पत्नी के साथ ऋचीक मुनिक के आश्रम में आये। उस समय सत्यवती यह दोनों चरु लेकर अपनी माता के पास गयी और अपने पति द्वारा कही गयी सारी बातें बता दी। सत्यवती की माता ने अज्ञानवश अपना चरु तो पुत्री को दे दिया और उसका चरु स्वयं लेकर भोजन द्वारा अपने में स्थित कर लिया। तदंतर सत्यवती ने अपनी तेजस्वी शरीर से एक ऐसा गर्भ धारण किया, जो क्षत्रियों का विनाश करने वाला था और देखने में बड़ा भयंकर जान पड़ता था। सत्यवती ने गर्भगत बालक को सोता देखकर भृगुश्रेष्ठ महर्षि ऋचीक ने कहा - भद्रे ! तुम्हारी माता ने चरु बदल कर तुम्हें ठग लिया। तुम्हारा पुत्र अत्यंत क्रोधी और क्रूर कर्म करने वाला होगा। परन्तु तुम्हारा ब्राह्मण स्वरूप एवं तपस्यापरायण होगा। तुम्हारे चरु में मैंने संपूर्ण तेज ब्रह्म की प्रतिष्ठा की थी और तुम्हारी माता के लिये जो चरु था उसमें संपूर्ण क्षत्रियोचित बल पराक्रम का समावेश किया, परन्तु कल्याणि। चरु के बदल जाने से अब ऐसा नहीं होगा। तुम्हारी माता का पुत्र तो ब्राह्मण होगा और तुम्हारा क्षत्रिय। पति के ऐसा कहने पर सत्यवती ने उनसे अनुरोध किया कि मुने ! आप चाहें तो संपूर्ण लोकों की नयी सृष्टि कर सकते हैं, फिर इच्छानुसार पुत्र उत्पन्न करने की बात ही क्या है? अतः प्रभो मुझे तो शांत एवं सरल







स्वभाव वाला पुत्र ही प्रदान कीजिए। ऋषि ने कहा - मैंने कभी हास-परिहास में झूठी बात नहीं कही है, फिर अग्नि की स्थापना करके मन्त्रयुक्त चरु तैयार करते समय मैंने जो संकल्प किया है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है। मैंने तपस्या द्वारा यह पहले ही यह बात देख और जान ली है कि तुम्हारे पिता का समस्त कुल ब्राह्मण होगा। तब सत्यवती ने कहा - कि आपका और मेरा पौत्र भले ही उग्र स्वभाव वाला हो परन्तु पुत्र तो मुझे शांत स्वभाव का ही चाहिये। तब ऋचीक बोले - मरे लिये पुत्र और पौत्र में कोई अंतर नहीं है। तुमने जैसा कहा है वैसा ही होगा। तदंतर सत्यवती ने शांत, संयम परायण और तपस्वी भृगुवंशी - जमदग्नि को पुत्र के रूप में जन्म दिया।

कुशिक नंदन गाधि ने विश्वामित्र नामक पुत्र प्राप्त किया जो संपूर्ण ब्राह्मणोचित गुणों से संपन्न थे और ब्रह्मर्षि पदवी को प्राप्त हुये।

ऋचीक ने तपस्या के भंडार जमदग्नि को जन्म दिया और जमदग्नि ने अत्यंत उग्र स्वभाव वाले जिस पुत्र को उत्पन्न किया वही संपूर्ण विधाओं तथा धनुर्वेद के पारंगत विद्वान् प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी क्षत्रियहन्ता परशुराम जी हैं।

सो पि पुत्रं जनयज्जमदग्निः सुदारुणम् ।

सर्व विषान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पाक्वम् । (शांति १४९।३१, ३२)

परशुराम ने गंधमादन पर्वत पर महादेव जी को संतुष्ट करके उनसे अनेक प्रकार के अस्त्र और अत्यंत तेजस्वी कुठार प्राप्त किया। उस कुठार की धार कभी कुण्ठित नहीं होती थी। वह जलती हुई आग के समान उद्दीप्त दिखायी देता था। उस अप्रमेय शक्तिशाली कुठार के कारण परशुराम जी संपूर्ण लोकों में अप्रतिम वीर हो गया। (शांति ४९।३)







## जमदग्नि की जन्म कथा :-

कान्यकुब्ज देश में एक महाबली राजा शासन करते थे जो गाधि नाम से विख्यात थे। वे राजधानी छोड़कर वन में गये और वहीं रहने लगे। उनके वनवास काल में ही एक कन्या उत्पन्न हुई जो अप्सरा के समान सुंदर थी। विवाह योग्य होने पर भृगुपुत्र ऋचीक ने उसका वरण किया। उस समय गाधि ने कठोर व्रत का पालन करने वाले महर्षि ऋचीक से कहा - द्विजश्रेष्ठ। हमारे कुल में पूर्वजों ने जो कुछ शुल्क लेने का नियम चला रखा है, उसका पालन करना हम लोगों के लिये भी उचित है। अतः आप यह जान लें कि इस सफेद और पीला मिला हुआ सा और कान एक ओर से काले रंग के हों। भृगुनंदन आप कोई निन्दनीय तो नहीं, यह शुल्क चुका दीजिये, फिर आप जैसे महात्मा को मैं अवश्य अपनी कन्या व्याह दूंगा।

ऋचीक बोले - राजन्। मैं आपको एक ओर से श्याम कर्ण वाले पाण्डु रंग के एक हजार वेशाली अश्व अपिर्जित करूंगा। आपकी पुत्री मेरी धर्मपत्नी बने। इस प्रकार शुल्क देने की प्रतिज्ञा करके ऋचीक मुनि ने वरुण के पास जाकर इस प्रकार के घोड़े मांगे। उस समय वरुण ने उनकी इच्छा के अनुसार एक हजार श्यामकर्ण घोड़े दे दिये। जहां वे घोड़े प्रकट हुए थे, वह स्थान अश्वतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। तत्पश्चात् राजा गाधि ने शुल्क रूप में एक हजार श्यामकर्ण के घोड़े प्राप्त करके गंगा तट पर कान्यकुब्ज नगर में ऋचीक मुनि को अपनी पुत्री सत्यवती व्याह दी। उस समय देवता बराती बने थे। (वन पर्व ११५।१९)

ऋचीक के विवाह करने के पश्चात् पत्नी सहित ऋचीक के देखने के लिये महर्षि भृगु उनके आश्रम पर आये और अपने श्रेष्ठ पुत्र को विवाहित देखकर प्रसन्न हुए। उन दोनों पति-पत्नी ने पवित्र आसन पर विराजमान देववृन्दवन्दिस गुरु (पिता एवं श्वशुर) का पूजन किया और उनकी उपासना में संलग्न हो वे हाथ जोड़े खड़े रहे।







भगवान् भृगु ने अत्यंत प्रसन्न होकर अपनी पुत्रवधू से कहा - सौभाग्यवती बहू! कोई वर मांगो, मैं तुम्हारी इच्छा के अनुरूप वर प्रदान करूंगा। सत्यवती ने अपने श्वशुर को अपने और अपनी माता के लिये पुत्र प्राप्ति का उद्देश्य रखकर प्रसन्न किया। तब भृगुजी ने उस पर कृपा दृष्टि की। भृगुजी बोले - बहू! ऋतुकाल में स्नान करने के पश्चात् तुम और तुम्हारी माता दोनों पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से दो भिन्न-भिन्न वृक्षों का आलिंगन करना। तुम्हारी माता तो पीपल का और तुम गूलर वृक्ष का आलिंगन करना। भद्रे ! मैंने विराट पुरुष परमात्मा का चिंतन करके तुम्हारे और तुम्हारी माता के लिये दो चरु तैयार किये हैं। तुम दोनों प्रयत्न पूर्वक अपने-अपने चरु का भक्षण करना। ऐसा कहकर भृगुजी अंतर्धान हो गये। इधर सत्यवती और उसकी माता ने वृक्षों के आलिंगन और चरु भक्षण में उलट फेर कर दिया।

तदंतर बहुत दिन बीत जाने पर भृगु अपनी दिव्य ज्ञान शक्ति से सब बातें जानकार पुनः वहां आये और अपनी पुत्रवधू सत्यवती से बोले - भद्रे ! तुमने जो चरु भक्षण और वृक्षों का आलिंगन किया है, उसमें उलटफेर करके तुम्हारी माता ने तुम्हें ठग लिया। इस मूल के कारण तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मणोचित आचार विचार का पालन करने वाला होगा। वह महापराक्रमी बालक साधु महात्माओं के मार्ग का अवलम्बन करेगा।

तब सत्यवती ने पुनः अपने श्वशुर को प्रसन्न करके कहा - भगवन् ! मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र क्षत्रिय स्वभाव का हो जाये। तब एवमस्तु कहकर भृगुजी ने अपनी पुत्रवधू का अभिनंदन किया। तत्पश्चात् प्रसव का समय अपने पर सत्यवती ने जमदग्नि नामक पुत्र को जन्म दिया। भार्गवनंदन जमदग्नि तेज और ओज (बल) दोनों से संपन्न थे। बड़े होने पर महातेजस्वी जमदग्नि मुनि वेदाध्ययन द्वारा बहुत से ऋषियों से आगे बढ़ गये। सूर्य के समान तेजस्वी जमदग्नि की बुद्धि में संपूर्ण धनुर्वेद और चारों प्रकार के अस्त्र स्वतः स्फुरित हो गये। (वन पर्व ११५।३१)







### विश्वामित्र की जन्म कथा :-

भरतवंश में कुशिक नामक राजा हुए। कुशिक के पुत्र गांधि हुए। गांधि वन में रहते थे। वहां समागम करते समय इन्हें सत्यवती नामक कन्या प्राप्त हुई। इसका विवाह च्यवन पुत्र ऋचीक मुनि के साथ हुआ। अपनी पत्नी के सद्व्यवहार से ब्रह्मर्षि ऋचीक बहुत संतुष्ट हुए। सत्यवती ने पति ऋचीक की कृपा से जमदग्नि को जन्म दिया। इन्हीं महर्षि के कृपा प्रसाद से गांधि की पत्नी ने ब्रह्मवादी विश्वामित्र को उत्पन्न किया। इसलिये महातपस्वी विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर ब्राह्मणवंश के प्रवर्तक हुए। उन ब्रह्मवेत्ता तपस्वी के महामनस्वी पुत्र भी ब्राह्मण वंश की वृद्धि करने वाले और गोत्रकर्ता हुए। (अनु. ३।४)

### द्रोणाचार्य की जन्म कथा :-

गंगाद्वार में भगवान् भारद्वाज नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि रहते थे। वे सदा अत्यंत कठोर व्रतों का पालन करते थे। एक दिन उन्हें एक विशेष प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करना था। इसलिये वे भारद्वाज मुनि महर्षियों को साथ लेकर गंगाजी में स्नान करने के लिये गये। वहां पहुंचकर महर्षि ने प्रत्यक्ष देखा, धृताची अप्सरा पहले से ही स्नान करके नदी के तट पर खड़ी हो वस्त्र बदल रही थी। वह रूप और यौवन से संपन्न थी। जवानी के नशे में मद से उन्मत्त हुई जान पड़ती थी। उसका वस्त्र खिसक गया और उसे उस अवस्था में देखकर ऋषि के मन में कामवासना जाग उठी। परम बुद्धिमान् भारद्वाजजी का मन उस अप्सरा में आसक्त हुआ, इससे उनका वीर्य स्खलित हो गया। ऋषि ने उस वीर्य को द्रोण (यज्ञकलश) में रख दिया। तब उन बुद्धिमान् महर्षि को जो उस द्रोण (कलश) से पुत्र उत्पन्न हुआ, वह द्रोण से जन्म लेने के कारण द्रोण नाम से ही विख्यात हुआ।







ततः समभवद् द्रोणः कलशे तस्य धीमतः । (आदि १२९।३८)

उसने संपूर्ण वेदों और वेदांगों का अध्ययन किया।

**भारद्वाज :-**

प्रतापी महर्षि भारद्वाज महाभाग अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ थे। उन्होंने महाभाग अग्निवेश को आग्नेय अस्त्र की शिक्षा दी थी। अग्निवेश मुनि साक्षात् अग्नि के पुत्र थे। अग्निवेश ही द्रोणाचार्य के गुरु थे।

**और्व की जन्म कथा :-**

पूर्व कृतवीर्य नाम से प्रसिद्ध राजा भृगुवंशीय ब्राह्मणों के यजमान थे। कृतवीर्य ने सोमयज्ञ करके उसके अंत में उन अग्रभोजी ब्राह्मणों को विपुल धन-धान्य देकर पूर्णतः संतुष्ट किया। कृतवीर्य के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके वंशजों को द्रव्य की आवश्यकता आ पड़ी। भृगुवंशी ब्राह्मणों के यहां धन है - ऐसा जानकर वे सभी राजपुत्र भार्गवों के पास याचक बनकर गए। यथा संभव धन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। मांगने पर न मिलने से वे लूट पाट करने लगे। ब्राह्मणों को भयभीत कर उनसे धन छीनने लगे। क्रोध में उन्होंने भृगुवंशीय ब्राह्मणों का अपमान भी किया। उनकी हत्या करने लगे। भृगुवंशियों के गर्भस्थ बालकों की भी हत्या करते हुए क्रोधान्ध क्षत्रिय सारी पृथ्वी पर विचरने लगे। इस प्रकार से भृगुवंशियों का उच्छेद आरंभ होने पर भृगुवंशियों की पत्नियाँ उस समय भय के मारे हिमालय की दुर्गम कंदराओं में जा छिपीं। उनमें से एक स्त्री ने अपने महान् तेजस्वी गर्भ को भय के मारे अपनी एक ओर की जांघ को चीरकर उसमें रख लिया। उस बामोरु ने अपने पति के वंश की वृद्धि के लिए ऐसा साहस किया था। उस गर्भ का समाचार जानकर एक ब्राह्मणी बहुत डर गई और उसने शीघ्र ही क्षत्रियों को इसकी सूचना दे दी। फिर तो वे क्षत्रिय वहां आए।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur MP Collection



उन्होंने देखा - वह ब्राह्मणी अपने तेज से प्रकाशित हो रही है। उसी समय उस ब्राह्मणी का वह गर्भस्थ शिशु उसकी जांघ फाड़कर बाहर निकल आया। बाहर निकलते ही दोपहर के प्रचण्ड सूर्य की भांति उस तेजस्वी शिशु ने अपने तेज से उन क्षत्रियों की आंखों की ज्योति छीन ली। वे साधु शिरोमणी और अपनी माता का उरुभेदन करके उत्पन्न हुए थे। उसी कारण लोक में उनकी और नाम से ख्याति हुई। (आदि १७७)

अनेनैव च विख्यातो नाम्ना लोकेषु सत्तमः।

स और इति विप्रर्षिरुरुं भित्वा व्यजायत ॥ (आदि १७८।८)

और के जन्म की यह कथा तो महाभारत के आदि पर्व में है। अन्य धर्मग्रंथों में और के जन्म संबंध में भिन्न ही कथा वर्णित है। मत्स्य पुराण में और के जन्म के संबंध में निम्न प्रकार से वर्णन है।

प्राचीनकाल में महर्षि उर्व जो अतिशय तेजस्वी तथा गुणों में ब्रह्म के समान थे, घोर तपस्या कर रहे थे। तपस्या से अव्यय लोक की प्राप्ति करने वाले उन महामुनि उर्व के समीप देवर्षि एवं महर्षिगण पहुंचे। ऋषियों ने कहा - भगवन्! ऋषियों के वंश में यह पद विनष्ट हो रहा है। इसका मूल ही नष्ट हो रहा है। उसमें तुम एक मात्र संतान थे, तुम्हारे भी कोई संतति नहीं हैं, जो गोत्र की अभिवृद्धि कर सके और तुम भी ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार कर क्लेश सहन करते हुए तपस्या कर रहे हो। इस प्रकार मूल के उच्छिन्न हो जाने पर पुत्र उत्पत्ति का कोई कारण शेष दिखायी नहीं पड़ता। आप तो तपस्या के प्रभाव से अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त कर प्रजापति के समान तेजस्वी एवं प्रभावशाली हो गए हैं। अतः अपने इस शरीर से वंशवृद्धि के लिए भी कोई उपाय कीजिए और अपने प्रभाव से वंश की वृद्धि कीजिए। मुनियों के इस प्रकार कहने पर उर्व के मर्मस्थल में आघात हुआ उन्होंने उन ऋषियों से कहा - मुनियों के लिए जिस प्रकार धर्म का विधान बनाया गया है। वह कभी नष्ट होने वाला नहीं है। ब्रह्मचर्य ब्रह्मा







को भी विचलित कर सकता है। ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है। उर्व ने कहा कि - संतानोत्पत्ति के लिए विवाह आवश्यक नहीं है। मैं अपनी तपस्या एवं ब्रह्मचर्य के बल पर मानसपुत्र की सृष्टि करूंगा। ऐसा कहकर उर्व ऋषि तपस्या के आवेश से मुक्त हो, अपने उरु (जंघा) भाग को अग्नि में प्रविष्ट कर एक कुशा से अरणि की भांति मंथन किया। जिससे शीघ्र ही उनके उरु का भेदन कर ज्वाला से युक्त, इंधन रहित, जगत के विध्वंस के लिए इच्छुक अग्नि रूपी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उर्व के उरु को फाड़कर और्व नामक जगत् का विनाशक, तीनों लोकों को भष्मसात् करते हुए की भांति उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होते ही - तात, मैं भूख से पीड़ित हूँ, जगत में मुझे भोजन करने की आज्ञा प्रदान कीजिए। ऐसा कहकर वह अपनी लपटों से दसों दिशाओं में बढ़ने लगा। इस पर ब्रह्माजी ने उर्व की प्रशंसा की और कहा - महर्षे । अपने पुत्र को रोको। मैं तुम्हारे पुत्र के निवासार्थ उत्तम स्थान का प्रबंध कर दूंगा तथा भोजन का भी प्रबंध करूंगा। यह कहकर ब्रह्मा ने कहा - विप्र ! समुद्र में निवास करने वाली बड़वा के मुख में तुम्हारे इस पुत्र का निवास होगा और जलमय दवि उसका भोजन होगा। ऐसा सुनकर और्व नामक वह अग्नि सुखपूर्वक समुद्र में प्रविष्ट हुआ।

इस प्रकार महाभारत एवं मत्स्य पुराण की कथा में अत्यंत भिन्न वर्णन है। मत्स्य पुराण में और्व को अग्नि रूप में वर्णित किया गया है, जबकि महाभारत में उन्हें महर्षि कहा गया है।

इसका वैज्ञानिक तथ्य यह हो सकता है कि - प्राचीन समय में जिसकी कोई संतान नहीं होती थी वह मन से किसी मनुष्य या किसी तेजमय, बलशाली या प्रसिद्ध वस्तु को, अथवा किसी अपने नए सृजन को ही अपना मानस पुत्र स्वीकार कर लेता था।







आधुनिक काल में भी गोद लेने की प्रथा प्रचलित है। आज भी वे मनुष्य जिनकी कोई संतान नहीं होती है। वे किसी शिशु, अथवा मंदिर, वृक्ष, गांव इत्यादि वस्तु को भी गोद लेकर उसका संतान की तरह ही पालन पोषण करते हैं।

### अष्टावक्र मुनि की जन्म कथा :-

महर्षि एदालक का "कहोड़" नाम से विख्यात एक शिष्य था। उदालक ने अपनी पुत्री सुजाता का विवाह उससे कर दिया। कहोड़ मुनि की पत्नी सुजाता गर्भवती हुई। उसका गर्भ अग्नि के समान तेजस्वी था। एक दिन स्वाध्याय में लगे हुए अपने पिता कहोड़ मुनि से उस गर्भस्थ बालक ने कहा - पिताजी ! आप रात भर वेद पाठ करते हैं, तो भी आपका वह अध्ययन अच्छी प्रकार से शुद्ध उच्चारणपूर्वक नहीं हो पाता। शिष्यों के बीच में बैठे हुए महर्षि कहोड़ इस प्रकार उलाहना सुनकर अपमान का अनुभव करते हुए कुपित हो उठे और उस गर्भस्थ बालक को शाप देते हुए बोले - अरे ! तू अभी से पेट में रहकर ऐसी टेढ़ी बातें बोलता है, अतः तू आठों अंगों से टेढ़ा हो जाएगा। - तत्पश्चात् जन्म लेने पर उस शाप के अनुसार वे महर्षि आठों अंगों से टेढ़े होकर पैदा हुए इसलिए अष्टवक्र नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई। (वन पर्व १३२।१०, १२)

स वै तथा वक्र एमाभ्यजाय दष्टावक्रः प्रथितो वै महर्षिः । (वन १३२।१२)

उक्त कथा महाभारत में वर्णित है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में तो भिन्न ही कथा है जो कि निम्न है -

मुनि श्रेष्ठ असित के तपस्या के उपरान्त शिव के अंश से देवल नामक पुत्र हुआ। राजा सुयज्ञ की रत्नमालावल्ली नामक कन्या से देवल का विवाह हुआ। एक समय देवल संसार से विरक्त हो पत्नी को सोता हुआ छोड़कर गंधमादन पर्वत की







गुफा में तपस्या करने चले गये। पति विरह में उनकी पत्नी ने प्राण त्याग दिया। जब मुनि देवल गंधमादन में तपस्या कर रहे थे, उसी समय रम्भा नामक अप्सरा ने उन्हें देखा। रम्भा ने मुनि से प्रणय निवेदन किया। परन्तु मुनि ने उसे स्वीकार नहीं किया। इससे अप्सरा क्रुद्ध हो गयी और कहा - मुनिश्रेष्ठ ! यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगी। अंतरात्मा के दुःख से दुःखी होकर जो किसी को शाप देता है उसके शाप का खण्डन विधाता भी नहीं कर सकता। इस पर भी देवल ने ध्यान नहीं दिया। तब रम्भा ने उसे यह शाप दिया - हे, कुटिल चित्त वाले विप्र ! तुम्हारी यह देह समस्त अंगों से टेढ़ी, अंजन के समान काली और रूप यौवन से रहित हो जाए। तुम्हारा आकार अत्यंत विकृत तथा तीनों लोकों में अतिनिन्दित हो जाए और तुम्हारा किया हुआ तप निश्चित ही तुरन्त नष्ट हो जाए। इस प्रकार के शाप से विचलित हो मुनि प्राण त्याग करने को उद्धत हो गए। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें वर दिया तथा दिव्य ज्ञान से प्रबोधित किया। उनका नामकरण अष्टावक्र किया। इसके बाद देवल यानी अष्टावक्र ने मलयाचल की घाटी में साठ सहस्र वर्षों तक तप किया और अंत में मोक्ष प्राप्त किया। (ब्रह्म पुराण प्रथम भाग १८ वां)

### श्रुतावती की जन्म कथा :-

एक दिन विशाल नेत्रों वाली धृताची अप्सरा कहीं से आ रही थी। उसे देखकर महात्मा महर्षि भारद्वाज का वीर्य स्खलित हो गया। जप करने वालों में श्रेष्ठ मुनि ने उस वीर्य को अपने हाथ में ले लिया, परन्तु वह तत्काल ही एक पत्ते के दोने में गिर पड़ा, वहीं वह कन्या प्रकट हो गई। तपस्या के धनी धर्मात्मा महामुनि भारद्वाज ने उसके जातकर्म आदि सब संस्कार को करके देवर्षियों की सभा में उसका नाम श्रुतावती रख दिया। फिर से उस कन्या को आश्रम में रखकर हिमालय के जंगल में चले गये। (शल्य ४८।६६)







### सोमश्रवा की जन्म कथा :-

सोमश्रवा श्रुतश्रवा ऋषि के पुत्र थे। वे सदा तपस्या में ही लगे रहते थे। एक बार देवताओं की कुतिया सरमा के श्राप से ग्रस्त परीक्षित पुत्र जनमेजय उस शाप रूप पापकृत्या को शांत करने हेतु अपने योग्य पुरोहित की खोज कर रहे थे। जब वे वन में पहुंचे तो श्रुतश्रवा का आश्रम देखा। जनमेजय ने महर्षि श्रुतश्रवा के पास जाकर उनके पुत्र सोमश्रवा को पुरोहित पद के लिए वरण किया। राजा ने पहले महर्षि को नमस्कार करके कहा - भगवन्। आपके ये पुत्र सोमश्रवा मेरे पुरोहित हैं।

उनके ऐसा कहने पर श्रुतश्रवा ने जनमेजय को इस प्रकार उत्तर दिया - महाराज। मेरा पुत्र सोमश्रवा सर्पिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। यह बड़ा ही तपस्वी और स्वाध्यायशील है। मेरे तपोबल से इसका भरण पोषण हुआ है। एक समय एक सर्पिणी ने मेरा वीर्यपान कर लिया था, अतः उसी के पेट से इसका जन्म हुआ। यह तुम्हारी पापकृत्याओं (शाषजनित उपद्रवों) का निवारण करने में समर्थ है। केवल भगवान शंकर की कृत्या को नहीं टाल सकता। किंतु इसका एक गुप्तनियम है। यदि कोई ब्राह्मण इसके पास आकर किसी वस्तु की याचना करेगा तो यह उसे उसकी अभीष्ट वस्तु अवश्य देगा। यदि तुम उदारतापूर्वक इसके इस व्यवहार को सहन कर सकते हो अथवा इसकी इच्छापूर्ति का उत्साह दिखा सको तो ले जाओ। श्रुतश्रवा के ऐसा कहने पर जन्मेजय ने उत्तर दिया - भगवन् सब कुछ उनकी रुचि के अनुसार ही होगा। फिर वे सोमश्रवा पुरोहित को साथ लेकर लौटे तथा अपने भाइयों सहित प्रत्येक आज्ञा एवं इच्छा का यथावत पालन करने लगे।

### ऋष्यशृंग मुनि की जन्म कथा :-

ऋष्यशृंग मुनि का जन्म एक मृगी के गर्भ से हुआ था। कश्यपगोत्रीय विभाण्डक मुनि का अंतःकरण तपस्या से पवित्र हो गया था। वे प्रजापति के समान तेजस्वी अमोद वीर्य महात्मा थे। विभाण्डक मुनि देवताओं के समान सुंदर थे। वे एक







बहुत बड़े कुण्ड में प्रविष्ट होकर तपस्या करने लगे। उन्होंने दीर्घकाल तक महान् क्लेश सहन किया। एक दिन जब वे जल में स्नान कर रहे थे, उर्वशी अप्सरा को देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया। उसी समय प्यास से व्याकुल हुई एक मृगी वहां आयी और पानी के साथ उस वीर्य को भी पी गई। महात्मा विभाण्डक अमोदवीर्य तो थे ही, इससे उस मृगी को गर्भ रह गया। वह पूर्व जन्म में एक देवकन्या थी। लोकस्त्रष्टा ब्रह्मा ने उसे यह वचन दिया था कि - तू मृगी होकर एक मुनि को जन्म देने के पश्चात् उस योनि से मुक्त हो जायेगी। ब्रह्माजी की वाणी अमोद है और देव के विधान को कोई टाल नहीं सकता, इसलिये विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग मुनि का जन्म मृगी के पेट से ही हुआ। उन महात्मा मुनि के लिसर पर एक सींग था। इसलिये उस समय उनका नाम ऋष्यश्रृंग प्रसिद्ध हुआ। (वन पर्व ११०।३२)

### पञ्चशिख मुनि की जन्म कथा :-

कपिला के पुत्र महामुनि पञ्चशिख सारी पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए मिथिला जा पहुंचे। वे संपूर्ण सन्यास धर्मों के ज्ञाता और तत्त्वज्ञान के निर्णय में एक सुनिश्चित सिद्धांत के पोषक थे। उनके मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं था। वे निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे।

उन्हें ऋषियों में अद्वितीय बताया जाता है। वे कामना से सर्वथा शून्य थे। वे मनुष्यों के हृदय में अपने उपदेशों द्वारा अत्यंत दुर्लभ सनातन सुख की स्थापना करना चाहते थे। सांख्य के विद्वान तो उन्हें साक्षात् प्रजापति महर्षि कपिल की ही रूप बताते हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानों सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिख के रूप में आकर लोगों को आश्चर्य में डाल रहे हैं। उन्हें आसुरित मुनि का प्रथम शिष्य और चिरंजीवी बताया जाता है। उन्होंने एक हजार वर्षों तक मानस यज्ञ का अनुष्ठान किया था।







एक समय आसुरि मुनि अपने आश्रम में बैठे हुए थे, इसी समय कपिल मतावलंबी मुनियों का महान्न समुदाय वहां आया और प्रत्येक पुरुष के भीतर स्थित, अव्यक्त एवं परामार्थ तत्व के विषय में उनसे कुछ कहने का अनुरोध करने लगा। उन्हीं में पञ्चशिख भी थे, जो पांच स्रोतों वाले मन में व्यापार (ऊहापोंह) में कुशल थे, पंचरात्र आगम के विशेषज्ञ थे, पंच कोशों के ज्ञात थे और तद्विषयक पांच प्रकार की उपासनाओं के जानकार थे। दम, राम, उपरति, तितिक्षा और समाधान - इन पांच गुणों से भी युक्त थे। उन पांचों कोशों से भिन्न होने के कारण उनके शिखा स्थानीय जो ब्रह्म है। वह पञ्चशिख कहा गया है (उनके ज्ञाता होने से ऋषि को भी पञ्चशिख माना गया है।

आसुरि तपोबल से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर चुके थे। ज्ञान यज्ञ के द्वारा सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को स्पष्ट रूप से समझ लिया था। जो एक मात्र अक्षर अविनाशी ब्रह्म नाना रूपों में दिखायी देता है, उसका ज्ञान आसुरि मुनि ने उस मुनिमण्डल में प्रतिपादित किया। उन्हीं के शिष्य पञ्चशिख थे।

### जन्म कथा :-

पञ्चशिख मानवी स्त्री के दूध से पले थे। कपिला नाम वाली कोई कुटुम्बिनी ब्राह्मणी थी। उसी स्त्री के पुत्रभाव को प्राप्त होकर वे उसके स्तनों का दूध पीते थे। अतः कपिला का पुत्र कहलाने के कारण कापिलेय नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई। उन्हें नैष्ठिक (ब्रह्म में निष्ठा रखने वाली) बुद्धि प्राप्त थी।

धर्मज्ञ पञ्चशिख ने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। वे राजा जनक को सौ आचार्यों पर समान रूप से अनुक्त जान उनके दरबार में गये और वहां अपने युक्तियुक्त वचनों द्वारा उन सब आचार्यों को मोहित कर दिया। उस समय राजा जनक कपिलानन्दन







पञ्चशिख का ज्ञान देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो गये और अपने सौ आचार्यों को छोड़कर उन्हीं के पीछे चलने लगे। तब मुनिवर पञ्चशिख अधिकारी मानकर परममोक्ष का उपदेश दिया, जिसका सांख्यशास्त्र में वर्णन है।

उन्होंने जातिनिर्वेद का वर्णन करके कर्म निर्वेद का उपदेश दिया तत्पश्चात् सर्वनिर्वेद की बात बतायी। (शांति २१८।२९)

## (२) सृष्टि का आरंभ :-

### भगवान् का विराट रूप तथा सृष्टि क्रम :-

मुण्डकोपनिषद् में शिष्य गुरु से भगवान का विराट रूप एवं सृष्टिक्रम के विषय में पूछा? गुरु ने कहा - कि परब्रह्म परमेश्वर का यह स्वरूप विराट् एवं अद्भुत है। इस विराट् स्वरूप का अग्नि अर्थात् द्युलोक ही मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं समस्त दिशाएं कान हैं, नाना छन्द और ऋचाओं के रूप में विस्तृत चारों वेद वाणी है, वायु प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है पृथ्वी मानो उसका पैर है। ये परब्रह्म परमेश्वर ही समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा है।

परब्रह्म पुरुषोत्तम ने सर्वप्रथम अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा अद्भुत अग्नितत्त्व को उत्पन्न किया जिसकी समिधा ईधन सूर्य देव हैं, अर्थात् जो सूर्य के रूप में प्रज्वलित रहती है। अग्नि से ही चंद्रमा का उद्भाव हुआ। चंद्रमा से मेघ की उत्पत्ति हुई। मेघों से वर्षा द्वारा पृथ्वी में नाना प्रकार की आषधियाँ उत्पन्न की गयीं।

इन औषधियों के भक्षणा से उत्पन्न हुये वीर्य को जब पुरुष अपनी जाति की स्त्री में सिंचन करता है तब उससे संतान की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा की कृपा से नाना प्रकार के चराचर प्राणियों का जन्म हुआ।







अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यो दिशः श्रोत्रेताग् विवृताश्च वेदाः ।

वायु प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥

(मु.उप. २।१, ५-५)

श्वेताश्वतरोपनिषद् में शिष्य-गुरु से भगवान् के विराट् स्वरूप एवं सृष्टि क्रम के विषय में पूछते हैं? गुरु महर्षि बतलाते हैं कि जगन्नियन्ता जगदाधार परमेश्वर से उत्पन्न यह संपूर्ण जगत् सभी अवस्थाओं में एक साथ है। वह परमेश्वर काल के भी महाकाल हैं, वे ज्ञान स्वरूप चित्रमय परमात्मा दिव्य गुणों से सम्पन्न है, जो समस्त ब्राह्मणों को नियमपूर्वक चलाते हैं, एवं जल पृथ्वी तेज, आकाश एवं वायु इन पाँच महाभूतों पर शासन करते हुये उनसे नियमपूर्वक कार्य करवाते हैं।

संपूर्ण जगत् परमात्मा की एक अंश शक्ति को प्राप्त करके क्रिया करता है। उनकी शक्ति के बिना ये संपूर्ण महाभूत कुछ भी नहीं कर सकते। इस रहस्य को जो व्यक्ति जान लेता है वह भक्ति भाव से परमात्मा चिंतन करता है।

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।

तेनेशितं कर्म विर्तते ह पृथ्व्यप्तेजाऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥

(श्वेता०उप० ६-६-२)

वराह पुराण में भगवान् के विराट् रूप तथा सृष्टि क्रम के विषय में कहा गया है कि ब्रह्माजी ने जल की सृष्टि करके उसमें जब शयन कर रहे थे तब नारायण का दर्शन किया। उनकी आकृति मात्र अंगूठे के बराबर थी। इस प्रकार सृष्टि की प्रथम उत्पत्ति जल से ही मानी गयी है। (वराह पुराण अ० ७३)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् के विराट् स्वरूप के विषय में कहा है कि परब्रह्म परमात्मा के अनेक मुख तथा नेत्र हैं। वे दिव्य अलंङ्कारों से युक्त एवं अनेक आयुधों को हाथों से धारण करते हैं। दिव्य चंदन का लेप किये हुये आश्चर्यमय अनन्तरूप वाले हैं







उनके दिव्य शरीर में संपूर्ण देवताओं, प्राणियों ब्रह्मा महादेव तथा संपूर्ण ऋषियों और सर्पों का निवास उन परमात्मा का आदि है, और न अन्त ही है। वे सदैव सर्वत्र एक समान है वे परमेश्वर जगत् के आश्रय धर्म के रक्षक था अविनाशी सनातन पुरुष हैं।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनतम् ।

सर्वाश्चर्यमयं देवमन्नतं विश्वतोमुखम् ॥ (भ०गी० ११।११)

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भगवान के विराट् स्वरूप एवं सृष्टि के विषय में कहा है कि परब्रह्म परमात्मा सृष्टि के समय दो रूपों में प्रकट होते हैं जिसे प्रकृति और पुरुष कहा गया है। जिसका दाहिना अङ्ग पुरुष एवं आधा बाया अङ्ग प्रकृति कहलाती है।

वही प्रकृति ब्रह्म स्वरूपा, नित्य और सनातनी माया है। परब्रह्म परमात्मा के सभी अनुपम गुण इस प्रकृति में समाहित हैं जिस प्रकार अग्नि में दाहिका शक्ति सदैव रहती है इसी प्रकार परमत्यागी पुरुष स्त्री और पुरुष में भेद नहीं हैं। (ब्रह्मवैवर्त पुराण, अ० १)

समराङ्गण सूत्रधार में भगवान् के विराट् रूप एवं सृष्टि की रचना के विषय में महाराज विश्वकर्मा बतलाते हैं कि प्रलयकाल में भगवान् विष्णु समस्त ब्रह्माण्ड को अपने उदर में रखकर महान् जलराशि में शयन किये हुये थे। उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई एवं कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये।

समराङ्गण सूत्रधार में विश्वकर्मा जी बतलाते हैं कि जल की उत्पत्ति के साथ ही सागरों, द्वीपों, पर्वतों आदि का विभाग प्रभञ्जन मुनि ने किया।

महाराज विश्वकर्मा मेघ की ध्वनि के समान गंभीर वाणी में बोले कि जिस प्रकार सूर्य के उदय हो जाने पर कमल खिल जाता है, उसी प्रकार वास्तुशास्त्र के विषय में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है।







जब समस्त विश्व अंधकार से आच्छादित था तब भगवान् विष्णु ने समस्त जगत् को अपने उदर में धारण कर लिया था।

जब ब्रह्मा जी ने प्रजा की सृष्टि के प्रति अपना ध्यान किया तो सर्वप्रथम महान् की सृष्टि की महत् से अहंकार, सात्विक विहार से मन, राजस से इन्द्रियाँ और तामस से तन्मात्रायें उत्पन्न हुई। तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों का आविर्भाव हुआ।

सगुण महाभूतों की उत्पत्ति करके महाप्रभु ब्रह्माजी ने गन्धर्वों, राजसों, पन्नगों, नागों, मुनियों और अप्सराओं को मन से उत्पन्न किया। सूर्य, चन्द्रमा, ताराग्रह, पर्वतो, नदियाँ आदि की उत्पत्ति करके पृथ्वी के नीचे कौरव नरकों का स्थान बनाया। महाप्रभु ने जरायुज, अंडज, उद्भिज्ज, संवेदज इन चार विभागों से चार प्रकार की सृष्टि की। (समराङ्गण सूत्रधार श्लोक १।१३, १।१५)

अथर्ववेद में विराट् पुरुष व सृष्टि के विषय में कहा है कि सहस्त्रों भुजाओं वाले, सहस्त्रों नेत्रों वाले और सहस्त्रों चरणों वाले विराट् पुरुष हैं। वे संपूर्ण पृथ्वी को लाँघने के बाद भी दस अंगुल शेष ही रहते हैं। सृष्टि बनाने वाले ये विराट् पुरुष ही हैं। जीव एवं जगत के स्वामी भी वही हैं, जो अन्न द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी है। (अथर्ववेद, १९।६।१, ४)

ऋग्वेद में कहा गया है कि अधिष्ठाता परम-पुरुष परमात्मा ने अपनी विराट् शक्ति के द्वारा सृष्टि को उत्पन्न किया फिर उसमें मूल तत्त्व प्रकट किया उससे भूमि आदि पिण्डों को विभाजित करके प्राणियों की उत्पत्ति हुई। (ऋ०स० १०।१०।५)

ऐतरेयोपनिषद् में भगवान् के विराट् रूप तथा सृष्टि क्रम के विषय में शिष्य गरु के कथनानुसार अपने को ढालते हुये परमात्मा से कहते हैं कि मैं जिस प्रकार देखूँ, सुनूँ उसी तरह अपनी वाणी और मन में स्थिर करूँ।







इस प्रकार शिष्य आत्मचिंतन करते हुये कहते हैं कि सृष्टिकर्ता परमात्मा की आज्ञा से अग्नि ने वाक् इन्द्रिय का रूप धारण किया एवं मनुष्य शरीर के मुख में प्रविष्ट होकर जिह्वा को अपना आश्रय स्थान बनाया। वरुण देवता रसना में वायुदेवता प्राणों में स्थित होकर नासिका के छिद्रों में अश्विन कुमार भी प्राण इन्द्रिय को धारण करके नासिका में प्रविष्ट हुये। सूर्य देवता आँखों में दिशाभिमानी देवता श्रोत्रोन्द्रिय बनकर दोनों कानों में प्रविष्ट हुये औषधि और वनस्पतियों के देवता रोम बनकर चमड़ी में और चन्द्रमा मन का रूप धारण करके हृदय में जल के अधिष्ठाता देवता वीर्य बनकर लिङ्ग में प्रविष्ट हो गये।

इस प्रकार समस्त प्राणियों के शरीर में भगवान का अपना विराट् रूप स्थित है। (ऐ०उप० १।२।४)

महाभारत के भीष्मपर्व में भगवान् का विराट् रूप तथा सृष्टि क्रम के विषय में रूप में महर्षि व्यास जी बतलाते हैं कि भगवान् सर्वभूतमय हैं, और सबके हृदय में उनका निवास पुरुषोत्तम रूप में है। सृष्टि के आरंभ में इन्हीं परमात्मा ने जल वायु और तेज इन तीनों भूतों तथा सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति की थी।

परमात्मा के मुख से अग्नि, प्राण से वायु की तथा मन से सरस्वती देवी एवं वेदों की उत्पत्ति हुई। जगत्प्रजापति को भी इन्होंने ही उत्पन्न किया है। (म०भा० भीष्मपर्व अ० ६७।३. १।२, ६।९, १०)

ब्रह्मसूत्र में कहा गया है कि परमेश्वर निखिल लोकां में सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, जगदाधार एवं विराट् रूप में व्याप्त है वे परमेश्वर समस्त भूतों के आदि कारण हैं। (ब्र०सू० १।२।२४)







महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि अग्नि जिसका मुख, द्युलोक मस्तक, आकाश, नाभि, पृथ्वी दोनों चरण सूर्य नेत्र तथा दिशाएँ कान हैं, यही परमात्मा का विराट् स्वरूप है। (म०भा० शांतिपर्व अ० ४७।७०)

छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् के विराट् रूप एवं सृष्टिक्रम के विषय में आरुणि पुत्र श्वेतकेतु को कहा है कि अण्डज जीवज और उद्भिज्ज इन तीनों से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

जीव से जरायुज एवं पशु आदि तथा उद्भिज्ज जो पृथ्वी की ओर भेदन करता है, उसे स्थावर कहा गया है। जीवात्मा प्राण को धारण करने वाले आत्मा के द्वारा अर्थात् चैतन्य स्वरूप तेज, जल एवं अन्न इन सभी भूतमात्राओं के संसर्ग से विशेष विज्ञान को प्राप्त करता है।

जीव तो देवता का आभास मात्र है, जो दर्पण में प्रविष्ट हुये प्रतिबिम्ब के समान तथा जल आदि में सूर्य के आभास मात्र से बुद्धि आदि भूत मात्राओं से उत्पन्न हुआ है।

जिस प्रकार संपूर्ण लोक का चक्षुरूप सूर्य चक्षु द्वारा लिप्त नहीं होता उसी प्रकार समस्त प्राणियों का एक ही अन्तरात्मा लौकिक सुखों एवं दुःखों से लिप्त नहीं होता एवं वह आकाश के समान स्थिर सर्वत्र व्याप्त एवं नित्य है।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकाकरोद्यथा तु खलु सोम्येमस्तिषो  
देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥

(छा०उप०अ० ६।३, १।४)

महोपनिषद् में भगवान् का विराट् रूप एवं सृष्टिक्रम के विषय में कहा है कि सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व एकमात्र नारायण थे उस समय ब्रह्मा रुद्र जल अग्नि एवं सोम, द्युलोक, भूलोक, नक्षत्र सूर्य एवं चन्द्रमा कोई भी नहीं था।







उन भगवान् नारायण से ही दस इन्द्रिय मन अहङ्कर प्राण तथा आत्मा एवं बुद्धि का जन्म हुआ। पाँच सूक्ष्म भूतरूपी तन्मात्रायें पाँच महाभूत इस प्रकार पच्चीस तत्त्वों का एक विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ।

नारायण ने ध्यान के द्वारा तीन नेत्रों वाले पुरुष यश, सत्य ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, स्वाधीन मन, ऐश्वर्य और प्रणव के साथ व्याहृतियाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं समस्त छन्द समाहित थे, अन्तःस्थः ध्यान से ललाट से परसीना गिरा, परसीने से जल की उत्पत्ति हुई, उस जल से हिरण्यमान तेज के रूप में अण्ड उत्पन्न हुआ इससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

पूर्व से भूः व्याहुति, गायत्री छन्द ऋग्वेद एवं अग्नि देवता का ध्यान किया। पश्चिम की ओर मुख करने से भुवः व्याहुति त्रिष्टुप् छन्द यजुर्वेद एवं वायु का ध्यान किया। उत्तर की ओर मुख करने से स्वः व्याहुति जगती छन्द सामवेद एवं सूर्य देवता का ध्यान किया। दक्षिण में महः व्याहुति अनुष्टुप् छन्द अथर्ववेद सोम देवता है। (महोपनिषद् अ० १।१)

ईश्वरगीता के अनुसार सनत्कुमार आदि ने देखा कि भगवान् शिव का विराट् स्वरूप सहस्रों शिर वाला, हजारों चरणों की आकृतियों से युक्त तथा हजारों बाहुओं से सुशोभित और जटायुक्त तथा उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था। वे बाघम्बर ओढ़े हुये तथा त्रिशूल एवं दण्ड लिये हुये थे, वे सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि रूपी त्रिनेत्र-युक्त तथा अपने तेज से संपूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृत करके अधिष्ठित, कराल और द्रष्टा वाले, दुर्धर्ष करोड़ों सूर्य की आभा से युक्त, भूख से अग्नि की ज्वाला निकालते हुये, विश्व को भस्म करते हुये नृत्य कर रहे थे। (ई०गी० ५।८, ११)

गणेश गीता में राजा वरेण्य के द्वारा भगवान् के मनोहर और व्यापक रूप को

देखने की इच्छा प्रकट करने पर भगवान् गणेश जी ने कहा - मैं अपने प्रभाव से तुमको







ज्ञाननेत्र देता हूँ क्योंकि तुम मुझे सर्वव्यापक, अज एवं अव्यय को चर्मचक्षु से नहीं देख सकते। तत्पश्चात् जो विराट् स्वरूप भगवान् गणेश जी ने उन्हें दिखाया उसमें असंख्य शोभायमान मुख, असंख्य हाथ तथा असंख्य नेत्र थे। वह सुगन्धि से लित, दिव्य आभूषण, वस्त्र और माला से सुशोभित, करोड़ों सूर्य की किरणों के समान प्रकाशित, आयुध धारण किये हुये था। (ग०गी० ८।२, ४)

ज्योतिष पराशर होराशास्त्र में भगवान् का विराट् रूप तथा सृष्टिक्रम के विषय में कहा गया है कि विराट्, अव्यक्त, परात्पर, निर्गुण अजर अमर निर्विकार रहते हैं, सर्वप्रथम जल से सृष्टि करके निर्माण हुआ है, संकर्षण से महत्त्व (बुद्धि) प्रद्युम्न से अहंकार तथा अनुरुद्ध से स्वयं ब्रह्मा का शरीर उत्पन्न हुआ है।

### (३) विभिन्न ऋषियों की वंशावली :-

महाभारत में इस विषय में अत्यंत संक्षिप्त वर्णन है। जो भी वर्णन है वह भी बिखरा हुआ है। जिसे संकलित करना कठिन कार्य है। फिर भी प्रयास किया गया है कि ऋषियों के फैलू हुए वंशानुक्रम को क्रमशः एक गोत्र प्रवर ऋषि के वंशक्रम के अनुसार प्रत्येक गोत्र प्रवर ऋषि के वंश वर्णन का संकलन किया जा सके। इसमें हम निम्नलिखित गोत्र प्रवर्तक ऋषियों के वंशानुक्रम का वर्णन करेंगे।

#### भृगु वंश -

भगवान् भृगु ब्रम्हाजी के हृदय का भेदन करके प्रकट हुये थे। भृगु के विद्वान पुत्र कवि हुए और कवि के पुत्र शुक्राचार्य हुए जो ग्रह होकर तीनों लोकों के जीवन की रक्षा के लिए वृष्टि, अनावृष्टि तथा भय और अभय उत्पन्न करते हैं। स्वयंभू ब्रह्माजी के प्रेरणा से वे समस्त लोकों का चक्र लगाते हैं।



सर्वे भूतानि हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।

तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।

### — शिवायै नमः (६)

तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।

### — शिवायै नमः

तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।  
 तेषां हि मां भूयः शरणं कर्तव्यं ।



बुद्धिमान शुक्र ही योग के आचार्य और दैत्यों के गुरु हुए। वे ही योगबल से मेघावी, ब्रह्मचारी एवं व्रतपरायण बृहस्पति के रूप में प्रकट होकर देवताओं के भी गुरु हुये।

ब्रह्माजी ने जब भृगु पुत्र शुक्र को जगत् के योगक्षेम के कार्य में नियुक्ति कर दिया तब महर्षि भृगु ने एकूसरे निर्दोष पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम था च्यवन।

महर्षि च्यवन की तपस्या सदा उद्योत रहती है। वे धर्मात्मा और यशस्वी हैं। वे अपनी माता को संकट से बचाने के लिये रोषपूर्वक गर्भ से च्युत हो गए थे इसीलिये च्यवन कहलाए।

मनु की पुत्री आरुणी मनीषी च्यवन उरु को फाड़कर प्रकट हुए थे। इसलिए और्व कहलाये। वे महान् तेजस्वी तथा अत्यंत शक्तिशाली थे। बचपन में ही अनेक सदगुण उनकी शोभा बढ़ाने लगे। और्व के पुत्र ऋचीक तथा ऋचीक के पुत्र जमदग्नि हुए।

महात्मा जमदग्नि के पाँच पुत्र थे, जिनमें परशुराम जी सबसे छोटे थे, किन्तु उनके गुण छोटे नहीं थे। वे श्रेष्ठ सदगुणों से सुशोभित थे, संपूर्ण शस्त्र विद्या में कुशल, क्षत्रिय कुल का संहार करने वाले तथा जितेन्द्रिय थे।

और्व मुनि के जमदग्नि आदि सौ पुत्र थे फिर उनके भी सहस्रों पुत्र हुए। इस प्रकार पृथ्वी पर भृगुवंश का विस्तार हुआ। (आदि पर्व ६६।४९)

**महर्षि वसिष्ठ की वंश परंपरा :-**

महर्षि वसिष्ठ स्वयं ब्रह्मापुत्र थे। उनके सौ पुत्र हुए। शक्ति उनमें सबसे बड़े थे। वे ही वसिष्ठ की वंश परंपरा की वृद्धि करने वाले थे। शक्ति के पुत्र पराशर हुए जो







अपने पिता शक्ति के मृत्योपरांत उत्पन्न हुए थे। पराशर के पुत्र महर्षि महामना व्यास हुए। व्यास के पुत्र महर्षि शुक हुए। इस प्रकार महर्षि वसिष्ठ की वंश परंपरा का विस्तार हुआ। (वन २१७।३०)

### महर्षि गृत्समद की वंशावली :-

गृत्समद के पुत्र सुचेता हुए। सुचेता के पुत्र वर्चा और वर्चा के पुत्र विहव्य हुए। विहव्य के पुत्र का नाम वितस्य था। वितस्य के पुत्र का नाम सत्य और सत्य के पुत्र का नाम संत था। संत के पुत्र महर्षि श्रवा हुए। श्रवा के पुत्र तम और तम के पुत्र प्रकाश। प्रकाश के पुत्र का नाम वागीन्द्र था। वागीन्द्र के पुत्र प्रमिति हुए। (अनु ३०।१२)

### मत्स्य पुराण में प्राप्त विभिन्न ऋषियों की वंश परम्परा :-

प्राचीन काल में महादेव के शाप से स्वयमेव अपने-अपने शरीरों को त्याग कर ऋषिगण पुनः महात्मा ब्रह्मा के अग्नि में हवन किए गए शुक से उत्पन्न हुए हैं। प्राचीनकाल में एक के बाद देवताओं की माताओं तथा देवांगनाओं को देखकर ब्रह्मा का वीर्य क्षरण हुआ था, उसे ब्रह्मा ने अग्नि में हवन कर दिया था जिससे सर्वप्रथम महातेजस्वी तपोनिधि भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। अंगारों में अंगिरा ऋषि हुए थे, अग्नि की लपटों से अत्रि तथा किरणों से महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए थे। केशों के कपिश वर्ण के महातपस्वी पुलस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। लटकते हुए लम्बे केशों से महातपस्वी पुलह ऋषि पैदा हुए थे। अग्नि के वसु (सार भाग) से तपोनिधि वसिष्ठ जी उत्पन्न हुए थे।

### भृगुवंश का वर्णन :-

महर्षि भृगु ने पुलोमा ऋषि की सुंदरी कन्या को, स्त्री रूप में ग्रहण किया था। उसमें भृगु के बारह यज्ञ कराने वाले देव स्वरूप पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे थे - भुवन,







भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मुर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा दक्षा ये बारहों पुत्र भृगु के नाम से पुकारे जाते हैं। तदन्तर भृगु ने पौलामी में देवताओं से कुछ अवच श्रेणी के ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। उनके नाम भाग्यशाली च्यवन तथा आप्नुवान हैं। आप्नुवान के पुत्र और्व तथा और्व के पुत्र जमदग्नि हुए। इन भृगु के समस्त पुत्रों से उत्पन्न होने वाले ऋषियों के गोत्रकर्त्ता और्व ऋषि ही कहे जाते हैं।

**भृगु के गोत्रकर्त्ता ऋषियों का वर्णन :-**

भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नहायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौकायन, जीवन्ति, आवेद, कर्षणि, वैहिनरि, विरुपाक्ष, रौहित्यायीन, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सार्वणिक, विष्णुपौर, बालकि, ऐलिक, अनन्तभगिन, मृग, मार्गेय, मार्तण्ड, जीवन, नीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक, फेनप, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कशक्षि, जालधि, सौधकि, क्षुभ्य, कुत्स, मौदगलापन, माङ्गपन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव, सांकृत्य, चातकि, सार्षि, यज्ञपिण्डायन, गार्ग्यायण, गावन, गार्हायण, गोष्ठायन, बाह्यायन, वैशाम्पायन, वैकर्णिनी, शांगविश्व, याज्ञेयि, भाष्ट्रकायणि, लालटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौनकि, कौतस, पेंगलायनि, सात्यायनि, माल्यायनि, कौटलि, कौचहस्तिक, सौह, सोक्ति, सकौवाक्षि, कौसि, चान्द्रमासि, नैकजिह्व, जिह्वक, व्याध्याड्य, लौहवैरिण, शारद्धतिक, नैतिष्य, लोलाक्षि, चलकुण्डल, वांगायनि, आनुमति, पूर्णिमागतिक तथा असकृता साधारणतः इन ऋषियों के पांच प्रवर कहे जाते हैं - भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व तथा जमदग्नि। अब इसके बाद अन्याय भृगुवंश में उत्पन्न होने वालों का वर्णन है - जमदग्नि, विद, पौलस्त्य, बैजभृत, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय तथा भारत। इसके तीन निम्नलिखित शुभ प्रवर कहे गए हैं - भृगु, च्यवन तथा आप्नुवान। इन ऋषियों के वंश में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्याणि,







कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायति, आश्वायति तथा रुपि। इनके प्रवर निम्न पांच ऋषियों के कहे गये हैं। भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आष्टिबेण तथा रुचि। इन पांचों प्रवर वालों में विवाह संबंध निषिद्ध है। यस्क, वीतिहय, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौन्ज, पिलि चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदोगपि, सौर, तिथि, गर्गीय, जावालि, पौष्णायन तथा रामोद। इन वंश वालों के ये निम्न ऋषि प्रवर कहे गये हैं। भृगु, वीतहव्य, रैवस तथा वैवस। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रोणायन, रौक्मायणि, आपिशलि, मायनि तथा हंसजिह्व। इनके निम्न ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं - भृगु, वदध्यश्व तथा दिवोदास। इनमें परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। एकायन, यक्षपति, मत्स्यगंध, प्रत्यह, सौरि, चौक्षि, कार्दमायनि, गृत्स्मद तथा महान ऋषि सनक इन वंशावालों के प्रवर निम्न दो ऋषियों के हैं - भृगु तथा गृत्समद। इन दोनों ऋषियों के वंश वालों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। यही भृगु तथा भृगुवंश में उत्पन्न महानुभाव ऋषियों के गोत्रकारों का वर्णन है। (मत्स्य पुराण १९५)

### अंगिरा के वंश का वर्णन :-

मरीचि ऋषि की सुरुपा नामक कन्या अंगिरा ऋषि की स्त्री थी, जिसके दस पुत्र देवता माने गये हैं। आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋतु तथा सत्या। ये दस अंगिरा के पुत्र सोमरस पान करने वाले देवता कहे गये हैं। इन सर्वेश्वर ऋषियों को सुरुपा ने उत्पन्न किया था। वृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज ये सभी ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं। उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजिस, साधनेमि, सलौंगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भागवत, चैरीडव, कारोहक, सजीवी, उपविन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कौसोरु,







कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायति, आश्वायति तथा रुपि। इनके प्रवर निम्न पांच ऋषियों के कहे गये हैं। भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आष्टिबेण तथा रुचि। इन पांचों प्रवर वालों में विवाह संबंध निषिद्ध है। यस्क, वीतिह्वय, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौन्ज, पिलि चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदोगपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जावालि, पौष्णायन तथा रामोद। इन वंश वालों के ये निम्न ऋषि प्रवर कहे गये हैं। भृगु, वीतहव्य, रैवस तथा वैवसा। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रोणायन, रौक्मायणि, आपिशलि, मायनि तथा हंसजिह्व। इनके निम्न ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं - भृगु, वदध्यश्व तथा दिवोदास। इनमें परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। एकायन, यक्षपति, मत्स्यगंध, प्रत्यह, सौरि, चौक्षि, कार्दमायनि, गृत्समद तथा महान ऋषि सनक। इन वंशावालों के प्रवर निम्न दो ऋषियों के हैं - भृगु तथा गृत्समद। इन दोनों ऋषियों के वंश वालों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। यही भृगु तथा भृगुवंश में उत्पन्न महानुभाव ऋषियों के गोत्रकारों का वर्णन है। (मत्स्य पुराण १९५)

### अंगिरा के वंश का वर्णन :-

मरीचि ऋषि की सुरुपा नामक कन्या अंगिरा ऋषि की स्त्री थी, जिसके दस पुत्र देवता माने गये हैं। आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋतु तथा सत्या। ये दस अंगिरा के पुत्र सोमरस पान करने वाले देवता कहे गये हैं। इन सर्वेश्वर ऋषियों को सुरुपा ने उत्पन्न किया था। वृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजरस्य, ऋषिज ये सभी ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं। उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजिस, साधनेमि, सलौंगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भागवत, चैरीडव, कारोहक, सजीवी, उपविन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कौसोरु,







कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलुप, पाण्डू, क्षण, विश्वकर, अरि तथा पारिकाररि - ये सभी ऋषि कहे जाते हैं। इनके प्रवर थे अंगिरा, सुवचोतथ्य तथा महान् ऋषि उशज इन ऋषियों के वंशवाले परस्पर विवाह संबंध नहीं करते। आत्रेयायणि, सौवच्छ्य, अग्निवेश्च, शालास्थलि, बालिशायनि, चैकेपी, वाराहि, वाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आशवालायनि, वाराहि, वर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उडुपति, कौचकि, धर्मित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवारारि, देवस्थानि, हारिकीर्ण, सरिद्भुवि, प्रातेपि, साधसुग्रीवि, गोमेदगान्धिक, मत्स्याछादम, मूलहर, फलाहार, गांगोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रौणि, जैव्हलायनि, आपस्तम्बि, मौजवृष्टि, मार्ष्टिपिंगलि, महातेजस्वी पैल, शंकलायनि, द्रयाख्येर्य तथा मारुता। इन ऋषियों के प्रवर प्रथम अंगिरा, दूसरे वृहस्पति तथा तीसरे भारद्वाज ऋषि हैं - यही तीन इनके प्रवर कहे गये हैं, इन गोत्रवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होते। माण्ड्वायन, कोपचम, वात्स्यतरायण, भ्राष्ट्रकृत, राष्ट्रपिण्डी, लैन्डाणि, सायकायनि, कोष्ठाक्षी, बहुबीती, तालकृत, मथुरावह, लावकृत, गालविद्, गाधी, मार्कटि, पौलकायनि, स्कन्दस, चक्र, गार्ग्य, श्यामायनि, बलाकि तथा साहरि - इनके निम्न पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं। महातेजस्वी अंगिरा, देवाचार्य वृहस्पति, भारद्वाज, गर्ग तथा परमतेजस्वी सैत्य ऋषि। इन ऋषियों के वंशावलों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति पतंजलि, भूयसि, जलसंधि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकैशि, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ड, कारीर्य, काट्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लध्वी तथा देवमति। इन ऋषियों के तीन प्रवर बतलाये गये हैं, अंगिरा, दमवाढ्य तथा उरुक्षय - इनके गोत्रवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। संकृति, त्रिमार्ष्टि, मनु, संबधि, तण्डि, एनातकि, तैलक, दक्ष नारायणि, आर्षिणि, लौक्षि गार्ग्य, हरि, गालव तथा अनेहा। इन सबके प्रवर अंगिरा, संकृति तथा गौरबीति माने गये हैं, इनमें परस्पर







विवाह संबंध नहीं होता। कात्यायन, हरितक, कौत्स, पिंग, हणिडदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुवेरणि, भीमवेग तथा शाश्वदर्भि, इन सभी के तीन प्रवर कहे जाते हैं, अंगिरा, वृहदश्व तथा जीवनाश्व, इन ऋषियों के वंशावालों में परस्पर विवाह नहीं होता। वृहदुक्त तथा वामदेव ये भी तीन प्रवर वाले हैं, इनके प्रवर अंगिरा वृहदुक्त तथा वामदेव हैं, इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। कुत्सगोत्र में उत्पन्न होने वालों के तीन प्रवर हैं, अंगिरा, सदस्यु तथा पुरुकुत्स, प्राचीन लोग बतलाते आये हैं कि कुत्सगोत्र वालों से कुत्सगोत्र वालों का विवाह संबंध नहीं हो सकता। रथीतर के वंश में उत्पन्न होने वालों के भी तीन प्रवर हैं, अंगिरा, विरुपाक्ष तथा रथीतर, ये लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते। विष्णुसिद्ध, शिवमति, जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्रव तथा वैरपरायण। ये सभी तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं, अंगिरा, विरुप तथा वृषपर्वा। इन ऋषियों के वंश में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। महातेजस्वी सात्यमुग्रि, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल ये सभी इन तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं। अंगिरा, मत्स्यदग्ध तथा महातपस्वी मुद्गल। इन ऋषियों के गोत्रों में उत्पन्न होने वाले परस्पर विवाह नहीं कर सकते। हंस जिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप, अपाग्रेय, अश्वयु, परणयस्त तथा दिवमौद्गल। ये सभी तीन प्रवर वाले कहे गये हैं, अंगिरा, ताण्डि तथा महातपस्वी मौद्गल्य इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होता। अपाण्डु, गुरु, शाकटायन, प्रागाथमा नारी? मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कण्य, नाडायन तथा श्यामायन - ये सभी तीन ऋषियों के प्रवर वाले हैं, अंगिरा, अजमीट तथा महातपस्वी कट्य - इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। तित्तिरि, कपिभू, महाऋषि गार्ग्य - इन सब के अंगिरा, तित्तिरि तथा कभि नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह निषिद्ध हैं। ऋक्ष भरद्वाज, ऋषिवान, मानव तथा मैत्रवर इनके अंगिरा, भरद्वाज, वृहस्पति, ऋषि मित्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पांच प्रवर हैं, इनमें परस्पर







विवाह कर्म निषिद्ध है, इन सब के अंगिरा, भरद्वाज, वृहस्पति, मौद्गल्य तथा शैशिर नामक पांच ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध हैं।

### अत्रि के वंश का वर्णन :-

महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न हुए गोत्रकर्त्ता ऋषियों का वर्णन शारायण, उद्दालकि, शौणार्कोणरथ, शौक्रतव, गौरग्रीवा, गौरजिन, चैत्रायण, अर्धमण्य, वाभध्य, गोपन, ताकविन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैदद्रणि, शाकलायनि, तैलप, सवैलेय, अत्रि गोणीपति, जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्पि तथा छन्दोगेय ये कर्दमायन शाखा से उत्पन्न हुए ऋषि हैं। इनके प्रवर श्यावाश्व, अत्रि तथा आर्चनानश - ये तीन ऋषि कहे गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। दाक्षि, बलि, पर्णवि, उर्णनाभि, शिल्दिनि, बीजवापी, शिरीष, मौन्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन, इन ऋषियों के अति, गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि - ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध हैं। इसके पश्चात् अति वंशोद्भव ऋषियों की कन्याओं से उत्पन्न होने वाले ऋषियों का विवरण - कालेय, बालेय, वामरध्य, धात्रेय तथा मैत्रेय इनके अति, वाभरथ्य तथा पौत्रि - ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इन ऋषियों में परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध माना गया है। महर्षि अति के पुत्र श्रीमान् सोम हुए जिनके वंश में उत्पन्न होने वाले विश्वामित्र जी हुए, जिन्होंने अपने तप के महात्म्य से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की थी, उन्हीं के वंश का वर्णन है। विश्वामित्र देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जाबाल, वभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, संश्रुत, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलयम, साधित तथा वास्तुकौशिक। इन सब ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वालों के विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्दाल ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध हैं। देवश्रुव, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वैदेहरात तथा कुंशिक इन सभी ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने







वालों में परस्पर विवाह नहीं होता। धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पार्णिन - इन वंशों में सब के विश्वामित्र धनंजय तथा माधुच्छन्दस ये तीन प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, मधुच्छन्द तथा अधमर्षण इन तीन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होते। कमलायनिज, अश्मरथ्य और वन्जुलित इनके वंशधर ऋषियों के विश्वामित्र, अश्वमरथ तथा महातपस्वी वन्जुलि - ये तीन प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध माने गये हैं। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक तथा पूरण - इनके विश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर माने गये हैं, जिनमें पुराणों में परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध हैं। लोहित और अष्टक वंशधरों के तीन ऋषियों के प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक। इनमें अष्टक वंशावलों का लोहित वंशावलों के साथ परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध है। उदरेणु, कुथक, ओदावहि - इन सबके ऋणवान, गतिन तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने गये हैं, जिसमें परस्पर विवाह नहीं होता। उदुम्बर, सौवरिति, त्राक्षायणि, शाट्यायनि, करीराशी, शांकलायनि, लावकि तथा मौन्जायनि - इन ऋषियों के वंशधरों के खिलखिलि, विष तथा विश्वामित्र - ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध है।

### महर्षि कश्यप के वंश का वर्णन :-

महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप हुए अब उन्हीं कश्यप के कुल में उत्पन्न होने वाले गोत्रकार ऋषियों का वर्णन है। आश्रायणि ऋषिगण, मेघकीरिट - कायन, उदग्रज, माठर, भोज, नियलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में उत्पन्न मृगय, श्रोतन, भौतपायन, देवयान, गोमयान, योधयान, कार्तिवद, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, आश्वलायनी, प्रागायण, पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, शयाकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, वभ्रज, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आन्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशय, उद्वलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय,







काश्यपेय, सासिस, हारितायन, मातंगिन तथा भृगव - इन वंशों में उत्पन्न होने वाले ऋषिगण तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं। उन तीनों के नाम ये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निधुवा। इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह निषिद्ध है। इसके यामुनि, कादुपिंगाक्षि, जातम्बि तथा दिवावष्ट कश्यप के गोत्र में उत्पन्न हुए। इन सभी ऋषियों के वंशधरों के निम्नलिखित तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं। वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। संयाति, दोनों नभ नामक ऋषि, पिप्पल्य, जलधर, भुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभीमुख, हिरण्यवाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाष, मरुत्रुण, महान्, केरल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि। इन सभी ऋषियों के तीन आर्ष प्रवर कहे गये हैं, असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप - इनमें परस्पर विवाह संबंध नहीं होता।

### वसिष्ठ के वंश क्रम का वर्णन :-

वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों का प्रवर एक मात्र वसिष्ठ ही है, इन वसिष्ठ के वंशजों का विवाह वसिष्ठ गोत्रजों में निषिद्ध है। व्याघ्रपाद, औपगव, वैल्कव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गोपायन, बोध्य, दाकव्य, बाह्यक, बालिशय, पालिशय, वाग्रन्थय, आपस्थथूण, शीतव्रत, ब्राम्हपुरेयक, सोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोडलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस् तथा याज्ञवल्क्य - ये सभी महर्षि एक ऋषि प्रवर वाले हैं, इन सबों के प्रवर एकमात्र वसिष्ठ जी हैं। इनके वंशधर परस्पर विवाह संबंध नहीं स्थापित करते। शौलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिन्, कपिन्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकध्वि, काण्व, उपलप,







शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाक्य, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण, प्रलंबायन, औपमन्यव, सांख्यायन, वेदशेरक, पौलंकायन, उद्गाह, बलेक्षव, मातेव ब्रम्हमलिन तथा पन्नगारि - इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे जाते हैं; भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमटि। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। औपस्थल, स्वस्थंलय, बाल, हाल, हल, माधन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुष, त्रैश्रंगायाण, सैबल्क तथा कुण्डिन - इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे गये हैं, वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन। दानकाम, महावीर्य, नागेय, परम, आलम्ब, बायन तथा चक्रोडादि - इनमें परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध है। शिवकर्ण, वयं तथा पादप - इन सभी के तीन प्रवर कहे गये हैं, जातूकर्ण, वसिष्ठ तथा अत्रि। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते।

### महर्षि पराशर ऋषि के पवित्र वंश का वर्णन :-

काण्डशय, वाहनप, जैम्हय, भीमतापन - ये चार तथा पाँचवे गोपालि ये पांच गौर पराशर कहे जाते हैं। प्रपोहय, ब्राम्हय, ख्यातेय, कौतुजातय ये चार तथा पांचवे हर्यश्वि - इन पांचों को नील पराशर जानना चाहिये। काष्ण्यायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपातय - ये चार तथा पांचवे पुष्कर इनको कृष्ण पराशर जानना चाहिये। श्राविष्ठायन, कालेय, स्वायष्ठ, उपय - ये चार तथा पांचवे इषीकह - इनको श्वेत पराशर जानना चाहिये। बाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन - ये चार तथा तथा पांचवे क्षेमि - ये पांच श्याम पराशर हैं। खल्यायन, वाष्ण्यायन तैलेय, यूधप - ये चार तथा पांचवे तन्ति - ये पांच धूम्र पराशर कहे गये हैं। इन सभी पराशरों के तीन ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं, पराशर, शक्ति तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इन ऋषियों में परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध हैं।







## महर्षि अगस्त्य के वंश का वर्णन :-

अगस्त्य, करम्भ, कौशल्य, शकट, सुमेधस, नयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा कृत के वंश में उत्पन्न होने वाले - इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर ऋषि कहे गये हैं, अगस्त्य, महेन्द्र तथा मयोभुव । इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह संबंध निषिद्ध है। पौर्ण मास तथा पारण इन दोनों ऋषियों के तीन प्रवर हैं, अगस्त्य, पौर्ण मास तथा महातपस्वी पारण। जिनमें परस्पर पौर्णमास लोग पौर्ण मासवालों से विवाह के अयोग्य हैं।

महर्षि क्रतु को कोई संतति नहीं थी। अतएव उन्होंने अगस्त्य के धर्मिष्ठ पुत्र इष्मवाह को पुत्र रूप में स्वीकार किया था, इसीलिये अगस्त्य के वंशज भी क्रतु के वंशज कहलाये। महर्षि पुलह के तीन पुत्र थे। किन्तु उन तीनों पुत्रों के होने पर भी महर्षि पुलह संतुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने भी अगस्त्य के पुत्र ऋषि वृढास्य को पुत्र रूप में स्वीकार किया था। इसीलिए पुलह के वंशज अगस्त्य के वंशज कहलाये। महर्षि पुलस्त्य ने अपने वंशधरों को राक्षसकर्म में निरत होता देख अगस्त्य के पुत्र की पुत्र रूप में वयण किया, इसीलिये पुलस्त्य के वंशज भी अगस्त्य के वंशज कहलाये। ये सभी सगोत्र होने के कारण आपस में विवाह के अयोग्य हैं।

--०००--



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



ऋषियों द्वारा किए गए लोक संग्रह के कार्य

कतिपय ऋषियों की जनसंख्या की वृद्धि का सम्बन्ध करने में सक्षम होकर वे  
 थे। ऋषियों की रक्षा, आलस्य की रक्षा तथा जनसंख्या की वृद्धि के लिए ऋषियों का  
 कार्य था।

१. ऋषियों का संरक्षण एवं योद्धाओं का अस्त्रास्त्र

ऋषियों का संरक्षण :-

## तृतीय अध्याय

# ऋषियों द्वारा किए गए लोक संग्रह के कार्य

ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 १. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 २. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ३. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ४. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ५. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ६. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ७. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ८. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 ९. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-  
 १०. ऋषियों के लिये निम्नलिखित कार्य थे :-



आर्य समाज

श्री गुरुदेव की आज्ञा से  
आर्य समाज के द्वारा



## ऋषियों द्वारा किए गए लोक संग्रह के कार्य

कतिपय ऋषियों को जनहितकारी कार्यों का सम्पादन करने में सन्नद्ध देखा जाता था। आश्रितों की रक्षा, आततायी का संहार तथा जनक्षोभ निवारण के लिए ऋषिगण प्रस्तुत रहते थे।

### १. आश्रितों का संरक्षण एवं योद्धाओं का उत्साहवर्धन :-

#### आश्रितों का संरक्षण :-

ऋषिगण आश्रित व्यक्ति के योग क्षेम को वहन करते थे। गिरिप्रस्थ में ऋषियों के सहारे निवास करने वाले पाण्डु के प्रति ऋषियों का व्यवहार पुत्र, सखा और मित्र जैसा था। पाण्डु की मृत्यु पर ऋषियों ने कुन्ती और पाण्डवों को हस्तिनापुर ले जाकर कौरवों से परिचय कराया। वेद व्यास ने निराश्रित पाण्डवों को एक चक्रा नगरी में निवास स्थान दिलवाया। लोमश जैसे ऋषि पाण्डवों के साथ पृथ्वी पर विचरण करते हुए भायंकर राक्षसों से रक्षा करते थे। कतिपय ऋषियों का, समदर्शी होने पर भी, आश्रितों पर अधिक स्नेह रहता था। वेदव्यास पाण्डवों की दयनीय स्थिति के कारण कौरवों की अपेक्षा पाण्डवों पर अधिक स्नेह रखते थे। वेदव्यास भीम के प्रति गंधारी के क्रोध को शांत करने तत्क्षण उपस्थित हो गये थे। आश्रित व्यक्ति की मनोकामना पूर्ण करने हेतु कतिपय ऋषि दुर्गम देश की यात्रा तक करते थे। वसिष्ठ ने संवरण की मनोभिलषित सम्पत्ति की याचना हेतु सूर्यलोक की यात्रा की थी। शरण में आए हुए काशी नरेश दिवोदास को भारद्वाज मुनि ने अभय दान दिया तथा अपनी तपः शक्ति से दिवोदास को एक पुत्र प्राप्त कराया जिसने भविष्य में दिवोदास के शत्रुओं का संहार किया। इसी प्रकार प्रतर्दन द्वारा भयभीत वीतहव्य महर्षि भृगु की शरण में गया। महर्षि ने उसकी प्रतर्दन से रक्षा कर उसे अपने संरक्षण में ब्रह्मवादी बना दिया।



# आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

। नि नि

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

आत्म के द्वारा कर्म का प्रतीक

। नि नि



असुरों के भय से भयभीत देवताओं द्वारा महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाने पर अगस्त्य ने उनके भय का कारण जान कर दैत्यों को अपनी क्रोधाग्नि से ही दग्ध कर दिया तथा देवताओं की रक्षा की।

खली नामक दानवों के भय से ग्रसित देवताओं की, जो वसिष्ठ की शरण में रक्षा हेतु पहुँचे थे, वसिष्ठ ने रक्षा की और खली दैत्यों को अपने तेज से दग्ध कर दिया।

एक समय इन्द्र के यज्ञ में महर्षियों ने आर्त होकर शरण में आये हुए पशुओं की रक्षा की थी और यज्ञ में पशुबलि का निषेध कर गेहूँ, जौ आदि अनाजों से यज्ञ की विधि बताई थी। इसी सन्दर्भ में उपरिचर वसु भी स्वर्ग से च्युत हुए थे, क्योंकि उन्होंने ऋषियों की यह बात नहीं मानी थी कि यज्ञ में पशु की बलि न दी जाकर गेहूँ, जौ आदि से यज्ञ किया जाए।

इन्द्र वृत्रासुर संग्राम में इन्द्र के द्वारा सहायता की याचना करने पर वसिष्ठ ने इन्द्र की सहायता की थी।

महर्षि कश्यप ने परशुराम से क्षत्रियों एवं पृथ्वी की रक्षा की थी। पृथ्वी को रसातल में जाते देख कर उन्होंने अपने उरुओं का सहारा देकर उसे रोक लिया था। इसी कारण पृथ्वी का उर्वी नाम भी प्रसिद्ध है।

### योद्धाओं का उत्साहवर्धन -

युद्ध के समय महर्षिगण योद्धाओं का उत्साहवर्धन भी करते थे। उदाहरणार्थ कतिपय प्रसंग उपस्थित हैं :-

अश्वत्थामा और भीमसेन के युद्ध के समय रणभूमि में उन दोनों के अद्भुत एवं अचिन्त्य कर्म को देखकर सिद्धों एवं चारणों के समूह को बड़ा विस्मय हो रहा था।







उस समय देवता, सिद्ध एवं महर्षिगण उन दोनों की प्रशंसा, करते हुए कहने लगे - महाबाहु द्रोण कुमार तुम्हें साधुवाद, भीमसेन तुम्हारे लिए भी साधुवाद ।

अर्जुन तथा संशप्तकों को युद्ध के समय भी सिद्धों तथा महर्षियों के समुदाय ने अर्जुन की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी । आकाश से फूलों की वर्षा के साथ यह आकाश वाणी भी हुई थी -

केशवार्जुनयोर्मूर्हित प्राह वाचाशरीरिणी ।

चन्द्राग्नयनिलसूर्याणां क्रान्तिदीप्तिबल श्रुतीः ॥

(२) राजाओं के वंशक्षय को रोकना एवं आततायियों का विनाश:-

राजाओं के वंश क्षय रोकना :-

विभिन्न महर्षियों ने अपनी तपःशक्ति से विभिन्न राजाओं को पुत्र की प्राप्ति कराकर उनके वंश को क्षय होने से बचाया था। अनेक ऐसे उद्धरण महाभारत में वर्णित हैं, जहाँ अनेक ऋषियों ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न राजाओं को पुत्र प्राप्ति का वरदान देकर अथवा नियोग प्रथा से पुत्र प्रदान कर उनके वंश की रक्षा की थी।

महर्षि व्यास ने नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करके चन्द्र वंश की रक्षा की थी। अम्बिका एवं अम्बालिका से नियोग द्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर को उत्पन्न किया था। महर्षि वसिष्ठ ने राजा कल्माषपाद को उनकी रानी मदयन्ति के साथ नियोग करके अश्मक नामक पुत्र प्रदान किया था।

याज और उपयाज ने तपःशक्ति से द्रुपद के लिए यज्ञ की वेदी से एक पुत्री (द्रौपदी) तथा पुत्र धृष्टदुम्न उत्पन्न किया था। राजा सोमक के पुरोहित ऋषि ने उन्हें अपनी तपः शक्ति से सौ पुत्र प्रदान किया था।







महर्षि च्यवन ने भी राजा कुशिक एवं उनकी पत्नी की सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान देकर उनके वंश की रक्षा की थी।

बालखिल्य ऋषियों ने तपस्या करके यज्ञ किया। शक्ति सम्पन्न हो उन्होंने पुत्र के लिए तपस्यारत कश्यप पत्नी विनता को पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। जिससे उन्हें अरुण एवं गरुण नामक दो शक्तिशाली पुत्र प्राप्त हुए।

महर्षि दमन ने राजा भीम को एक कन्या (दमयन्ती) एवं तीन पुत्र दम, दान्त तथा दमन प्रदान किए।

### आततायियों का विनाश -

ऋषि महर्षि आततायियों एवं दुष्टों के विनाश के लिए सर्वदा यथासंभव प्रयत्न करते थे। अनेकों बार उन्होंने देवताओं एवं मनुष्यों की, आक्रमणकारी राक्षसों, दैत्यों आदि से रक्षा की थी।

महर्षि अगस्त्य ने तो सम्पूर्ण समुद्र का पान ही कर लिया था क्योंकि कालेय राक्षस देवताओं का विनाश कर समुद्र में छिप जाते थे। अतः देवताओं के अनुरोध पर महर्षि अगस्त्य ने उनकी सहायता हेतु समुद्र पान कर कालेय राक्षसों के वध में सहायता की।

महर्षि अगस्त्य ने ही सूर्य के मार्ग को रोकने वाले विन्ध्य पर्वत को अपनी तपःशक्ति से बढ़ने से रोक दिया था। देवताओं को कष्ट देने वाले वातापि एवं इल्वल का संहार भी महर्षि अगस्त्य ने ही किया था।

महर्षि अगस्त्य ने ही एक समय देवताओं को परास्त करने वाले असुरों को अपनी अग्नि सदृश दृष्टि से जलाकर दन्ध कर दिया था।







ऋषिगण अधार्मिक कार्य करने वाले का विरोध करने को सदैव प्रस्तुत रहते थे। विश्वरूप के द्वारा देवताओं के सोमरस का पान कर जाना दधीचि की दृष्टि में अनय कृत्य था। अतः दधीचि ने संहार के लिए वज्र निर्माणार्थ अस्थियाँ विसर्जित कर दी थीं।

आदि ऋषियों ने वृत्रासुर के विनाश हेतु महेश्वर से प्रार्थना कर उसका संहार कराना चाहा था।

ऋषियों ने वसिष्ठ एवं वृहस्पति के साथ जाकर इन्द्र से वृत्रासुर के विनाश की प्रार्थना की एवं युद्ध के समय उन्हें अपनी-अपनी शक्तियाँ प्रदान कीं। तारकासुर के पुत्रों से त्रस्त महर्षियों ने शंकर से उनके संहार का निवेदन किया। महर्षिगण वृत्रासुर के विनाश के लिए विष्णु से प्रार्थना करने गये। सुन्द एवं उपसुन्द के अत्याचारों की समाप्ति के लिए भी महर्षियों ने देवताओं की सहायता की थी। अर्जुन की प्रशंसा से दिशाएं धूमायित हो रही थीं। महर्षियों ने अर्जुन को शंकर का साक्षात्कार करा विश्वशांति करायी। अग्नि के गुप्त हो जाने से त्रिलोक में क्षोभ व्याप्त हो गया। ऋषियों ने देवताओं की सहायता से अग्नि को प्रकट कराया। अर्जुन द्वारा दिव्य अस्त्रों का प्रदर्शन आरंभ करने पर सर्वत्र आतंक व्याप्त हो गया। नारद ने देवर्षि, राजर्षि और ब्रह्मर्षियों के साथ जाकर अर्जुन से अस्त्रों का प्रयोग 'निरधिष्ठान' में न करने का आग्रह किया था।

नहुष के क्रोध से असुर, किन्नर, गंधर्व और नागों के त्रस्त होने पर भी ऋषियों ने जाकर उसे शांत कराया।

अश्वस्थामा की (मिथ्या) मृत्यु का समाचार सुनकर क्षत्रियों के विनाश हेतु उद्यत द्रोणाचार्य को देखकर तुरन्त ही अग्निदेव के साथ बहुत से महर्षि वहां आए। विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, कृतिष्ठ, कश्यप और अत्रि ये सब लोग वहाँ







आए। उन सबने द्रोणाचार्य से कहा - द्रोण । अब तुम हथियार का त्याग कर दो, तुम्हारे लिए यह क्रूर कर्म शोभा नहीं देता। उन ऋषियों के उसे कथन को सुनकर द्रोण युद्ध से निवृत्त हो गए। ऋषियों द्वारा ऐसा न करने पर संभव था द्रोण समस्त सैनिकों, शत्रुओं का नाश कर देते।

### जनक्षोभ का निवारण -

ऋषि जनक्षोभ की शांति के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। प्रद्युम्न द्वारा शाल्व के वध के उद्देश्य से प्रत्यंचा पर भयंकर अस्त्र संधान करते ही प्राणीमात्र सशंकित हो उठे। तब नारद ने तत्काल जाकर उन्हें अस्त्र संधान से विरत किया।

### जाति क्षय का निवारण -

किसी जाति के व्यक्ति विशेष के अपराध से क्रुद्ध होकर सारी जाति का विनाश करना अशोभन था, अतः महाभारतीय ऋषि यथासंभव ऐसे कार्य नहीं होने देते थे। किंकर राक्षस के अपराध पर कुपित होकर पराशर मुनि राक्षस सत्र द्वारा राक्षस जाति का विनाश करना चाहते थे। पराशर को इस क्रूर कृत्य से विरत करने के लिए पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, महाक्रतु और अत्रि ने विशेष प्रयत्न किया। द्वैरथ संग्राम से क्रुद्ध होकर द्रोण क्षत्रिय जाति का विनाश करने को सन्नद्ध हो गये। व्यक्ति विशेष के कारण समग्र जाति का विनाश करना उचित नहीं था। अतः विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, पृश्नि, गर्ग, बालखिल्य, मरीचि, भृगु, अंगिरा तथा अन्य महर्षियों ने हव्यवाह के साथ युद्ध स्थल पर आकर द्रोण को शांत किया था। कार्तवीर्य के पुत्रों के अपराध पर परशुराम समग्र क्षत्रिय जाति का विनाश कर रहे थे। परशुराम के उक्त कार्य को ऋचीक प्रभृति महर्षियों ने अनुचित निरूपित कर उन्हें क्षत्रिय वध से विरत किया था।







### (३) विश्वविनाश का प्रतिरोध एवं लोक कल्याणार्थ शस्त्रास्त्र धारण :-

#### विश्वविनाश का प्रतिरोध -

ऋषिगण विश्व विनाश को रोकने के लिये विशेष सक्रिय दिखायी देते थे। अश्वत्थामा ने अपाण्डवाय कहकर ब्रह्मशिख का प्रयोग किया। प्रत्युत्तर में अर्जुन द्वारा अस्त्र प्रयोग किए जाने पर विश्व संक्षय उपस्थित हो गया। नारद और वेदव्यास ने प्राणीमात्र के संरक्षण के उद्देश्य से अस्त्रों के मध्य में उपस्थित होकर उनका निवर्तन कराया। अर्जुन द्वारा दिव्य अस्त्रों का प्रदर्शन करने पर विश्व में मेघान्तक छा गया। नारद ने प्राणी संक्षोभ को दूर करने के लिए ब्रह्मर्षि सुरर्षि और राजर्षियों के साथ अर्जुन के समीप जाकर अस्त्रों का प्रयोग निरधिष्ठान में न करने का अनुरोध किया। अर्जुन के अनुसार विराट पुरुष के भयानक मुख में देवगण के प्रविष्ट होते समय महर्षियों ने लोक रक्षण के उद्देश्य से स्तोत्रों द्वारा भगवान का यशोगान किया। श्रुतायु पर युधिष्ठिर के क्रुद्ध होने पर तीनों लोकों के भष्म हो जाने का भय उपस्थित हो गया। ऋषियों ने स्वस्तिवाचन द्वारा युधिष्ठिर का क्रोध शांत किया।

#### लोक कल्याणार्थ शस्त्रास्त्र धारण -

##### उद्देश्य -

ऋषिगण लोक कल्याण के उद्देश्य से शस्त्र धारण करते थे। परशुराम ने ब्रह्मणों के कार्य के लिए शस्त्र धारण करने की प्रतिज्ञा की थी।

ऋषियों को अभिमानी व्यक्ति के अभिमान का शमन करने हेतु शस्त्र संधाता बनना पड़ता था। नर ऋषि को दम्भोद्भव के गर्व का उपशमन करने के उद्देश्य से इसी कद का प्रयोग करना पड़ा।







वसिष्ठ को विश्वामित्र के शस्त्रास्त्रों के मद को शांत करने हेतु ब्रह्मदण्ड का सहारा लेना पड़ा।

### शस्त्र-ज्ञान -

कतिपय ऋषि अस्त्र-शस्त्रों के विशेषज्ञ माने जाते थे। भारद्वाज शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता थे। शरद्वान् का मन वेदाध्ययन की अपेक्षा धनुर्वेद में अधिक लगने से वे धनुर्वेदज्ञ हो गये थे।

कृपाचार्य को धनुर्वेद का परमाचार्य माना जाता था। कृप को स्वामिकार्तिक के तुल्य अजेय बताया गया है।

द्रोण को शंकर के अस्त्र, बाण एवं विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों का रहस्य ज्ञात था। नारद को विजय के साधन परिचित थे। जमदग्नि को सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा चारों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र परिभाषित हो गये थे।

परशुराम शास्त्रास्त्रों के विशेषज्ञ होने से युद्ध में प्रलय कालीन मृत्यु के सदृश भयंकर प्रतीत होते थे।

### (४) सामरिक ज्ञान एवं युद्धनीति का ज्ञान :-

#### सामरिक ज्ञान -

ऋषियों को सामरिक नीतियों का ज्ञाता माना जाता था। शुक्र और बृहस्पति ने युद्ध विषयक नीति का निर्धारण किया था। कर्ण के अनुसार द्रोण ने उक्त नीतियों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। महर्षियों को व्यूह निर्माण की प्रक्रिया ज्ञात थी। शुक्र और बृहस्पति ने व्यूह प्रणाली का आविष्कार किया था। युधिष्ठिर उक्त महर्षियों के विधान के अनुसार व्यूह का निर्माण करते थे। बृहस्पति के क्रोचारुण नामक व्यूह का धृष्टद्युम्न







ने महाभारत संग्राम में निर्माण किया था। चित्रयोधी कृपाचार्य को विभिन्न प्रकार के युद्धों का ज्ञान था।

### वेदज्ञाता और धनुर्वेदज्ञाता -

धनुर्वेदज्ञ ऋषि वेदज्ञ हुआ करते थे। द्रोण मुख से वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए शस्त्र संचालन करते थे। उनके शिविर में ज्याघोष और ब्रह्मघोष की अनवरत ध्वनि सुनायी देती थी। अस्त्र-शस्त्राचार्य परशुराम ने वेदमाता गायत्री को कवच तथा चारों वेदों को अश्व बनाकर वेदज्ञता का परिचय दिया था। शरद्वान् जैसे महर्षियों की रुचि वेदाध्ययन की अपेक्षा धनुर्वेद में थी, पर वे दक्ष तो थे ही।

### रण सज्जा कौशल -

ऋषियों की रण सज्जा सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा विशिष्ट प्रकार की रहती थी। परशुराम निरन्तर रथारुढ़ रहते थे। महर्षि के अनुसार उनका रथ पृथ्वी, अश्व, चार वेद, कवच, वेदमाता गायत्री और सारथी वायु था।

परशुराम ने भीष्म युद्ध में मनोबल द्वारा ऐसे रथ का निर्माण किया था जो स्वर्ण निर्मित, विस्तीर्ण, दिव्य अश्व सन्नद्ध तथा स्वर्ण चिन्हित ध्वजा से संयुक्त था। उस पर तूर्णधारी धनुर्धर तथा गोध का अंगुलित्राण पहने आकृतव्रण सारथी बनकर आसीन थे। परशुराम निरन्तर धनुष, खड्ग और परशु धारण किये रहते थे।

द्रोण का धनुष दो अरत्नि दीर्घ बताया गया है।

अश्वत्थामा की ध्वजा पर सिंह लांगूल और कृपाचार्य की ध्वजा पर गौवृष का चिन्ह था।



ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



## (५) युद्ध कौशल, शस्त्रास्त्र निपुण एवं सामाजिक कार्यों का अवलोकन :-

## युद्ध कौशल -

ऋषियों के सामरिक कौशल का परिचय प्राप्त होता है। द्रोण के बाणों का समूह प्राणियों का विध्वंसक था। द्रोण के मुख से वेद मंत्रों का उच्चारण तथा हाँथों से अस्त्रों का संचालन करते समय वे वेदमंत्रों से हुत-अग्नि के समान प्रतीत होते थे। परशुराम ने विजय धनुष को धारण कर पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्र किया था। कृपाचार्य ने महाभारत संग्राम में प्रथम दिवस शल, यवन, किरात और पल्लवों के साथ कौरव सेना की उत्तर दिशा से रक्षा की। द्रोण आयु में अस्सी वर्ष से अधिक होने पर भी रणभूमि में षोड्ष वर्षीय नवयुवक के तुल्य विचरण करते थे। द्रोण ने पाण्डवों पर वायव्य, वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र, सावित्र, ऐन्द्र, प्राजापत्य, माहेन्द्र तथा ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया था। अश्वत्थामा ने तीव्र बाण वर्षा से कृष्ण और अर्जुन को निश्चेष्ट कर दिया था। ब्रह्मवादी अश्वत्थामा के धनुष प्रत्यंचा, बाणरथ, ध्वज, अंगुलि, भुजा, हस्त, वक्षःस्थल, नासिका, नेत्र, कर्ण, रोमछिद्र आदि प्रत्येक अंगों से बाण वृष्टि होने लगी।

कतिपय अन्य ऋषियों के सामरिक कौशल का विवरण इस प्रकार है। नर ऋषि ने षौलोम और कालकेय राक्षसों का संहार कर जम्भ के सिर को भाले से काट डाला तथा साठ हजार निवात कवचों का संहार कर समुद्र के परवर्ती सुवर्ण नगरों को ध्वंस कर दिया। नर ऋषि ने एक मुट्ठी इषीक लेकर सेना तथा अस्त्र-शास्त्रों से सुसज्जित दम्भोद्भव को पराजित कर दिया। कृष्णमृग चर्मधारी भार्गव आंगिरस और भारद्वाज गोत्रिय विप्रर्षियों ने विविध आयुधों से सुसज्जित क्रमशः जंघ, नीप, हैहय एवं हला वंशज क्षत्रियों को परास्त कर डाला।







कतिपय ऋषि युद्ध में सहायता प्रदान करते थे। वसिष्ठ ने संग्राम भूमि में रथन्तर-साम द्वारा इन्द्र को उद्बोधित किया था। अथर्वा और अंगिरा ने तारकासुर संग्राम में इन्द्र के रथ चक्रों की रक्षा की थी।

### शस्त्रास्त्र व्यवसायी वंश -

अधिकांश शस्त्र व्यवसायी ऋषियों की उत्पत्ति भृगु, अंगिरा और भरद्वाज वंश में हुई अतः प्रतीत होता है कि उक्त वंशों में वेदाभ्यास के साथ शस्त्राभ्यास पर अधिक बल दिया जाता था।

भार्गव जमदग्नि को सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा चारों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रतिभासित थे। भार्गव परशुराम अस्त्र-शस्त्राचार्य माने जाते थे। युद्ध कला विशेषज्ञ शुक्राचार्य को भृगुवंशी बताया गया है।

अंगिरा के कतिपय वंशज शस्त्रशास्त्रों में निष्णात थे। अंगिरा के पुत्र बृहस्पति को सामरिक विधियों का ज्ञान था। स्वयं अंगिरा, अथर्वा के साथ इन्द्र के चक्र रक्षक बने थे। गृह रूप में बृहस्पति और शुक्र के युद्धों का विवरण प्राप्त होता है।

भारद्वाज अंगिरा कुल से संबंधित थे, पर यशस्वी होने से उनकी स्वतंत्र सत्ता मानी जाती थी। आग्नेयास्त्र के ज्ञाता भरद्वाज ने अग्निवेश्य को उसका रहस्य बताया। भरद्वाज नंदन द्रोण शस्त्राचार्य माने जाते थे। ज्याघोष और ब्रह्मघोष से उनका निवास स्थान निनादित रहता था। द्रोण पुत्र ब्रह्मवादी अश्वत्थामा ने तीव्र बाण वर्षा द्वारा कृष्ण और अर्जुन को निश्चेष्ट कर दिया था।

कतिपय अन्य वंशों में भी शस्त्राध्यापन की परम्परा थी। शस्त्रास्त्र विशेषज्ञ शरद्धान् ने अपने पुत्र कृपाचार्य को शस्त्रास्त्रों का ज्ञाता बताया। कृपाचार्य शस्त्राध्यापन करते थे। वसिष्ठ इन्द्र के साथ संग्राम भूमि में उपस्थित थे। अथर्वा ने इन्द्र के चक्र की







## भ्रमणशीलता -

ऋषिगण लोकानुभव तथा लोक कल्याण हेतु भ्रमण करते रहते थे। महाभारत में ऋषियों की भ्रमणशीलता पर प्रकाश डाला गया है। कतिपय ऋषि पृथ्वी पर निरन्तर भ्रमण करते रहते थे। असित देवल निरन्तर भ्रमण करने वाले ऋषि थे। विश्वामित्र ने एक बार सारी पृथ्वी पर भ्रमण किया था।

संवर्त्त नग्न वेष में चतुर्दिक भ्रमण कर रहे थे। जरत्कारु पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए संध्या होने के स्थान पर ठहर जाते थे। कतिपय ऋषि भ्रमण करते हुए गन्तव्य स्थान पर पहुँचा करते थे। पंचशिख भ्रमण करते हुए मिथिलापुरी पहुँचे।

जाजलि भ्रमण करते हुए वाराणसी में तुलाधार वैश्य के यहाँ गये। वेदव्यास गुप्त रीति से भ्रमण करते हुए मैत्रेय के स्थान पर वाराणसी गए। ऋषियों ने द्वादश वार्षिक सत्र की समाप्ति पर भ्रमण करते हुए यमुना तट पर गये। शुक्रदेव मेरु, हरि और हिमवान् वर्ष को पारकर भारतवर्ष में आये। ऋषिगण विश्व के कल्याण के लिये हिमालय पर्वत पर जाया करते थे।

कतिपय ऋषि तपस्या तथा तीर्थयात्रा के उद्देश्य से पृथ्वी पर भ्रमण करते थे। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि और अरुन्धती तपस्या करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे थे।

जाजलि ने जल में तपस्या करते हुए सारी पृथ्वी की परिक्रमा की। शुक्र, कवि, अंगिरा, अगस्त्य, नारद, पर्वत, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव, अष्टका, भरद्वाज, बालखिल्य और अरुन्धती प्रभासक्षेत्र से तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। कतिपय ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए सरस्वती तट पर पहुँचे।

कतिपय ऋषि पृथ्वी से अन्य लोकों में भ्रमण करने जाते थे। लोमश भ्रमण करते हुए इन्द्रलोक पहुँचे। नारद भ्रमण करते हुए पृथ्वी से वरुण लोक गये।







अन्य लोकों से पृथ्वी पर आने का विवरण मिलता है। नारद और पर्वत एक समय देवलोक से मनुष्य लोक में आये नारद स्वर्गलोक से पर्वत पर पधारे। नारद अन्य लोक का भ्रमण करते हुए युधिष्ठिर की राजसभा में आये।

ऋषियों द्वारा तीनों लोकों का भ्रमण करने का विवरण उपलब्ध होता है। नारद ने एक समय तीनों लोकों का स्वेच्छापूर्वक भ्रमण किया। वसिष्ठ को सम्पूर्ण लोकों का भ्रमण करने में प्रसन्नता होती थी।

### सामाजिक कार्यों का अवलोकन -

ऋषिगण सामाजिक कार्यों के अवलोकन हेतु उपस्थित हो जाते थे। ऋषियों की उक्त प्रवृत्ति कभी-कभी कौतूहल का रूप धारण कर लेती थी। नारद जैसे ऋषि निरन्तर कौतूहल से युक्त रहा करते थे।

ऋषिगण कन्या स्वयंवर का दृश्य देखने उपस्थित हो जाया करते थे। कृष्णा पांचाली का स्वयंवर देखने बहुसंख्यक ऋषि इकट्ठे हुए। विशिष्ट पुरुषों के जन्म महोत्सव में ब्रह्मर्षि और देवर्षिगण को भी उपस्थित देखा जाता था। शुकदेव के जन्म महोत्सव में ब्रह्मर्षि और देवर्षिगण सम्मिलित हुए। कार्तिकेय के जन्म पर देवर्षिगण बृहस्पति के नेतृत्व में उपस्थित हुए। ऋषिगण विशिष्ट घटना का रुचिपूर्वक अवलोकन करते थे। शिव मस्तक पर भागीरथी गंगा का प्रताप देखने ब्रह्मर्षिगण एकत्र हो गये।

मुनियों ने जटा तथा मृगचर्म धारण किये पाण्डवों का अवलोकन काम्यक वन में जाकर किया। भीष्म पितामह की शरशय्या का अवलोकन करने महर्षिगण तत्काल उपस्थित हो गये। महर्षियों को विशाल समितियों में उपस्थित देखा जाता था। हस्तिनापुर में होने वाली पृथ्वी की समितिका अवलोकन करने परशुराम प्रभृति महर्षिगण पधारे थे।







ऋषिगण संग्राम क्षेत्र में उपस्थित होकर विख्यात योद्धाओं के कौशल का निरीक्षण करते थे। ऋषियों ने परशुराम और भीष्म के द्वैरथ संग्राम का रण कौशल कुरुक्षेत्र में उपस्थित होकर देखा। परशुराम के अनुसार पूर्वकालीन देवासुर, संग्राम का अवलोकन देवर्षि और राजर्षियों ने किया था।

वृत्रासुर और इन्द्र के लोमहर्षक संग्राम को ऋषियों ने ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के साथ देखा था। ऋषिगण महाभारतीय वीरों का संग्राम रुचिपूर्वक देखा करते थे। वेदज्ञ महर्षियों ने स्वधा प्रेमी पितरों के साथ कर्णार्जुन के भयंकर संग्राम को अंतरिक्ष में स्थित होकर देखा था। अनेक ब्रह्मर्षिगण प्रजापति, ब्रह्मा और शंकर के साथ उक्त संग्राम का अवलोकन कर रहे थे। वेदवेत्ता महर्षि और ब्रह्मर्षियों की उपस्थिति से अंतरिक्ष विस्मयोत्पादक हो गया था।

सहस्रों ऋषियों ने द्रोण और अर्जुन का संग्राम अंतरिक्ष में उपस्थित होकर देखा। विराट नगर में हुए अर्जुन और कौरवों के संग्राम को महर्षियों ने इन्द्र के विमान पर आरुढ़ होकर देखा। संजय के अनुसार देवर्षियों ने देवासुर संग्राम की भांति भयंकर महाभारत युद्ध को देखा। अनेक ऋषिगण देवराज इन्द्र के साथ उपस्थित हुए थे।

(६) ऋषियों द्वारा लोकोपकारी व्यक्तियों तथा उनके कार्यों की प्रशंसा -

देवों की प्रशंसा -

ऋषिगण जनहितकारी कार्य करने वाले देवों का साधुवाद करते थे। असुर तत्कालीन समाज में कण्टक माने जाते थे, अतः उनको जीतने वाले इन्द्र की ऋषिगण स्तुति करते थे। महर्षियों ने देवासुर संग्राम में विजय प्राप्त करने पर इन्द्र की स्तुति की थी। समुद्रफेन से उपलिप्त वज्र द्वारा वृत्रासुर का संहार करने पर ऋषियों द्वारा इन्द्र की स्तुति की गई।







स्वयं बृहस्पति ने इन्द्र के पुरातन कार्यों का उल्लेख करते हुए प्रशंसा की। कतिपय ऋषि इन्द्र को पुण्य, सुनृत निधोष और मंगलवाणी सुनाया करते थे। ऋषिगण ने उत्साहपूर्वक वाक्यों से असुरों के विनाश हेतु इन्द्र का उत्साहवर्धन किया था। ऋषियों के वाक्यों को सुनकर रथ स्थित इन्द्र का स्वरूप अधिक दुर्धर्ष हो गया।

शिव के लोक हितकारी कार्यों को देखकर ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते थे। शंकर के क्रोध से दानवों के तीन पुंर एकत्र हो जाने पर परमर्षियों ने प्रसन्न होकर शिव का जयघोष किया। त्रिपुर विनाश के अनन्तर रुद्र द्वारा स्वोद्भूत अग्नि से विश्वदाह स्थगित करने पर ऋषियों ने सार्थक वाक्यों द्वारा स्थाणु का साधुवाद किया। दैत्य संहार करने रौद्ररूप धारण करने पर ऋषियों ने अद्भुत विजय गीतों द्वारा देवाधिदेव की अर्चना की।

महर्षिगण विष्णु के लोकोपकारी कार्यों के आधार पर उनका स्तवन करते थे। विष्णु वराह का विग्रह धारण कर वसुन्धरा को रसातल से ऊपर ला रहे थे। महर्षियों ने उक्त कौशल को देखकर विष्णु का स्तवन किया।

### महापुरुषों की प्रशंसा -

कृष्ण का जीवन सामाजिक कार्यों से परिव्याप्त था। अतः ऋषिगण प्रायः उनकी स्तुति करते थे। कटुवादी शिशुपाल का संहार करने पर महर्षियों ने कृष्ण की स्तुति की। दुर्योधन के मित्र कर्ण का वध होने पर महर्षियों ने जय का आशीर्वाद देते हुए कृष्णार्जुन की प्रशंसा की। भीष्म के अनुसार परशुराम, नारद, व्यास, असित-देवल, वाल्मीकि और मार्कण्डेय कृष्ण के अद्भुत चरितों का कथन करते थे। पार्थिव शरीर का परित्याग कर परमधाम पधारते समय कृष्ण का यशोगान महर्षियों ने किया।

परमधाम पधारने पर कृष्ण का स्वागत पावस, अश्विनी कुमार, रुद्र, आदित्य, वसुगण, विश्वदेव और सिद्धों के अतिरिक्त मुनियों ने किया।







ऋषियों को पुण्यात्मक व्यक्तियों की प्रशंसा करते देखा जाता था। दौहित्रों के पुण्य प्रभाव से स्वर्ग प्राप्त करने वाले ख्याति की स्तुति देवर्षि और राजर्षियों ने की। देवर्षिगण नहुषनन्दन ययाति की प्रायः प्रशंसा करते थे।

युधिष्ठिर का पार्थिव जीवन धार्मिक कृत्यों से प्रायः युक्त रहता था, अतः धर्मप्रेमी ऋषियां द्वारा उनकी प्रशंसा के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। द्रोपदी के अनुसार ऋषिगण युधिष्ठिर की उपासना करते थे। तपस्या और वेदज्ञान से सम्पन्न सहस्रों ऋषिगण युधिष्ठिर की सभा में प्रति दिन आसीन रहते। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक व्यास, धौम्य, नारद, देवल तथा परशुराम जैसे वेदज्ञ ऋषियों ने किया। ऋतवाक्, सुकाकृ, वृहदश्व, ऋतावसु, उर्ध्वरेता, वृषमित्र, सुहोत्र और होत्रवाहन, जैसे विप्रर्षियों ने युधिष्ठिर का येशोगान इन्द्र की भांति किया। महर्षियों ने कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में युद्धतत्पर युधिष्ठिर की स्तुति करते हुए प्रदक्षिणा की। महर्षियों ने विजय का आशीर्वाद देकर जप्य, तंत्र और औषधियों द्वारा स्वस्तिवाचन किया। राज्याभिषेक के अवसर पर कम्बलाजिन संवृत तथा पाण्डु वर्ण के सोलह बैलों से युक्त रथ पर आरुढ़ युधिष्ठिर की महर्षियों ने पवित्र मंत्रों से स्तुति की।

ऋषिगण सत्कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की प्रशंसा करते थे। युधिष्ठिर के सशरीर स्वर्ग पहुँचने पर परमार्षियों ने स्वागतपूर्वक स्तवन किया। देव नदी में स्नान द्वारा मानवीय शरीर के स्थान पर दिव्य शरीर प्राप्त करने वाले युधिष्ठिर की परम्भर्षियों ने स्तुति की।

### प्रशंसा के कतिपय विशिष्ट प्रसंग -

महर्षिगण लोकोत्तर वीरता का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति की स्तुति करते थे। महाभारत संग्राम में कर्ण के पराक्रम और हस्ततलाघव को देखकर महर्षियों ने साधुवाचन किया। मुनियों ने शत्रु युधिष्ठिर, साधुकी, भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि के साथ एकजुटी संग्राम करने के उक्त आश्चर्य व्यक्त करते हुए प्रशंसा की।







महर्षियों को विस्मय के अवसर पर प्रशंसा व्यक्त करते हुए देखा जाता था। दमयन्ति द्वारा अन्य देवों का पारेचय कर, नल के कण्ठ में वरमाला डालो जाने पर साधु शब्द का उच्चारण कर नल की प्रशंसा की। महर्षिगण औदार्यपूर्ण वाणी का स्वागत करते थे। अर्जुन द्वारा रात्रि युद्ध में औदार्यपूर्ण युद्ध बंदी की घोषणा कर ऋषियों ने अर्जुन की प्रशंसा की।

ऋषिगण धर्मशील व्यक्ति की प्रशंसा निधन के पश्चात् भी करते थे। नारद प्रभृति देवर्षियों ने अर्जुन के पूर्वजों का यशोगान महाभारत काल में किया। धर्मशील व्यक्ति के निधन की आशंका से महर्षि उसे घेर कर बैठ जाते। ऋषियों ने भूमि पतित भीष्म को यशोगान करते हुए आवृत कर लिया। व्यास, देवश्रवा, नारद, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु जैसे ऋषियों से आवृत होकर भीष्म सुशोभित हो रहे थे।

### (७) ऋषियों द्वारा राजसंस्था का समर्थन -

महाभारतीय ऋषि राज संस्था के समर्थक थे। राजाओं की सृष्टि करने का श्रेय महर्षियों को दिया जाता था। उतथ्य के अनुसार ऋषियों ने दोनों लोकों का विचार कर राजा की सृष्टि की। ऋषिगण हव्य, कव्य प्रदान कर दुर्बल राजा की शक्ति का संवर्द्धन करते थे। ऋषियों ने नहुष को हृदय कव्य प्रदान कर परिपुष्ट किया। श्रेष्ठ राजा की उत्पत्ति कर ऋषियों को मानसिक प्रसन्नता होती थी। ऋषियों ने युधिष्ठिर के जन्म पर प्रसन्नता व्यक्त की थी।

ऋषिगण पृथ्वी के भौतिक तथा दैवी उत्पातों का कारण राजा का अभाव मानते थे। इन्द्र के पलायन पर पृथ्वी श्रीरहित, निवृक्ष, स्रोत विच्छिन्न नदियों तथा शुष्क सरोवर वाली हो गई थी, अनावृष्टि से जनता त्रस्त हो गई तथा सारा संसार उपद्रवग्रस्त हो गया। ऋषियों ने सबका कारण राजा का अभाव बताकर नहुष को स्वर्गलोक के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कराया। संवरण के तपती के सांथ गिरिप्रस्थ चले जाने से राज्य में त्रास-वर्षा तक वृष्टि न हुई। वसिष्ठ ने उसका कारण राजा का अभाव

समझकर संवरण को लाकर वृष्टि करायी।







राजा का कार्य प्रजा पालन माना जाता था। ऋषियों के अनुसार प्रजापीड़क राजा को राज्य कार्य करने का अधिकार न था। प्रजा की भावनाओं का निरादर करने वाले वेन को ऋषियों ने कुशाओं से विनष्ट कर दिया। भृगु ने स्वर्ग कण्टक नहुष को शाप देकर पृथ्वी चारी सर्प बना दिया। मैत्रेय ने महाक्षय रोकने का परामर्श न मानने पर दुर्योधन को शाप दे दिया।

ऋषिगण विशेष शासकों के हेतु सार्वभौम सत्ता के समर्थक थे। वेद व्यास ने युधिष्ठिर को भरत और राम की तरह राजसूय यज्ञ करने का परामर्श दिया। राजसूय यज्ञ के लिये सार्वभौम सत्ता आवश्यक थी। अर्जुन की दिग्विजय यात्रा में याज्ञवल्क्य का शिष्य स्वस्तिवाचन करता जा रहा था।

## (८) ऋषियों की सामाजिक प्रतिष्ठा -

देवों में -

देवगण ऋषियों का अभिनन्दन करते थे। बृहस्पति देवता तथा असुरों द्वारा पूजित थे। इन्द्र ऋषियों की पूजा करता था। इन्द्र ने नारद और पर्वत की अर्चना करके कुशल प्रश्न पूछा। बृहस्पति से इन्द्र ने करबद्ध होकर श्रेय विषयक उपदेश श्रवण करना चाहा। देवराज ने अगस्त्य का स्वागत कर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गौ स्वीकार करने का अनुरोध किया। नर नारायण देवताओं के द्वारा आर्थित थे। सूर्यनारायण ने वसिष्ठ का स्वागत ऋषि श्रेष्ठ कहकर किया। अग्नि ने मंदपाल के द्रोण नामक शार्ङ्ग पुत्र को ऋषि तथा उसके वचन को वेद मानकर आदेश मानने का निश्चय व्यक्त किया था।

देवगण महर्षियों के आश्रमों में जाकर अर्चना करते थे। देवताओं ने दधीच के आश्रम में जाकर उन्हें प्रणाम किया। नर नारायण के समीप जाकर देवगण आराधना करते थे। स्वयं इन्द्र ने तपोधन ऋषियों की अर्चना की थी।







## नाग, गन्धर्व, अप्सरादि में -

नागों द्वारा ऋषिगण श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। नाग लोक के नागों ने उसे जो प्रणाम कर पाद्य, अर्घ्य, निवेदन करते हुए स्वागत किया। गंधर्वों में ऋषियों की प्रतिष्ठा थी। विश्वावसु ने गाङ्गातल्लय की प्रदक्षिणा करके महर्षि को प्रणाम किया। अगस्त्य द्वारा समुद्रपान किये जाने पर गन्धर्वगण प्रसन्न होकर वाद्य वादन कर रहे थे। अप्सराएं महर्षियों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करती थीं। मेनका ने विश्वामित्र को प्रणाम किया। वर्गा नारद का अभिवादन कर महर्षि के सम्मुख स्थित हो गई। पक्षियों में महर्षियों का सम्मान होता था। पक्षिराज गरुड़ ने महर्षि दधीचि के सम्मान में एक पंख विसर्जित कर दिया।

कतिपय असुर ऋषियों के प्रति आदर व्यक्त करते थे। वृत्रासुर ने ऋषियों को विनत होकर प्रणाम किया तथा तपस्वी होने से ऋषियों को पुण्यतम बताया। प्रह्लाद स्वयं अपनी पत्नी और पुत्र विरोचन की अपेक्षा अंगिरा, उनकी पत्नी और पुत्र सुधन्वा को श्रेष्ठतर मानते थे। नदियों की अधिष्ठात्री देवियाँ ऋषियों के प्रति विनत होती थीं। गंगा ने परशुराम के समीप जाकर प्रार्थना की।

## राजवर्ग में -

महाभारतीय ऋषियों के सम्मान में राजाओं के मस्तक झुक जाते थे। कतिपय नृपति महर्षियों के आश्रम में जाकर सम्मान प्रकट करते थे। वसुमान् जनक भृगुवंशी महर्षि के आश्रम में जाकर श्रद्धा विनत होकर महर्षि के समीप बैठ गये। जनमेजय ने अपने विषय में रहने वाले श्रुतश्रवा के समीप जाकर नमस्कार किया। दुष्यंत कण्व का दर्शन करने महर्षि के आश्रम में गया। शर्याति ने च्यवन की तपोभूमि में जाकर कन्या के अपराध के लिये महर्षि से क्षमा पावना की प्रार्थना की। पत्नी ने सती के सम्मान में







राजधानी में पधारने पर राजाओं द्वारा महर्षियों का सम्मान किया जाता था। कृष्ण द्वैपायन के आगमन पर जनमेजय ने सदस्यों सहित खड़े होकर महर्षि का स्वागत किया। कराल जनक ने वसिष्ठ का अभिवादन करके नम्र, मधुर स्वल्प वाणी में चर्चा आरंभ की। पुरोहित और अंतःपुर को आगे करके आसन बिछाकर, विविध रत्नों को सागने रखकर, मरतक पर अर्घ्य धारण करके शुकदेव का स्वागत किया। परीक्षित ने गौरमूल का सहर्ष स्वामत किया। अकृतव्रण के पधारने पर क्षेत्रवाहन महर्षि के सम्मान में खड़ा हो गया।

नारद के आगमन पर युधिष्ठिर ने भ्राताओं के साथ उठकर स्वागत किया तथा उपयुक्त आसन समर्पित कर रत्न एवं अन्य वस्तुएं प्रदान कर महर्षि की अर्चना की। द्रुपद ने उपयाज का पादपीड़न करके प्रियवाणी से महर्षि का अभिनंदन किया। वेदव्यास के बैठने के लिये जन्मेजय ने सुवर्ण का आसन बिछवाया। शुक के आगमन पर ययाति ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा विनम्रभाव से महर्षि के पार्श्व में स्थित हो गया। संवरण ने वसिष्ठ को अभ्युत्थान पूर्वक प्रणाम करके अर्घ्य प्रदान किया।

राजागण महर्षियों की योग्यता का परिचय प्राप्त कर उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करते थे। जनक पाँच सौ आचार्यों को लेकर शास्त्रार्थ में पराजित करने वाले पंचशिख के पीछे-पीछे चल पड़ा था।

राज परिवार के अन्य सदस्य महर्षियों की उपासना करते थे। भीष्म को महर्षियों का उपासक बताया गया है। भीष्म ने ऋषियों के स्वागत में मणि और कान्चन के आसन बिछवाकर महर्षियों को अर्घ्य देकर आसीन कराया। कृष्ण ने महर्षियों को प्रणाम करके कुशल समाचार पूछा। अर्जुन ने वेद व्यास और नारद का अभिवादन कर अस्त्र का निवर्तन कर लिया। कौरवों ने पाण्डवों को लाने वाले महर्षियों का आगे







## ऋषि समाज में -

ऋषि समाज में विशिष्ट ऋषि प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। अगस्त्य, जरत्कारु, सनत्कुमार तथा लोमश जैसे ऋषियों की अन्य ऋषि स्तुति करते थे। अगस्त्य की अन्य ऋषियों ने स्तुतिपूर्वक उपासना की। सनत्कुमारों के आगमन पर उशना ने वृत्रासुर के साथ महर्षि की पूजा की। ऋषिगण लोमश की स्तुति करते थे। जरत्कारु को पत्नी के साथ शयनगृह की ओर पदार्पण करते देखकर ऋषियों ने स्तुति प्रारंभ कर दी।

## समाज के विभिन्न वर्गों में -

समाज के अन्य व्यक्ति, ऋषियों के प्रति आदर व्यक्त करते थे। तुलाधार ने जाजलि का स्वागत करते हुए महर्षि की पूजा की। हस्तिनापुर वासी तथा अन्य ग्रामवासियों ने पाण्डवों को लाने वाले महर्षियों का स्वागत पृथ्वी पर मस्तक रखकर अभिवादन करते हुए किया।

महर्षियों को विषय विशेष का ज्ञान प्रदान करने वाले व्यक्ति भी उनकी महत्ता के प्रति विनत हो जाते थे। तुलाधार से उपदेश ग्रहण करने आये जाजलि का तुलाधार ने यथोचित सम्मान किया। महाभारत का महान् वक्ता सूत ऋषियों के सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक हो गया। जनक के समीप मोक्षधर्म का रहस्य जानने को पधारे शुकदेव का जनक ने समुचित स्वागत किया।

ऋषिगण समाज में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे, अतः उनके इतिवृत्तों की चर्चा समाज में रुचिपूर्वक की जाती थी। विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति पर महर्षियों को भोजन कराया जाता था। सत्यवती ने कौसल्या? को नियोग के लिये प्रस्तुत कर लेने पर देवर्षि, ब्राह्मण और अतिथियों को भोजन कराया। ज्योष व्यक्ति और ऋषि की







उपस्थिति में ज्येष्ठ के पहिले ऋषि को प्रणाम किया जाता था। अर्जुन ने स्वर्गलोक से लौटकर सर्वप्रथम धौम्य के चरण स्पर्श किए। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने महर्षियों के सम्मुख राज्य और राष्ट्र का समाचार सुनाया। ऋषियों के सम्मुख पारिवारिक विषयों पर स्पष्ट रूप से चर्चा की जा सकती थी। पाण्डवों ने नारद के सम्मुख द्रौपदी के साथ सहवास विषयक निर्बन्ध के नियम निश्चित किये।

राजा अमात्य और ब्राह्मणों की अपेक्षा ऋषियों की सम्मति अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती थी। नहुष द्वारा च्यवन का मूल्य एवं चिन्तन, अमात्य तथा ब्राह्मणों के परामर्श पर क्रमशः एक लक्ष, एक करोड़ मुद्रा तथा सारा राज्य निश्चित करने पर च्यवन ने ऋषियों का परामर्श प्राप्त करने का आदेश दिया। फलतः एक गोजात ऋषि ने च्यवन का मूल्य एक गौ निर्धारित कर समुचित व्यवस्था दी थी।

### (९) ऋषियों के प्रति व्यवहार -

#### अभिवादन विधि -

जिस समूह में ऋषि उपस्थित होते थे वहां सर्वप्रथम ऋषियों का अभिवादन किया जाता था। अर्जुन ने स्वर्ग से लौटने पर युधिष्ठिर से प्रथम धौम्य का अभिवादन किया। गोविन्द, साहित्य की तथा अन्य कौरव पाण्डवों ने व्यास आदि ऋषियों का अभिवादन करके शरशय्यागत भीष्म का अभिवादन किया।

रथारूढ़ क्षत्रिय रथ से उतरकर ऋषियों का अभिवादन करते थे। शांतिदूत, श्रीकृष्ण ने ऋषियों का अभिवादन रथ से उतरकर किया। भीष्म की शरशय्या को घेरकर स्थित ऋषियों का अभिवादन गोविन्द, सात्यिकी तथा पंचपाण्डवों ने रथ से उतरकर किया।

अभिवादन के कतिपय अवसरों पर संभवतः दाहिना हाथ ऊपर उठाया जाता था। गोविन्द प्रभृति ने ऋषियों का अभिवादन करते समय दाहिना हाँथ ऊपर







उठा लिया। परिव्राजक और ऋषियों के समागम में पाणि स्पर्श किया जाता था। सप्तर्षियों से समागम होने पर एक परिव्राजक ने ऋषियों का विधिपूर्वक पाणिस्पर्श किया।

### सम्मान प्रदर्शन की विशिष्ट विधियाँ -

ऋषियों के प्रति कतिपय विशिष्ट विधियों द्वारा श्रद्धा व्यक्त की जाती थी। राजागण ऋषियों के समीप जाते समय राजचिन्हों का परित्याग कर देते थे। दुष्यन्त ने कण्व आश्रम में प्रवेश करते समय उपवन द्वार पर राधिनि, अश्वसंबाधा तथा पदातियों को एवं आश्रम द्वार पर मंत्रियों एवं पुरोहित को स्थगित कर राजचिन्हों से विरहित हो आश्रम में प्रवेश किया। महर्षियों के आसीन हो जाने पर सभ्यजन आसन पर बैठा करते थे। महार्थ्य आसनों के ऊपर ऋषियों के आसीन हो जाने पर भीष्म आदि ने आसन ग्रहण किया। गरुड़ को वज्र प्रहार से व्यथा होने पर भी दधीच के सम्मान में उसने एक पक्ष परित्याग कर दिया था। परीक्षित ने शमीक के सम्मानार्थ प्रश्न पूछते समय धनुष ऊपर उठा लिया था।

### उपेक्षा के कतिपय प्रसंग -

कतिपय व्यक्तियों द्वारा कुछ अवसरों पर ऋषियों की उपेक्षा किये जाने का विवरण प्राप्त होता है। हव्वादी नरेश ऋषियों के परामर्श को ठुकरा देते थे। दुर्योधन ने द्यूत के अवसर पर द्रोण और कृपाचार्य जैसे ऋषियों की उपेक्षा कर दी। दुर्योधन ने पाण्डवों से संधि करने विषयक कण्व के परामर्श को प्रलाप की संज्ञा दी। कृष्ण के अनुसार दुर्योधन ने ऋषियों के तर्कयुक्त कथन की पूर्ण उपेक्षा कर दी।

कतिपय व्यक्तियों के संबंध में तिरस्कार युक्तवाणी का प्रयोग करते पाये जाते थे। दम्भोद्भव ने नर-नारायण के बल और सामर्थ्य के संबंध में तुच्छता की भावना दर्शायी। नारद ने जेगीषव्य के तपोबल का उपहास किया। कृश ने शमीक को







शववाही तपस्वी कहकर अनादर का भाव व्यक्त किया। दुर्योधन ने द्रोण को स्वप्न प्रदत्त उत्तम वृत्ति का भोगी बताकर मधुलिप्तक्षुर (मीठी छुरी) की संज्ञा से विभूषित किया। विश्वामित्र के सैनिकों ने वसिष्ठ के अनुनय की उपेक्षा करके होमधेनु का बलात् अपहरण किया।

उपेक्षा की चरम परिणति कभी-कभी शारीरिक आघात के रूप में देखी जाती थी। रथाघात से भुलुण्ठित होने वाले ऋषियों का विवरण मिलता है। कश्यप महर्षि को किसी धनोन्मत्त वैश्य ने रथ के आघात से मूलुण्ठित कर दिया। पाद प्रहार जैसे कुकृत्य का विवरण मिलता है। गर्वाविभूत नहुष ने अगस्त्य के मस्तक पर पाद प्रहार कर दिया। नहुष के दुराग्रह के कारण सप्तर्षियों को शिविका भी वहन करनी पड़ती थी। कल्माषमाद ने मार्ग परित्याग न कर शक्ति के पृष्ठ भाग में कशाघात (चाबुक प्रहार) कर दिया।

आसुर राक्षसों द्वारा ऋषियों का भक्षण करने तथा पारिवारिक पवित्रता नष्ट करने के विवरण प्राप्त होते हैं। किकर दानव ने कल्माषपाद कर आवेशित होकर वसिष्ठ के पुत्रों का भक्षण कर डाला। कालेय दानवों के अत्याचार विख्यात थे। ऋषि पत्नियों तथा ऋषि वधुओं के अपहरण का विवरण मिलता है। गृत्स राक्षस ने भृगु पत्नी का अपहरण किया। अत्रि की पौत्री भद्रा का अपहरण वरुण ने कर लिया था।

### ऋषियों का शिष्ट आचरण -

ऋषिगण शिष्टाचार के आवश्यक नियमों का यथावत पालन करते थे। समिति में वृद्धतम महर्षि किसी विषय का आरंभ करता था। प्रस्ताव रखते समय खड़ा होना शिष्टता के अन्तर्गत आता था। उक्त नियमों के आधार पर वृद्धतम महर्षि ने कौरवों की सभा में पाण्डवों का परिचय खड़े होकर दिया। सभास्थल में प्रवेश करते समय द्वारपाल की अनुमति लेना आवश्यक था। अतः अष्टावक्र और श्वेत केतु ने जनक के सभाद्वार



१११

...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...

...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...

...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...

...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...  
...के अन्तर्गत ...



पर जाकर द्वारपाल से निवेदन किया कि उन्हें भीतर प्रवेश करने का अदेश दिया जाए। कतिपय ऋषि द्वारपाल के माध्यम से राजा की अनुमति प्राप्त करते थे। गौस्मुख ने द्वारपाल द्वारा आगमन की सूचना परीक्षित को देकर प्रवेश की अनुमति प्राप्त की। महर्षिगण किसी चर्चा का श्रवण करने के लिये पूर्वानुमति लेना आवश्यक समझते थे। कौरव सभा में कृष्ण चर्चा सुनने के अभिलाषी महर्षियों ने कृष्ण से मिलकर पूर्वानुमति प्राप्त कर ली। महर्षिगण श्रोता को अन्यमनस्क देखकर बातचीत बंद कर देते थे। चण्ड कौशिक ने ब्रह्मदत्त को चिन्तित जानकर चर्चा समाप्त कर दिये जाने की अनुमति दे दी।

ऋषिगण सामाजिक प्रथाओं को आदर की दृष्टि से देखते थे। यथासंभव उनका उल्लंघन न करते। महाभारत काल में मृत व्यक्ति के संबंधियों को एक-एक मास का अशौच रहता था। उक्त काल में प्रेत व्यक्ति के उद्देश्य से नियमित जलदान किया जाता था। नारद, देवस्थान, कश्यप और वेदव्यास जैसे ऋषि युधिष्ठिर आदि के अशौच की निवृत्ति पर ही उनसे मिलने गये। नारद ने अन्य मुनियों से परामर्श कर शोक संविग्र युधिष्ठिर आदि से समयोचित चर्चा आरंभ की। ऋषिगण कतिपय नैतिक नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करते थे। महिलाओं के सम्मुख सहवास विषयक चर्चा करना अनैतिक था। अतः नारद ने द्रौपदी को अनेक आशीर्वाद देकर अंतःपुर में जाने का आदेश दिया। तत्पश्चात् पाण्डवों के साथ एकान्त में चर्चा करके प्रति पाण्डव द्रौपदी के साथ एक-एक मास सहवास का नियम बताया। किसी व्यक्ति द्वारा एक वचन स्वीकार कर लेने पर उसी व्यक्ति द्वारा द्वितीय वचन स्वीकार कराना अनुचित था। वसिष्ठ ने पराशर को परामर्श देकर प्राणियों के सर्वनाश से विरत कर दिया। पराशर राक्षस सत्र द्वारा राक्षस मात्र का संहार करने को प्रस्तुत हये तो वसिष्ठ ने पुनः निषेध को अनुचित मानकर निषेध न किया था।







उपकारी व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना श्लाघनीय था। ययाति ने माधवी द्वारा गालव की गुरु दक्षिणा चुकाने का मार्ग प्रशस्त किया। उक्त उपकार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए गालव ने 'पुनर्दज्ञयाव' वाक्य का उच्चारण किया था। ज्येष्ठ व्यक्ति द्वारा अपकृत किये जाने पर भी महर्षि मर्यादा का ध्यान रखते थे। बृहस्पति ने संवत् से धन, यजमान और गृह्य देवता छीनकर निष्कासित कर दिया, पर मरुत्त द्वारा ऋत्विज बनने की प्रार्थना पर महर्षि ने बृहस्पति को पूज्य बताकर उनकी अनुमति से ही यज्ञ करने का निश्चय व्यक्त किया।

महाभारत के कतिपय प्रसंगों से ऋषियों की व्यवहारिक चतुरता का परिचय मिलता है। ऋषिगण क्रूर व्यक्ति की वचनबद्ध क्रूरता से अपनी सुरक्षा कर लेते थे। उत्तंक ऋषि ने पुरुषाद सौदास का मित्र बनकर पुनः उनके समीप न लौटने का आदेश उसी से प्राप्त करके जीवन रक्षा की थी। ऋषिगण उद्देश्य की सूचना देकर व्यक्ति विशंष को सर्वतः पूर्ण चर्चा का अवसर प्रदान कर देते थे। वेद व्यास ने परामर्श न मानने पर मैत्रेय द्वारा शाप देने की बात धृतराष्ट्र को बता दी, तथापि चर्चा का पूर्ण अवसर देने के उद्देश्य से वे मैत्रेय के आने के प्रथम चले गये। कालक वृक्षीय क्षेमदर्शी मुनि, वापसी विद्या द्वारा राज पुरुषों का चरित जानकर राज पुरोहित तक बन गया। कतिपय ऋषि वाक्य विशारद तथा व्यवहार कुशल बताए गए हैं। जैमिनी सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल को वाक्य विशारद तथा व्यवहार कुशल बताया गया है।

**ऋषियों द्वारा तप शक्ति से किए गए अद्भुत कार्य -**

महाभारत में महाभारतीय ऋषियों द्वारा सम्पन्न किए गए अत्यंत अद्भुत कार्यों का विशद वर्णन है, जिन्हें जानकर घोर आश्चर्य होता है। उन अद्भुत कार्यों से हम प्राचीन ऋषियों को वैज्ञानिक, महान् तांत्रिक, महान् योगी एवं महान् तथा अत्यधिक योग्य चिकित्सक, ये सभी उपलब्धियाँ एक साथ ही दे सकते हैं। वे शिक्षा, विज्ञान, योग, तन्त्र, साहित्य तथा युद्ध कौशल में एक साथ प्रवीण थे।







महाभारत कालीन ऋषियों ने अपने ऐसे दृष्टान्त प्रस्तुत किए हैं जिनमें सहज ही विश्वास नहीं आता।

सभी अद्भुत कार्य ऋषियों की घोर तपस्या का ही फल है। तपस्या के द्वारा वे अनेकानेक लौकिक एवं अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त करके ही वे इस तरह के कार्य प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हो सके हैं। किन्तु इस प्रकार के कार्य करने की शक्ति प्रत्येक महर्षि में नहीं थी। कतिपय अत्यंत शक्तिशाली ऋषियों ने ही इस प्रकार के दृष्टान्त प्रस्तुत किए हैं। उनमें सर्वप्रमुख व्यास, अगस्त्य, वसिष्ठ तथा महर्षि च्यवन ही हैं। अन्य ऋषियों ने जो अद्भुत कार्य किया है वे अत्यंत कम संख्या में हैं। ऋषियों के इस प्रकार के कार्य से उनकी तपस्या की चरम स्थिति प्रतिलक्षित होती है। कतिपय प्रमुख घटनाएं दृष्टान्त स्वरूप प्रस्तुत हैं :-

महर्षि अगस्त्य द्वारा संपादित अनेक आश्चर्यजनक कार्य -

महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपःशक्ति के प्रभाव से अनेक आश्चर्यजनक कार्य उपस्थित किया है। महाभारत काल में महर्षि अपने तपःशक्ति का उपयोग लोक कल्याणार्थ ही करते थे। ऐसे ही कुछ लोक कल्याण के लिए अद्भुत कार्य महर्षि अगस्त्य के द्वार किए गए हैं।

(क) एक समय असुरों ने देवताओं को परास्त कर उनका तेज नष्ट कर दिया था। तब देवतागण महर्षि अगस्त्य की शरण में गए। महर्षि ने उन्हें अभयदान देते हुए अपनी अग्नि की भांति प्रज्वलित क्रोधाग्नि से उस समय सहस्रों दानवों को दग्ध कर दिया। इस प्रकार महर्षि ने दानवों से देवताओं की रक्षा की।

(ख) सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहने वाले (सर्वभूत हिते रतः) महा तेजस्वी अगस्त्य ने बारह वर्षों तक चलने वाला यज्ञ किया। किन्तु उसी समय इन्द्र ने वहां वर्षा बंद कर दी। इससे चिंतित हो समस्त ऋषिगण अगस्त्य की शरण में







गए। तब अगस्त्य ने कहा - यदि इन्द्र वर्षा नहीं करेंगे तो मैं स्पर्श यज्ञ संचित अन्न का व्यय किए बिना, केवल स्पर्श मात्र से देवताओं को तृप्त करने की विधि स्पर्श यज्ञ है, करूंगा। यदि इन्द्र जल बरसाने के लिये की गई प्रार्थना को पूरा नहीं करेंगे तो मैं स्वयं इन्द्र हो जाऊंगा। 'स्वयंमिन्द्रो भविष्यामि जीवयिष्यामि च प्रजा' ऐसा कहते ही महर्षि अगस्त्य के तप के प्रभाव से समस्त वस्तुएं वहां प्रस्तुत हो गई। अन्य सभी महर्षियों ने उनके तपोबल से सम्पन्न इस महान् आश्चर्यजनक कार्य को देखा। इन्द्र ने भी महर्षि के तपोबल को देखकर वर्षा आरंभ कर दिया।

(ग) वातापि तथा इल्वल वध - मायावी दैत्य वातापि तथा इल्वल अपने दुष्कर्मों से देवताओं को त्रस्त करने लगे थे। वातापि इच्छानुसार रूप धारण कर सकने में समर्थ था तथा इल्वल को यह शक्ति प्राप्त थी कि यदि वह यमलोक गए हुए भी किसी प्राणी का नाम लेकर बुलाया तो वह माया से सशरीर जीवित दिखायी देने लगता। अपनी इन शक्तियों से दोनों दैत्यों ने महान् त्रास उपस्थित कर दिया था। त्रस्त देवता अगस्त्य की शरण में गए। अगस्त्य ने उन्हें आश्वासित कर स्वयं वातापि तथा इल्वल को समाप्त करने चले गये। इल्वल के यहां जाकर वे इल्वल द्वारा पकाए हुए उसके भाई वातापि के मांस का भक्षण कर लोकहित के लिए उस राक्षस को पचा लिया और बाद में इल्वल का भी वध कर दिया।

(घ) महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपः शक्ति से एक कन्या का निर्माण किया था। बाद में उसे राजा को दकर उसे युवावस्था प्राप्त होने पर उससे विवाह किया था। वह कन्या लोमामुद्रा ही थी।

(ङ) विन्ध्यपर्वत को बढ़ने से रोकना :- सूर्य का मार्ग अवरुद्ध करने के उद्देश्य से विन्ध्य ने अपना विस्तार प्रारंभ कर दिया। इससे कष्ट पाने वाले देवता







महर्षि अगस्त्य के पास गए। अगस्त्य ने उन्हें आश्वासन देकर विंध्य के पास आकर कहा - पर्वत श्रेष्ठ। मैं किसी कार्य से दक्षिण दिशा की ओर जा रहा हूँ, अतः मुझे मार्ग प्रदान करें और जब तक मैं लौट कर नहीं आता तुम ऐसे ही झुके रह कर मेरी प्रतीक्षा करना। विंध्य के साथ ऐसा नियम करके मित्रावरुण नंदन अगस्त्य दक्षिण चले गए और फिर लौटे ही नहीं।

(इ) अगस्त्य द्वारा समुद्रपान : - कालेय राक्षसों द्वारा त्रस्त देवताओं के अनुरोध पर महर्षि अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया।

महर्षि दधीच द्वारा तपस्या के बाद किया गया अद्भुत कार्य -

कालकेय राक्षसों से भयभीत हो देवता ब्रह्माजी के कहने पर दधीच के सम्मुख उपस्थित हुए। उनका आश्रम सरस्वती नदी के तट पर था। वहाँ दिव्य कांति युक्त महातपस्वी, तपशक्तिशाली दधीच से उन्होंने ब्रह्म के बताए अनुसार ही कहा। तब महर्षि दधीच ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा - देवगण। आज मैं वही करूंगा, जो आप सबके हित में हो। अपने इस शरीर को लोकहित में मैं स्वयं ही त्याग देता हूँ। ऐसा कहकर महर्षि ने तपःशक्ति से सहता ही अपने प्राणों को त्याग दिया। तत्पश्चात् उनकी सुदृढ़ अस्थियों से वज्र का निर्माण कर देवताओं ने वृत्रासुर आदि कालकेय राक्षसों का वध किया।

इस प्रकार महर्षि दधीच ने लोक संग्रह के लिए अपने प्राण अपनी अस्थियाँ तक देने का अद्भुत कार्य किया। वे महान् उदार चेता महर्षि थे। तप से उन्होंने अपने का इतना पवित्र एवं सुदृढ़ बना लिया था कि उनकी अस्थियों से बने वज्र से महान् बलशाली राक्षसों का वध किया जा सका।

महर्षि दधीच का इस प्रकार तुरंत प्राण त्यागना अत्यंत अद्भुत कार्य था।







## चण्डकौशिक मुनि का अद्भुत कार्य -

चण्ड कौशिक मुनि ने अपनी तपःशक्ति से राजा बृहद्रथ को फल भक्षण के द्वारा पुत्र प्राप्ति करायी। जो बाद में जरासन्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ।

## नचिकेता का अद्भुत कार्य -

महर्षि उदालक के पुत्र नचिकेता ने अपने प्रश्न के समाधान हेतु यमराज के दरबार तक जाकर अपनी जिज्ञासा की शांति की थी। नचिकेता ने यह कार्य अपनी तपःशक्ति से सम्पन्न किया।

महर्षि लोमश द्वारा प्राप्त अनुस्मृति और दिव्य दृष्टि के प्रभाव से युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध में मारे गए लोगों की संख्या तथा मृत्यु उपरान्त गति का वर्णन धृतराष्ट्र के सम्मुख किया।

भृगुवंशी विपुल ने योगशक्ति से गुरु पत्नी के शरीर में प्रवेश कर इन्द्र से उसकी रक्षा की थी।

महर्षि याज एवं उपयाज ने तपःशक्ति से यह अत्यंत अद्भुत कार्य किया कि उन्होंने द्रुपद को यज्ञकुण्ड से हवन द्वारा एक पुत्री एवं एक पुत्र (द्रौपदी कृष्णा एवं धृष्टन्म) प्राप्त कराया।

और्व मुनि ने जन्म लेते ही क्षत्रियों की नेत्र ज्योति अपने अद्भुत प्रकाश से छीन ली थी। किन्तु बाद में क्षमा याचना करने पर तथा अपनी माता के कहने पर उन्होंने अपनी तपः शक्ति से उन्हें पुनः नेत्र ज्योति प्रदान की।

राजा सोमक के पुरोहित ने उनके एक पुत्र जन्तु का होम करके उनके लिए अपनी तपः शक्ति से सौ पुत्र उत्पन्न करने का अद्भुत कार्य किया।



१८१

- आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

- आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः

आक नमः कि नमः तद्विधिः

इति आक नमः कि नमः तद्विधिः



ऋषभ नामक ऋषि ने कई सौ वर्ष तपस्या की। उन्होंने तप में विघ्न डालने वालों पर मेघ द्वारा गर्जना एवं ओलावृष्टि करवाने जैसा आश्चर्यजनक कार्य किया।

महर्षि च्यवन ने मान्धाता की जो उत्पत्ति की थी वह भी कम आश्चर्यजनक कार्य नहीं था। राजा युवनाश्व के पेट से मान्धाता की उत्पत्ति महर्षि च्यवन के तप के प्रभाव से ही हुई थी। महर्षि च्यवन ने इन्द्र को भी यज्ञ में स्तम्भित कर दिया था तथा बाद में अश्विनी देवताओं को भी यज्ञ में सोमपान का अधिकारी बनाया था। क्योंकि राक्षस देवताओं को आतंकित कर समुद्र में जाकर छिप जाते थे। अतः महर्षि अगस्त्य ने समुद्र जल का पान कर महासागर को जलविहीन कर दिया। जिससे कालेय राक्षसों को छिपने की जगह नहीं मिली और देवताओं ने आसानी से उनका संहार कर अन्त कर दिया। इस प्रकार महान लोक कल्याण का अद्भुत कार्य महर्षि अगस्त्य ने अपनी पतःशक्ति से पूर्ण किया।

इस प्रकार से महर्षि अगस्त्य ने अनेकों ऐसे आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न किए हैं जो लोक, देवता तथा जन कल्याण के लिये थे।

**महर्षि वसिष्ठ द्वारा प्रतिपादित अद्भुत कार्य -**

देवताओं का खली नामक दानवों से युद्ध हो गया। खली दानवों को ब्रह्माजी द्वारा यह वर प्राप्त था - मानसरोवर में डुबकी लगाने से उन्हें नूतन जीवन प्राप्त होगा। अतः जितने दानव हताहत होते उन्हें दूसरे दानव उठाकर सरोवर में फेंक देते और सरोवर के जल में डुबकी लगाते ही वे पुनः जीवित हो उठते। इस तरह से करने पर देवता उनसे त्रस्त हो गए। वे उन्हें समाप्त ही नहीं कर पा रहे थे। अतः वे वसिष्ठ जी के पास गए। तब दयालु वसिष्ठ ने देवताओं की सहायता की एवं उन खली दानवों को अपने तेज से दग्ध कर डाला। यही नहीं, उन महातपस्वी मुनि ने कैलाश की ओर







प्रस्थित हुई गंगा को उस दिव्य सरोवर में ले गए। गंगा जी ने उसमें आते ही सरोवर का बांध तोड़ डाला। गंगा से सरोवर का भेदन होने पर जो स्रोत निकता वही सरयू नदी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन्द्र वृत्रासुर संग्राम में महर्षि वसिष्ठ ने इन्द्र की सहायता की थी। उन्हें अपनी शक्ति भी प्रदान की थी तथा उन्होंने रथन्तर साम के द्वारा इन्द्र को सचेत किया।

वसिष्ठ ने अपने तपोबल से राजा संवरण के राज्य में जहाँ बारह वर्षों तक वर्षा नहीं हुई थी, वर्षा करवाने जैसा लोकोपयोगी कार्य किया था।

**महर्षि व्यास द्वारा संपादित अनेक कार्य -**

महर्षि व्यास ने अत्यंत कठोर तपस्या की थी। उन्हें तप से अनेक शक्ति प्राप्त थी। महाभारत में उनके द्वारा सम्पन्न अनेक आश्चर्य में डालने वाली घटनाएँ वर्णित हैं। कतिपय प्रमुख घटनाएँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत हैं।

महर्षि व्यास ने अपनी तपःशक्ति से युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या प्रदान की थी। जिसके विधिवत प्रयोग से समस्त तथा देवता आदि को भी देखने में समर्थ हो सकते थे। यही विद्या युधिष्ठिर ने अर्जुन को उस समय दी जब वे दिव्य अस्त्र प्राप्त करने हिमालय में गये थे। इसी विद्या के प्रभाव से ही अर्जुन के यात्रा के समय उनके मार्ग की समस्त बाधाएँ दूर हो गई तथा अर्जुन ने निर्विघ्न अपना उद्देश्य पूर्ण किया था।

युधिष्ठिर के राजशय यज्ञ के बाद महर्षि वेद व्यास ने महाभारत युद्ध होने की भविष्यवाणी कर दी थी।

महात्मा महर्षि वेदव्यास को तपस्या से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। जिससे वे तीनों काल की बातों को जान लेते थे। इसी कारण जब पाण्डवों को वनवास दिया







गया तब उन्होंने धृतराष्ट्र को भविष्य की बात बताकर सचेत किया था परन्तु धृतराष्ट्र ने उनकी बात नहीं मानी। फलस्वरूप युद्ध हुआ।

व्यास जी ने एक स्थान पर स्वयं धृतराष्ट्र से कहा है -

न कृतं यैः पुरा कैश्चित् कर्म लोके महर्षिभिः ।

आश्चर्यभूतं तपसः फलं तप् दर्शयामि वः ॥

पूर्वकाल के किन्हीं महापुरुषों ने संसार में अब तक जो चमत्कार पूर्ण कार्य नहीं किया था वह भी आज मैं कर दिखाऊँगा। आज मैं तुम्हें अपनी तपस्या का आश्चर्यजनक फल दिखाता हूँ।

महर्षि व्यास ने ऐसा कहकर धृतराष्ट्र से पूछा कि - तुम मुझसे कौन सी अभीष्ट वस्तु पाना चाहते हो? किसको देखने, सुनने अथवा स्पर्श करने की तुम्हारी इच्छा है? उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। तब गांधारी एवं कुन्ती ने व्यास जी से अपने मरे हुए पुत्रों के दर्शन का अनुरोध किया। यह सुनकर महर्षि व्यास ने कहा - ये देवता, गांधर्व और महर्षि - सब लोग आज मेरी चिरसन्चित तपस्या का प्रभाव देखें। ऐसा कहकर महर्षि व्यास उन सबको गंगा तट पर ले गए और अपनी तपःशक्ति से यह अद्भुत कार्य प्रकट किया। व्यास जी के प्रभाव से कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गए समस्त कौरव पाण्डव वीर गंगा जी के जल से प्रकट होने लगे। उस समय सत्यवती नंदन व्यास ने अपने तपोबल से नेत्रहीन धृतराष्ट्र को भी दिव्य नेत्र प्रदान किया। गांधारी श्री दिव्य ज्ञानबल से सम्पन्न हो गई। उन सभी ने आश्चर्यजनक रूप से प्रकट हुए उस रोमांचकारी दृश्य को देखा। कुछ ही क्षण बाद वह दृश्य अदृश्य हो गया।

इस प्रकार व्यास ने अपने तपोबल से ऐसा असंभव एवं रोमांचकारी कार्य कर दिखाया। ऐसे ही महर्षि व्यास ने जनमेजय को भी अपने स्वर्गीय पिता परीक्षित का दर्शन कराया था।







व्यास जी ने गांधारी को सौ पुत्रों का वरदान दिया था और घी के घड़े से व्यास जी ने गांधारी के लिए सौ पुत्र उत्पन्न किए थे और एक कन्या भी उत्पन्न हुई। व्यास की कृपा से गांधारी एक सौ एक सन्तान की माता बनी।

व्यास स्वयं भी दिव्य दृष्टि से सम्पन्न थे। जब भी कोई संकट उपस्थित होता था तो वहाँ वे सहायता हेतु तुरंत पहुँच जाते थे। (द्रौपदी के स्वयंवर के पश्चात् शंका की स्थिति में पड़े हुए द्रुपद की सहायता करने व्यास तुरन्त वहाँ पहुँच गए थे। तब उन्होंने राजा द्रुपद द्वारा पूछने पर द्रौपदी के पूर्व जन्मों की कथा सुनाया तथा द्रौपदी के पांच पतियों से विवाह को धर्म सम्मत ठहराया।

---○○○---



पृष्ठ संख्या



## चतुर्थ अध्याय

# ऋषि प्रकृति का वर्णन



आर्य समाज

श्रीगुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव



## ऋषियों की प्रकृति का वर्णन

महाभारत के समग्र अध्ययन के पश्चात् महाभारतीय ऋषियों की प्रकृति, उनके व्यक्तित्व, स्वभाव तथा गुण-दोष सभी ज्ञात होते हैं। महाभारत काल में प्राचीन ऋषियों की अपेक्षा कुछ न्यूनताएं अधिक थी। वेदकाल तथा रामायण काल के महर्षि के दोष कम ही देखने में आते थे। किन्तु महाभारत काल के आते तक ऋषियों में क्रोध, असंयम, द्वेष, लोभ आदि न्यूनताएं प्रकट होती हैं। किन्तु शुद्धात्मा, जितात्मा तथा निर्दोष महर्षि भी महाभारत काल में पाये जाते हैं यथा वसिष्ठ आदि। औरव, परशुराम, दुर्वासा आदि के क्रोध के विशद विवरण प्राप्त होते हैं।

अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ही भारत के ऋषि मुनि आज भी अनुकरणीय माने जाते हैं। भारतीय नैतिकता के सौंदर्य रूप में महाभारतीय ऋषियों का त्याग, तपस्या, दयालुता एवं मानवता वर्णित है।

राम, कृष्ण आदि देवता भी ऋषियों का आदर उनकी स्वभावगत विशेषताओं के कारण ही करते थे। अपने विशिष्ट स्वभाव के कारण ही भारतीय ऋषिगण भारतीय संस्कृति में देव सम स्थान प्राप्त करते हैं।

इस अध्याय में पहले महाभारतीय ऋषियों की विशेषताओं का सामान्य वर्णन किया गया है तथा उसके पश्चात् कतिपय उदारता, दयालुता आदि के लिए प्रसिद्ध ऋषियों के उनके स्वभावगत अवसरों का विशद वर्णन किया गया है। महाभारतीय ऋषियों की कतिपय विशिष्ट विशेषताओं का भी उल्लेख किया है जो उन्हें अन्य काल के ऋषियों से विशिष्ट एवं भिन्न करती है।







(१) ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, संकल्प, सत्यवादिता, स्पष्टवादिता का वर्णन: -

ब्रह्मचर्य -

ऋषियों के ब्रह्मचर्य से संबंधित विवरण पाये जाते हैं। ऊर्ध्वरेता, आजीवन ब्रह्मचर्य, चरित ब्रह्मचर्य, अखण्ड ब्रह्मचारी, कौमार ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारी जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। ब्रह्मचर्य पालन करते समय ऋषि स्त्रियों के संपर्क से तथा ऋषि कन्याएं पुरुषों के संपर्क से दूर रहती थीं। मन से भी स्त्रियों का चिन्तन न करने वाले ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियों का उल्लेख पाया जाता है।

संतानोत्पत्ति से सर्वथा विरत रहने वाले ऋषिगण ऊर्ध्वरेता कहलाते थे। ब्रह्मा का दर्शन करने वाले अट्ठासी हजार पचास महर्षियों में पचास को 'प्रजावान्' तथा अट्ठासी हजार को ऊर्ध्वरेता बताया गया है। दुष्यंत के अनुसार शकुन्तला का 'ऊर्ध्वरेता कण्व' की पुत्री होना कथमपि संभव न था।

ऊर्ध्वरेता महाभागे मगवांल्लोकपूजितः ।  
चलेद्धि वृत्ताद्धर्मोऽपि न चलेत् संशितव्रतः ॥  
कथं त्वं तस्य दुहिता सम्भूता वरवर्णिनी ॥

(आदि ७१।१६, १७)

जीवन के उत्तरार्ध में विवाह करके संतानोत्पत्ति करने वाले महर्षियों का भी उनके पूर्व ब्रह्मचर्य के आधार पर ऊर्ध्वरेता कह दिया जाता था। महर्षि जरत्कारु वृद्धावस्था में नागकन्या जरत्कारु से विवाह कर आस्तीक को जन्म देने पर भी पूर्व जीवन में मन से भी स्त्री का चिन्तन न करने के कारण ऊर्ध्वरेता कहलाते थे।

जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्ध्वरेता महातपा ॥

(आदि १३।११)

मन्दपाल को जरिता से ब्रह्मवादी पुत्रों को उत्पन्न करने पर भी पूर्व जीवन के आधार पर ऊर्ध्वरेता ऋषियों के मार्ग का अनुयायी माना जाता था। कतिपय ऋषि-







कन्याएं भी आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करतीं थीं। कुणि-गार्ग्य की मानसी पुत्री 'सुभू' ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर स्वर्ग प्राप्ति के उद्देश्य से रात्रि पर्यन्त पति निवेश किया था।

किसी निश्चित काल अथवा निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य में स्थित रहने का विवरण पाया जाता है। कहा जाता है कि ऋषि कुमार कच को पाँच सौ वर्षों में 'संजीवनी' की प्राप्ति हो जाने पर भी वह उक्त अवधि तक ब्रह्मचर्य में स्थित रहा था। कतिपय व्यक्ति अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। द्रोण ने धनुर्वेद के अध्ययन पर्यन्त 'अग्नि वेश्य' के आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ऋषि कन्याएं उद्देश्य की सिद्धि पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। भरद्वाज पुत्री सुचावनी ने इन्द्र की प्राप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण किया था। कहा जाता है कि इस ऋषि पुत्री को अन्य जन्म में इन्द्र की प्राप्ति हुई थी। बृहस्पति भगिनी को 'प्रभास वसु' से विवाह के प्रथम ब्रह्मचारिणी कहा गया है।

सामान्यतः सभी ऋषि विवाह पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। संभवतः इसी आधार पर वैवाहिक जीवन बिताने वाले ऋषियों के संबंध में ब्रह्मचारी, कौमार ब्रह्मचारी तथा अखण्ड ब्रह्मचारी जैसे शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। कच के पिता गृहस्थ धर्मी बृहस्पति को ब्रह्मचारी कहा गया है। यवक्रीत के पिता भरद्वाज के लिये कौमार ब्रह्मचारी शब्द आया है। शान्ता के पति ऋष्यक्रंग को अखण्ड ब्रह्मचारी बताया गया है। अन्य ऋषियों में गृत्समद, दधीच और संवर्त को ब्रह्मचारी, मंकणक को कौमार ब्रह्मचारी तथा असित देवल को अखण्ड ब्रह्मचारी शब्द से संबोधित किया गया है। संभवतः अनिच्छापूर्वक वीर्यपतन से ब्रह्मचर्य खण्डित न होता था, अतः नग्न स्त्री को देखकर मंकणक तथा अलम्बुसा को देखकर दधीच के वीर्य पतन हो जाने पर भी वे 'ब्रह्मचारी' बने रहे थे।

ब्रह्मचर्य की महिमा से संबंधित विवरण पाये जाते हैं। दधीच की अस्थियों से बने वज्र की सुदृढ़ता का कारण महर्षि का ब्रह्मचर्य था। बृहस्पति ब्रह्मचर्य के आधार







पर देवगुरु बन सके थे। चरित ब्रह्मचर्य सवर्त से अग्नि भीत हो गया। कतिपय मुनि ब्रह्मचर्य के कारण सुशोभित होते थे।

ब्रह्मचारी को मिलने वाले लोकों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती थी। कतिपय ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त किया था।

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन् ।

ऋष्यश्व महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः ॥ (उद्योग ४४।२०)

उत्तम लोकों में वास मिलता था। व्यास के अनुसार परमर्षियों ने ब्रह्मचर्य के द्वारा उत्तम लोकों को प्राप्त किया था। ब्रह्मचारियों को प्राप्त होने वाली 'गति' लोक में प्रसिद्ध थी। सुभद्रा अभिमन्यु को ब्रह्मचारियों की गति प्राप्त कराना चाहती थी।

### इन्द्रिय निग्रह -

इन्द्रिय निग्रह का ऋषियों के जीवन में विशेष स्थान था। महाभारत के अनुसार प्रजापति के 'द' शब्द का अर्थ पन्नग और दैत्यों के क्रमशः 'देशन और 'देभ्म' अर्थ से विपरीत ऋषियों ने 'दम या इन्द्रिय निग्रह अर्थ लगाकर तदनुसार आचरण करना प्रारंभ किया। अतः 'दम' को ऋषि जीवन का अभिन्न अंग माना जा सकता है। अनेक ऋषियों को जितेन्द्रिया तथा दमशील बताया जाता था। दधीच जितेन्द्रिय कहे जाते थे।

मुद्गल महर्षि में सत्य, धर्म, दया और धैर्य के अतिरिक्त इन्द्रियाभिजय या दम जैसे गुण विद्यमान थे। वेदव्यास में दमशीलता का इतना प्रकर्ष था कि सत्यवती की वधुओं से सन्तान उत्पन्न किये जाने की प्रार्थना करने पर महर्षि ने सम्मति दी, कि उनके बताए हुए व्रत का एक वर्ष तक पालन कर चुकने पर वे वधुएं महर्षि के साथ 'संगमन' योग्य हो सकेंगीं।

व्रतं चरेतां ते देव्यो निर्दिष्ट मिह यन्गया ।

संतत्सरं यथा नयायं ततः शुद्धे भविष्यतः ।

न ही माम व्रतो पेता उपेयात् कश्चिदङ्गना ॥ (आदि १०४।४२, ४३)







ऋषियों का इन्द्रिय निग्रह विख्यात था, अतः लोक व्यवहार में उसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। अर्जुन को इन्द्रिय निग्रह में महर्षियों के तुल्य बताया गया है।

### संकल्प -

ऋषियों के संकल्प से संबंधित विवरण पाये जाते हैं। ऋषियों के संकल्प का आविचल माना जाता था। कश्यप के अनुसार बालाखिल्य महाषियों को उनके संकल्प से डिगाना संभव न था।

ऋषियों के संकल्प की दृढ़ता उनके वचनों में पायी जाती थी। अपराधी को शाप दे चुकने पर अनुनय विनय तथा विभिन्न आग्रहों से भी शाप विमोक्ष न करने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। वसुओं को शाप दे चुकने पर उनकी अनेक अभ्यर्थनाओं पर भी वसिष्ठ शाप को व्यर्थ करने को प्रस्तुत न हुए थे। स्वयं के आग्रह पर दृढ़ रहने वाले ऋषिगण भी थे। प्रद्युम्न के प्रस्तुत न होने पर भी, लिखित ने आग्रह पूर्वक अपने हाथ कटवा कर राज दण्ड प्राप्त किया था।

ऋषियों के अविचल संकल्प को उनके कार्यों में देखा जा सकता था। उनके द्वारा अनुष्ठित कार्यों से उन्हें पीछे हटाना संभव न था। अगस्त्य द्वारा समुद्र का पान कर लिए जाने पर देवगण, कथमपि समुद्र का मोक्ष न करा सके थे। भविष्य से संबंधित कार्यों में ऋषियों का संकल्प अडिग रहता था। विन्ध्याचल वृद्धिरोध का वचन देकर दक्षिण दिशा की ओर सपत्नीक जाने वाले महर्षि अगस्त्य के लौटने का विवरण नहीं पाया जाता है।

### सत्यवादिता -

ऋषियों के सत्य प्रेम से संबंधित विवरण पाये जाते हैं। उपनिषदों में सत्य आचरण को सर्वोपरि मानने वाले ऋषियों का उल्लेख मिलता है। प्रश्नोंपनिषद् के







अनुसार अथर्वागिरस ऋषि सत्य आंचरण को सर्वोपरि मानते थे। वाल्मीकि रामायण में सत्य को उत्कृष्ट वस्तु मानने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है।

महाभारत में सत्य को ऋषियों का परम धन बताया गया है।

ऋषीणाम् सत्यमव परम् धनम् ॥

.(शांति ५६।१८)

कतिपय महर्षि सत्यवाक् और सत्यवादी कहलाते थे। मुद्गल ऋषि कोसत्वाक कहा जाता था। शमीक के अनुसार उनका पुत्र श्रृंगी सत्यवादी था। कतिपय महर्षियों में सत्य को प्रतिष्ठित माना जाता था। वृषपर्वा के अनुसार शुक्राचार्य में सत्य प्रतिष्ठित था।

असत्य भाषण से विरत रहने की घोषणा करने वाले ऋषियों का उल्लेख पाया जाता है। जरत्कारु के अनुसार वे असत्य भाषण नहीं करते थे। परिहास काल में भी असत्य भाषण न करने वाले ऋषि गण थे। वेदव्यास के अनुसार उन्होंने परिहास में भी असत्य भाषण नहीं किया था।

ऋषियों के सत्य प्रेम से परिचित होने के कारण अन्य व्यक्तियों को भी महर्षियों की सत्यवादिता पर 'आस्था' रहती थी। ऋषियों में प्रत्यक्ष में उस तथ्य की चर्चा होती थी। वृषपर्वा ने शुक्राचार्य की उपस्थिति में महर्षि की सत्यवादिता पर आस्था प्रकट की थी। उनके परोक्ष काल में भी आस्था प्रकट करने का विवरण पाया जाता है। जरत्कारु के अनुसार उसके पति ने परिहास में भी असत्य भाषण नहीं किया था।

स्वैरेष्वपि न तेनाहं स्मरामि वितथं वचः ।(आदि ४८।११)

ऋषियों के भविष्य कथन पर विश्वास किए जाने का उल्लेख मिलता है। अर्जुन के जन्म के अवसर पर उनके जगद्विजयी होने विषयक ऋषियों की भविष्यवाणी पर युधिष्ठिर को पूर्ण विश्वास था।







सत्य की दृष्टि से गोपनीय रहस्य को प्रकट कर देने वाले महर्षियों का विवरण पाया जाता है। बालखिल्यों ने कश्यप को अपनी इन्द्र विरोधी तपस्या का रहस्य गुप्त होने पर भी बता दिया था।

### स्पष्टवादिता -

बड़े से बड़े व्यक्ति की त्रुटियों का उल्लेख करने में ऋषियों को संकोच न होता था। मैत्रेय ने धृतराष्ट्र की सभा में हुए दस्यु जैसे कार्यों की खुलकर भर्त्सना की थी। महर्षि के अनुसार तपस्वियों के समाज में धृतराष्ट्र की प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी।

अनियंत्रित राजाओं को सन्मार्ग पर चलने का आदेश देने वाले तथा आदेश न मानने पर सर्वनाश की स्पष्ट चेतावनी देने वाले ऋषिगण पाये जाते हैं। मैत्रेय ने पाण्डवों से संधि कर लेने पर ही दुर्योधन का कल्याण बताते हुए स्पष्ट चेतावनी दी कि उनका परामर्श न मानने पर दुर्योधन की मृत्यु हो जाएगी।

ऋषिगण योग्यतम व्यक्ति की घोषणा करने में राजाधिराजाओं तक का संकोच न करते थे। द्रोण ने अपने पुत्र को योग्यतम श्रवण करने के इच्छुक धृतराष्ट्र से स्पष्ट कहा कि अर्जुन धनुर्धरों में श्रेष्ठतम है।

## (२) निर्भीकता, निर्लोभता, क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति :-

### निर्भीकता -

शक्तिशाली नरेशों द्वारा प्रदर्शित भय की अपेक्षा करते हुए न्याय पथ पर अड़े रहने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। अष्टावक्र के अनुसार ब्राह्मण और राजा के आमने सामने आ जाने पर ब्राह्मण के लिए मार्ग दिए जाने का शास्त्रीय विधान था। अतः वह राजा द्वारा प्रदर्शित भय की उपेक्षा कर मार्ग त्यागने को प्रस्तुत न हुआ था। वसिष्ठ नंदन शक्ति कल्माषपाद के दण्ड की उपेक्षा कर मार्ग पुर खड़ा रहता था। दुर्दश दृश्य को निर्भीकता पूर्वक देखने वाले ऋषिगण भी थे। कृष्ण के कौरव सभा में







प्रदर्शित विराट रूप को, अन्यो के भयसंविग्र होने पर भी, महर्षिगण आँख खोलकर देखते रहे थे।

### निर्लोभता -

ऋषियों की निर्लोभता का विवरण पाया जाता है। स्वायत्त वस्तु में संतुष्ट रहकर बड़े प्रलोभन को टुकरा देने वाले ऋषिगण भी थे। वसिष्ठ ने अतिथि, पितर, देवोपासना तथा अग्निहोत्र के घृत की पूर्ति के लिये आश्रम में नन्दिनी की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उसके बदले में विश्वामित्र के राज्य तक को अस्वीकार कर दिया था।

नन्दिनीं संप्रयच्छस्व भुक्स्व राज्यं महामुने - विश्वामित्र  
अदेया नन्दिनीयं वै राज्येनपित तवानम् ॥

(आदि १०४।१६, १७)

### क्षमाशीलता -

कतिपय ऋषियों की क्षमाशीलता उच्च कोटि की थी। अपमानित होने पर भी वे अपना अपमान करने वाले व्यक्ति को क्षमा कर देते थे। परीक्षित ने शमीक के कण्ठ में एक मृत सर्प डाल दिया, पर महर्षि किंचित् मात्र प्रतिकार न कर चुपचाप बैठे रह गए।

न हि तं राजशार्दूलं क्षमाशीलो महमुनिः ।  
स्वधर्मनिरतं भूपं समाक्षितो धर्धर्यत् ॥

(आदि ४०।२३)

अपने पुत्र श्रृंगी को शांत करते हुए भी शमीक ने कहा कि परीक्षित के कार्य पर विचार न करते हुए तुम्हें उसे क्षमा कर देना चाहिए था। अपमानसूचक शब्दों का प्रयोग कर दिए जाने पर भी कतिपय महर्षि अपनी क्षमाशीलता से चिलित न होते थे। दुर्योधन ने द्रोण की भर्त्सना करते हुए कहा कि आप मेरे सहारे जीवित हैं। मैं आपको







उत्तमवृत्ति प्रदान कर प्रसन्न रखता हूँ। पर आप मधुलिप्त क्षुर सिद्ध हुए। ऐसे कटु शब्दों को भी श्रवण करके महर्षि उसे अश्वत्थामा की भांति पुत्र समझकर मौन रह गए।

अपेक्षाकृत नीच कार्य किये जाने को बाध्य किये जाने पर भी कतिपय ऋषि, क्षमाशीलता पर अडिग रहते थे। नहुष की नृशंसता से बाध्य होकर ऋषियों को नहुष की शिबिका वहन करनी पड़ती थी। नहुष के पाद प्रहार से भी शांत रहकर अगस्त्य ने अद्भुत क्षमाशीलता का परिचय दिया।

अपराधी व्यक्ति की असमर्थता का ध्यान रखकर कतिपय ऋषि उसे क्षमा कर देते थे। सरस्वती विश्वामित्र के आदेश से बाध्य होकर कूलापहार करके अनिच्छापूर्वक वसिष्ठ को बहाए लिए जा रही थी। वसिष्ठ इस रहस्य को जानते थे। अतः उन्होंने सरस्वती की बाध्यता को परिलक्षित कर उसे क्षमा कर दिया।

कतिपय ऋषि अपमानित करने वाले व्यक्ति के कर्तव्य को लक्षित कर उसे क्षमा प्रदान करते थे। किसी राजा ने निरपराध माण्ड्य महर्षि को शूलन्विद्ध कर दिया। लोमृ (चोरी) का धन आश्रम में प्राप्त होने से राजा को कर्तव्यवश शूल बेध का आदेश देना पड़ा। अतः महर्षि ने राजा को क्षमा कर दिया और धर्मराज को शाप दिया।

शरणागत शत्रु को क्षमा प्रदान करने का विवरण प्राप्त होता है। दम्भोद्भव नामक राजा ने नर ऋषि से वायुद्ध करके शस्त्र युद्ध किया, अंत में पराजित होकर महर्षि से क्षमा याचना करनी पड़ी। महर्षि ने शत्रु को क्षमा प्रदान करके क्षमाशीलता का परिचय दिया था।

### (३) वात्सल्य, दया तथा स्वाभिमानी ऋषिगण :-

वात्सल्य -

अनाथ शिशु आदि को देखकर कतिपय ऋषियों के मन में वात्सल्य का संचार हो जाता था। पक्षियों से रक्षित नवजात बालिका को देखकर कण्व जैसे उर्ध्वरेता तथा अरण्यवासी के मन में पितृत्व भाव जागृत हो उठा था। स्थूल केश महर्षि ने







नवजात और परित्यक्त प्रमद्वरा को आश्रम में लाकर उसका स्नेहपूर्वक पालन पोषण किया। उक्त कन्याएँ उन ऋषियों की औरस कन्याएँ न थीं। तथापि कन्याओं का पालन पोषण वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर किया था।

पुत्र के संयोग तथा वियोग के अवसर पर ऋषियों का वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता था। दधीच अपने वीर्यज पुत्र सारस्वत को प्राप्त कर स्नेहान्वित हो उठे थे तथा अपने पुत्र को गोद में लेकर दीर्घकाल तक उसके सिर को सूँघते रहे थे। पुत्रों से विमुक्त होने पर कतिपय ऋषि व्याकुल हो जाते थे।

महर्षि वसिष्ठ ने शक्ति के कल्माषपाद के द्वारा मार डाले जाने के बाद अपने पुत्र वियोग से दुःखित अनेक बार आत्म हत्या का प्रयास किया, किन्तु पुत्रवधू द्वारा प्राप्त समाचार से, कि शक्तितत्र पुत्र मेरे गर्भ में है, वे प्रसन्न हो गए।

विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग को एक छद्मवेशधारिणी प्रलोभित कर अंग देश को ले गई। आश्रम में पुत्र को न प्राप्त कर विभाण्डक व्याकुल हो उठे तथा तत्काल अंगदेश को चल पड़े।

पुत्र की समृद्धि का समाचार पाकर ऋषियों को हार्दिक प्रसन्नता होती थी। समृद्ध गोपों द्वारा 'उनकी सम्पत्ति के स्वामी ऋष्यश्रृंग है' - ऐसा बताये जाने पर ऋष्यश्रृंग के पिता का क्रोध शांत हो गया। विभाण्डक ने अंग नरेश द्वारा की गई ऋष्यश्रृंग की परिचर्या तथा सत्कार का अवलोकन कर राजा का अपराध क्षमा कर दिया। ऋषियों को यह वात्सल्य मानव तक सीमित न रहकर पशु पक्षियों के प्रति भी था।

### शरणागतवत्सलता -

कतिपय ऋषि शरणागत व्यक्ति की सुरक्षा और कल्याण का पूर्ण उत्तरदायित्व ले लेते थे। किसी प्रकार का भय उन्हें निश्चय से विचलित न कर पाता था। बृहस्पति ने इन्द्राणी को शरण दी। नहुष के क्रोध से व्यथित देवों और ऋषियों ने बृहस्पति से







इन्द्राणी को नहुष को दे देने का आग्रह किया। बृहस्पति का उत्तर था - मैं ब्राह्मण हूँ, धर्मवेत्ता हूँ और सत्यवादी हूँ। अतः किसी भी स्थिति में इन्द्राणी का परित्याग नहीं कर सकता।

शरणागत नृपति को शरण में लेकर महर्षिगण उसे आश्रमवासी बना देते थे। भृगु ने प्रतर्दन के भय से भीत 'वीतहव्य' को अभय प्रदान कर आश्रमवासी बना लिया था।

दया -

व्यक्ति विशास की विपन्नावस्था को देखकर कतिपय ऋषि दयाद्र हो उठते थे। सात्यकी, संजय के केश पकड़ उसका सिर काटने जा रहे थे। व्यास ने संजय के आर्तनाद से दयान्वित हो सात्यकी को समझा कर संजय की जीवन रक्षा की। तीर्थ यात्री ऋषियों ने दयाद्र होकर शोणित मिश्रित सरस्वती को प्रसन्न सलिला (निर्मल जल वाली) बना दिया था। ऋषियों द्वारा दयाद्र होकर आपत्तिग्रस्तों के लिये जीवनदान तक देने का विवरण पाया जाता है। दधीच ने देवों पर दयाद्र होकर वज्र निर्माण के लिए अपनी अस्थियां प्रदान कर दी थीं।

ऋषियों की दया का क्षेत्र पशु-पक्षियों तक विस्तृत था। कुलिंग दम्पति तृण तन्तुओं से जाजलि की जटाओं में नीड़ बना रहे थे। महर्षि ने दयान्वित होकर पक्षियों को सन्तान उत्पन्न करने तक का अवसर प्रदान किया था। समीप में निवास करने वाले ऋषिमित्र व्यक्तियों पर ऋषियों का स्नेह परिवार के सदस्यों की भांति रहा करता था। शतश्रृंग पर्वत पर महर्षियों के साथ निवास करने वाले पाण्डु के साथ महर्षिगण भ्राता, पुत्र और मित्र के तुल्य व्यवहार करते थे।

शरण में आकर दया की याचना करने वाले अपराधी व्यक्ति पर महर्षिगण दयान्वित हो जाते थे। सुकन्या द्वारा भूल से आँख फोड़ दिए जाने पर च्यवन ने शर्माति कीसेना का मलमूत्रावरोध कर दिया, पर शर्याति के अनुनय पर कृपान्वित







होकर महर्षि ने वह अवरोध हटा लिया था। महर्षि कपिल ने सगर पुत्रों को भष्म करके सगर के यज्ञ में अवरोध उत्पन्न कर दिया पर अंशुमान् की प्रार्थना पर दयार्द्र होकर महर्षि यज्ञ की साविधिपूर्ति में सहायक बन गए थे।

धृतराष्ट्र के अनुनय पर प्रसन्न होकर बकदाल्भ्य ने संहार के स्थान पर राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए हवन करना प्रारंभ कर दिया था।

महर्षिगण दयार्द्र होकर शाप की मात्रा में कमी कर सकते थे। वसिष्ठ ने घर आदि वसुओं की प्रार्थना पर दयार्द्र हो दिव के अतिरिक्त अन्य वसुओं की शाप मुक्ति एक-एक वर्ष के पृथ्वीवास के उपरान्त कर दिया। कतिपय ऋषि दयार्द्र होकर अपने शाप का अपलाप तक कर सकते थे। मैत्रेय ने धृतराष्ट्र पर दयार्द्र होकर घोषणा की कि पाण्डवों से संधि कर लेने पर दुर्योधन का उरु भंग वाला शाप विफल हो जाएगा।

मृत्यु के करुण दृश्य का अवलोकन कर ऋषिगण विह्वल हो जाते थे। कतिपय ऋषि करुणा आकुल होकर रोदन तक करने लगते थे। सर्पदंशित प्रमद्वरा को गत प्राण देखकर ऋषिगण रोदन करने लगे थे। परशुराम जमदग्नि की हत्या के भीषण दृश्य को देखकर रोने लगे थे।

किसी के भीषण कष्ट को देखकर ऋषिगण करुणान्वित हो उठते थे। शूलविद्ध माण्डव्य की मर्मन्तिक व्यथा को लक्षित कर ऋषिगण दुःखी हो गये थे।

**स्वाभिमान -**

ऋषियों को अपनी श्रेष्ठता का गर्व रहता था। स्वात्माभिमान पर आघात उन्हें सह्य न था। शुक्र का स्वाभिमान शर्मिष्ठ के मर्मभेदी वाक्यों से जग उठा। फलस्वरूप महर्षि ने देवयानी को उद्धोधित करते हुए कहा कि वह स्तुति करने वाले तथा दान ग्रहण करने वाले की पुत्री न होकर स्तुति किए जाने वाले तथा कभी स्तुति न करने वाले की पुत्री है। शुक्र के अनुसार उनके अचिन्त्य निर्द्वन्द्व और ऐश्वर्य बल को एक मात्र इन्द्र, वृषपर्वा और शर्याति जानते थे। मन्दपाल के अनुसार उनके ब्रह्मवादी







पुत्रों के तेज को अग्नि जानता था। अतः वह ऋषि पुत्रों की हानि नहीं कर सकता था। कतिपय अन्य ऋषियों के अनुसार प्राकृतिक पदार्थ उनका उल्लंघन नहीं कर सकते थे। जरत्कारु का विश्वास था कि उनके शयन करते हुए सूर्य अस्त नहीं हो सकता था।

कतिपय न्यूनताएँ -

ईर्ष्या -

कतिपय ऋषि दूसरों को प्राप्त होने वाली सम्पत्ति की संभावना से ईर्ष्यालु हो उठते थे। सहोदर भ्राताओं में यह भाव अधिक देखा जाता था। संवर्त्त मरुत का पुरोहित होकर दक्षिणा के सम्पूर्ण स्वर्ण पात्र को प्राप्त करने वाले थे। इससे बृहस्पति ईर्ष्यावश विवर्ण हो गये तथा मानसिक संताप के कारण दुर्बल होते जा रहे थे। एकत ओर द्वित की ईर्ष्या का कारण उनके लघुभ्राता त्रित द्वारा बौद्धिक योग्यता के आधार पर यजमानों से अपेक्षाकृत अधिक गौएं प्राप्त कर लेना था।

ऋषि विशेष की उग्र तपस्या और शारीरिक तेज से कतिपय ऋषि ईर्ष्यालु हो उठते थे। वसिष्ठ के तीव्र तप और तेज को देखकर विश्वामित्र मानसिक संताप से दग्ध होते जा रहे थे। सतीर्थ्य, शिष्यों में शिष्य विशेष के प्रति गुरु के अधिक स्नेह को देखकर अन्य शिष्य तथा पुत्रों में ईर्ष्या का प्रादुर्भाव हो जाता था। उत्तंक के दम, शौच, साहसिक कार्य और उपचार के आधार पर गौतम का स्नेह अन्य शिष्यों की तुलना में उत्तंक पर अधिक हो गया था। इससे गौतम के अन्य शिष्य तथा पुत्र उत्तंक की भक्ति के प्रति ईर्ष्यालु रहने लगे थे।

लोभ -

कतिपय ऋषि ओर देवर्षि स्थान विशेष पर स्थित वस्तु के प्रति लोभाकृष्ट देखे जाते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार गंधर्वों के देश में स्थित सोमलता को प्राप्त करने के लिए ऋषि और देवर्षिगण लालायित रहते थे।







गौएँ स्पृहणीय मानी जाती थीं। अतः कतिपय महाभारतीय ऋषि पराधीन गायों को स्वाधीन करने के इच्छुक रहा करते थे। त्रित ने यजमानों से दक्षिणा में अनेक गौएँ प्राप्त कीं। उसके भ्राता एकत और द्वित उन गायों के प्रति लालायित रहते थे। अतः वृक से भीत होकर त्रित के अंधकूप में गिर जाने पर वे दोनों उन गायों को लेकर भाग गए थे।

### असत्यवादिता -

असत्य भाषण विषयक कतिपय विवरण प्राप्त होते हैं। आततायी के वध के उद्देश्य से ऋषिगण असत्य भाषण कर जाते थे। वृत्रासुर के वध के उद्देश्य से ऋषियों ने उसके साथ इन्द्र की मैत्री को शाश्वत बताया तथा वृत्रासुर को निरातंक करके उसके कल्याण की आशंसा की। अंत में ऋषि वाक्य पर विश्वास करके वृत्रासुर इन्द्र द्वारा मारा गया। शरणागत व्यक्ति की रक्षा के उद्देश्य से कतिपय ऋषियों को असत्य भाषण करते हुए पाया जाता था।

प्रतर्दन से भीत होकर, वीतहव्य भृगु के आश्रम में जाकर छिप गया था। प्रतर्दन के पूछने पर महर्षि ने आश्रम में केवल द्विजाति (ब्राह्मणों) की स्थिति बताकर शरणागत व्यक्ति की रक्षा की।

धन लिप्सा के कारण कतिपय ऋषि अपने वचन पर स्थिर न रह सके थे। बृहस्पति ने हिरण्यरेता के भस्म होने, पृथ्वी के परवर्तित होने तथा सूर्य के ज्योतिहीन हो जाने पर भी मरुत के यज्ञ में श्रुवा न ग्रहण करने का वचन इन्द्र को दिया था। (पर दक्षिणा में दिये जाने वाले स्वर्ण भांडों को देखकर बृहस्पति पौरोहित्य के आकांक्षी हो गए।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



## भयग्रस्तता -

कतिपय उदाहरण भयग्रस्तता के प्राप्त होते हैं। कभी-कभी देवताओं के कोप से ऋषिगण भीत हो जाते थे। रुद्र के क्रोध से ऋषिगण भयभीत हो रहे थे, अतः ब्रह्मा ने यज्ञ भाग दिलाकर रुद्र के क्रोध को शांत किया।

इन्द्र के क्रोध से ऋषिगण सशंकित हो जाते थे। इन्द्र ने बृहस्पति को मरुत्त का देव, पितृकर्म न कराने का आदेश दिया, फलस्वरूप बृहस्पति ने पृथ्वी और सूर्य की शपथ खाकर इन्द्र का आदेश पालन करने की घोषणा की।

राजदण्ड का भी भय रहता था। भीष्म के अनुसार ऋषियों को राजदण्ड से भीत रहना पड़ता था। नहुष के भय से ऋषियों ने इन्द्र की अपेक्षा नहुष को विशिष्ट बताया तथा उसके ऋषियान को वहन किया।

कतिपय ऋषि आपस के भय से भीत रहते थे। ऐसे ऋषि ने इन्द्र पद ग्रहण करके उन्हें आपस के भय से मुक्त करने का अनुरोध किया था। हिंसक पशुओं के भय से भीत होते ऋषियों को देख जाता था। त्रित नामक ऋषि वृक के भय से भीत होकर अंधकूप में गिर गये।

## निर्ममता -

ऋषियों के कतिपय नृशंस कार्यों से उनकी निर्ममता का परिचय मिलता है। आबाल-वृद्ध क्षत्रियों के संहार-कृत्य से परशुराम की हार्दिक कठोरता सूचित होती है। राक्षस सत्र करने वाले पराशर को उस संबंध में सदय नहीं कहा जा सकता। रुरु नाम का ऋषि सर्पों के प्रति कठोर रुख अपनाकर दण्ड प्रहार द्वारा सर्पों की हत्या करता फिरता था।



०११

- आत्मसाक्षात्कार

है कि साक्षात्कार के लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।

इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।

इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।

इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।

- आत्मसाक्षात्कार

इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।  
 इसके लिए हमें अपने अन्तरात्मा को साक्षात्कार के योग्य बनाना पड़ेगा।



कतिपय ऋषि, विशेष अवसर पर अन्य व्यक्ति के कष्टों की उपेक्षा कर देते थे। धौम्य ने वेद नामक शिष्य के कष्टों की उपेक्षा करते हुए निरन्तर गृहकार्य में संलग्न रखा। गौतम ने उत्तंज को सौ वर्षों तक समावृत होने की अनुमति नहीं दी। जरत्कारु स्वयं अपनी पत्नी के साथ निर्ममता का व्यवहार करते थे। प्रच्छन्न वसिष्ठ ने अपने लौटने तक सिर पर चरु रखकर विश्वामित्र को खड़े रहने का आदेश दिया तथा पूरे सौ वर्ष बाद लौटकर अपनी निर्ममता प्रदर्शित की।

दूसरों की भावना का अनादर किए जाने के कुछ प्रसंग प्राप्त होते हैं। इन्दाणी नहुष को नहीं चाहती थी, तथापि बृहस्पति अभयदान देकर भी उसे नहुष को पति रूप में वरण कर लेने को बाध्य कर रहे थे। कच द्वारा देवयानी की भावना का समादर न करने की घटना इसी प्रकार की थी।

### असहनशीलता -

असहनशीलता की परिणति क्रोध एवं शाप में होती थी। अतः उन प्रसंगों पर असहनशीलता के विस्तृत उदाहरण प्रस्तुत किए जाएंगे। कतिपय विवरण इस प्रकार हैं। शारीरिक आघात पर ऋषिगण असह्यशील हो उठते थे। नहुष के पाद प्रहार से अगस्त्य की जय में अंतर्निहित भृगु कुपित हो उठे थे। उच्छिष्ट वस्तुओं के निक्षेप से कतिपय ऋषियों का क्रोध उद्दीप्त हो उठता था। मणीमान् ने मूर्खता, अज्ञान, दर्प या मोह के वशीभूत होकर अगस्त्य पर थूक दिया था। फलस्वरूप महर्षि ने उसे क्रुद्ध होकर शाप दे डाला। कटुवादी व्यक्तियों के प्रति महर्षिगण असहनशील हो जाते थे। कहोड़ स्वयं अपने पुत्र के कटुवचन पर क्रुद्ध हो उठे थे।

### प्रतिकार की भावना -

ऋषियों के कतिपय आदेश प्रतिकार की भावना से प्रेरित होते थे। विश्वामित्र ने सरस्वती को आदेश दिया कि वह वसिष्ठ को कूलोपहार करके ले आए, जिससे वे महर्षि की हत्या कर सकें। कतिपय ऋषियों में प्रतिशोध करने की भावना पायी जाती



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karundi, Jabalpur MP Collection



थी। वे उपकार का तत्क्षण प्रतिरोध करने को तैयार रहते थे। शर्याति के यज्ञ में इन्द्र ने च्यवन पर वज्र प्रहार किया, फलस्वरूप महर्षि ने इन्द्र की भुजा का तत्काल स्तम्भन कर दिया। साथ ही इन्द्र का अनिष्ट करने के उद्देश्य से महर्षि ने मद नामक भयंकर असुर की उत्पत्ति भी कर दी।

कतिपय ऋषि शत्रुता का व्यवहार करने वाले व्यक्ति को अपमानित करने को प्रस्तुत रहते थे। बृहस्पति ने इन्द्र के द्वारा मरुत्त के यज्ञ को स्थगित कराने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप मरुत्त के पुरोहित संवर्त ने घोषणा की कि वे धन प्राप्ति या यजमान प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं अपितु बृहस्पति और इन्द्र को अपमानित करने के उद्देश्य से मरुत्त का यज्ञ कराएंगे। ऋषियों की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति को उसका परिणाम भागना पड़ता था। धृतराष्ट्र द्वारा बकदाल्म्य को उपेक्षित रूप में मृत पशुदान में दिए जाने पर महर्षि उसके राष्ट्र को समिद्ध पावक में हवन करने लगे थे।

ऋषियों के निकट संबंधी की हत्या करने वाले व्यक्ति को अपने समाज के साथ महर्षियों का कोपभाजन बनना पड़ता था। किंकर राक्षस से आवेशित होकर कल्माषपाद ने शक्ति का भक्षण कर डाला। इस प्रकार क्रुद्ध होकर पराशर ने राक्षस सत्र द्वारा सम्पूर्ण राक्षस जाति का विनाश करना प्रारंभ कर दिया। जमदग्नि की हत्या से क्रुद्ध होकर परशुराम ने सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति का संहार किया। कतिपय महर्षि साधना में विघ्न डालने वाले व्यक्ति को कठोर दण्ड देते थे। ऋषभ ऋषि अपने पर्वत पर कोलाहल करने वाले व्यक्ति को मेघ की ध्वनि से मोन करा देते तथा पर्वत द्वारा प्रस्तर प्रक्षेप कराकर दण्ड दिया करते थे। कहा जाता है कि महर्षि ऋषभ की तपोभूमि में वायु भी शब्द नहीं कर पाता था।

### क्रोध -

कतिपय परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ऋषियों में क्रोध का आविर्भाव हो जाता था। शारीरिक आघात से क्रुद्ध होने वाले ऋषियों का विवरण पाया







जाता है। किसी वैश्य के रक्षाघात से काश्यप नामक महर्षि क्रुद्ध हो गये थे। अनजाने में हुए शारीरिक आघात से ऋषियों को क्रुद्ध होते देखा जाता था। सुकन्या द्वारा सींक से अनजान में आँख फूटने पर च्यवन महर्षि क्रुद्ध हो गये थे। अपमानजनक शब्दों को सुनकर ऋषियों का क्रोध जाग उठता था। सगर पुत्रों के मर्मभेदी वचनों को सुनकर कपिल क्रुद्ध हो गये थे। मर्मभेदी शब्दों का प्रयोग कर उपहास करने वाले इन्द्र पर बालखिल्यों के क्रोधित होने का विवरण पाया जाता है। उपेक्षापूर्वक उत्तमांग पर थूकने जेसे कृत्य को ऋषिगण सहन न कर सकते थे। मणिमान् के थूकने पर क्रुद्ध होने वाले अग्रस्त्य का उल्लेख पाया जाता है।

आश्रम को नष्ट भ्रष्ट करने वाले व्यक्तियों पर ऋषियों को क्रुद्ध हेतु देखा जाता था। वसिष्ठ के आश्रम में उत्पांत मचाने वाले विश्वामित्र के सैनिकों पर महर्षि का क्रोध द्रष्टव्य है।

धार्मिक कार्यों में बाधा उत्पन्न करने पर ऋषिगण क्रुद्ध हो जाते थे। दूध का पात्र उलट कर श्राद्ध कर्म में विघ्न उत्पन्न करने वाले क्रोध (नाम की मनोवृत्ति) पर जमदग्नि क्रुद्ध हो गए थे।

वेदों के स्वाध्याय पर किया जाने वाला किसी प्रकार का आक्षेप ऋषियों को साध्य न था। अतः रात्रि के वेदाध्ययन पर आक्षेप करने वाले गर्भस्थ शिशु पर कहोड़ कुपित हो गए थे।

पौरोहित्य कर्म करने वाले ऋषिगण यजमान द्वारा अन्य पुरोहित के वरण करने पर अप्रसन्न हो जाते थे। हिरण्यकशिपु द्वारा वसिष्ठ के स्थान पर विश्वरूप को पुरोहित बना लेने पर महर्षि क्रुद्ध हो गये। कतिपय ऋषि अन्य पुरोहित को वरण करने की चर्चा तक नहीं सुनना चाहते थे। अग्नि द्वारा मरुत्त को संवर्त्त के स्थान पर बृहस्पति को पुरोहित बना लेने का परामर्श दिए जाने पर संवर्त्त क्रुद्ध हो गए थे।

याचना की विफलता से क्रोधित होने वाले ऋषियों का उल्लेख मिलता है। भिक्षा न देने पर ऋषिगण क्रुद्ध हो जाते थे। अदिति द्वारा भिक्षा का प्रत्याख्यान कर







दिए जाने पर ब्रह्मर्षि बुध क्रुद्ध हो गये थे। ऋषियों द्वारा याचित कन्या का विवाह शिव के साथ कर दिया। अतः महर्षि क्रुद्ध हो गए।

महर्षियों का सत्परामर्श न मानने पर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों से संधि कर लेने विषयक मैत्रेय के परामर्श को न माने जाने पर महर्षि क्रुद्ध हो गए थे। रोहिणी के प्रति ही नहीं बल्कि सभी पत्नियों से समान व्यवहार करने विषयक दक्ष के परामर्श की उपेक्षा करने वाले चन्द्रमा के प्रति महर्षि कुपित हो गए थे।

ऋषिगण अपने आदेश की अवज्ञा सहन न कर सकते थे। वड़वामुख के आदेश पर उपस्थित न होने वाले समुद्र पर महर्षि कुपित हो गए थे। स्थूलशिरा के आदेश पर पुष्पित न होने वाली वनस्पतियों पर क्रुद्ध होकर महर्षि ने उनका सार्वकालिक-पुष्पवती होना रोक दिया था। कतिपय ऋषि क्रूरतम आदेशों का तत्काल पालन न होने पर क्रुद्ध हो जाते थे। रेणुका का शिरच्छेद विषयक आदेश का पुत्रों द्वारा तत्काल न किए जाने पर जमदग्नि कुपित हो गए थे। महर्षियों को चारित्रिक अपराध पर क्रुद्ध होते देखा जाता था। चित्ररथ गंधर्व की जल क्रीड़ा को देखकर धैर्यच्युत होने वाली रेणुका पर जमदग्नि क्रुद्ध हो गये थे।

### (३) शाप, शाप का भय व शाप शक्ति का वर्णन:-

शाप -

ऋषियों द्वारा शाप दिए जाने के अनेक विवरण पाये जाते हैं। कतिपय महर्षियों ने शाप देने की विशिष्ट शक्ति मानी जाती थी। व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश और शुक्र के शाप का सामर्थ्य देवों से विशिष्ट बताया गया है। शाप देने से तपस्वियों के तपोबल के क्षय का भय रहता था, अतः अनिवार्य स्थिति में ही शापास्त्र का प्रयोग किया जाता था।







## शाप का भय -

सत्यवादी महर्षियों का शाप अमिट होता था। अतः देवता, दानव, मानव और महामानव तक शापास्त्र से बचने का प्रयत्न करते देखे जाते थे। कहा जाता है कि भृगु के शाप से बचने के लिए किसी समय अग्नि शमीगर्भ में जाकर छिप गया था। संवर्त्त के शाप से बचने के लिए अग्नि देवों के पास भाग गया था। भृगु तथा वसिष्ठ के शाप से भयभीत होने वाले गृत्स तथा हिरण्यकपिशु का विवरण द्रष्टव्य है। ऋषियों को जन्म देने वाली माताएँ तक उनके शाप से भीत रहती थीं। सुजाता अष्टाचक्र की माँ थी, पर पुत्र के शाप से डर कर उसने बंदी द्वारा कहोड़ को जल में डुबो देने का रहस्य प्रतिबंधित होने पर भी बता दिया था। कृष्ण महामानव थे, पर महाभारत संग्राम न रोक पाने के अपराध पर उत्तंग उन्हें शाप देने को उद्यत हो गये, परिणामतः श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत कर अपने को निरपराध सिद्ध किया।

## शाप विधि -

महाभारत के कतिपय उल्लेखों से ऋषियों के शाप की विधि पर प्रकाश पड़ता है। ऋषिगण शाप देते समय जल से आचमन करते थे। श्रृंगी ऋषि ने जल से आचमन कर परीक्षित को शाप दिया था। शाप के लिए जल का होना अनिवार्य था। अतः जल के अभाव में उद्यत होने पर भी शाप न दे सकने का विवरण पाया जाता है। यवक्रीत जल पूर्ण कमण्डल के अभाव में अपने प्राण घातक राक्षस को शापाग्नि से भस्म न कर सके थे।

## शाप के प्रकार -

विभिन्न ऋषियों द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रकार के शापों का विवरण पाया जाता है। इनका वर्गीकृत परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है। ऋषिगण अपराधी को शाप देकर उसे मानव, राक्षस, पशु, सरसृप तथा कीट की निम्न योनियों में वास करा देते थे। शाप ग्रस्त देवों को मानव योनि में वास करना पड़ता था। वशिष्ठ







से अभिषक्त होकर वसुगण मानव होकर अवतरित हुए थे। धर्मराज को शूद्र योनि में जन्म लेना पड़ा था। शापग्रस्त ऋषियों के सरीसृप तथा पशुयोनि में वास करने का विवरण पाया जाता है। सहस्रपाद नामक ऋषि शापग्रस्त होकर दुन्दुम जातिय सर्प की योनि में वास कर रहे थे। त्रित के शाप से एकत और द्वित को वृक तथा उनकी संतान को रीछ, गौ और गोलांगूल होना पड़ा था। नारद जैसे देवर्षि को सृञ्जयकन्या पर्वत के शाप से वानर रूप में देखने वाली थी। ऋषियों से शप्त होकर राक्षस योनि प्राप्त करने वाले राजाओं का उल्लेख मिलता है। शक्ति के शाप से राक्षस होने वाले कल्माषपाद तथा वसिष्ठ के शाप से नरभक्षी राक्षस में परिवर्तित होने वाले सौदास का विवरण पाया जाता है। नहुष जैसा पदभ्रष्ट नरेश सर्प योनि में वास कर रहा था। राक्षसों को शाप द्वारा कीट बना देने की सूचना पायी जाती है। गृत्स राक्षस अभिषक्त होकर मल-मूत्र और श्लेष्मा खाने वाला कीड़ा हो गया था।

महर्षियों के शाप से कतिपय व्यक्तियों में दोषों की उत्पत्ति हो जाने का विवरण पाया जाता है। इन्द्र, चंद्र तथा अग्नि शापग्रस्त होकर वृषणपात से पुंस्त्व खो चुके थे। महाभारत के अनुसार चंद्र यक्ष्माग्रस्त हुआ। अग्नि का सर्वभक्षी होना पड़ा था। शापग्रस्त कर्कोटक नाग के पंमु होने का उल्लेख पाया जाता है। शापग्रस्त ऋषि सन्तानों में दोषों की उत्पत्ति होने तथा उनके गुणों के अपक्षय से संबंधित सूचनाएं पायी जाती हैं। कहोड़ पुत्र पिता के शाप से वक्र होकर अष्टावक्र कहा जाता था। जमदग्नि के चारों पुत्रों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। कच द्वारा आधीन संजीवनी विद्या देवयानि के शाप से विफल होने वाली थी। स्वयं देवयानि सर्वांग सुन्दरी होकर भी कच के शाप से संभवतः दोष ग्रस्त होकर किसी ऋषि कुमार द्वारा वरण न की जाने वाली थी। चक्रवर्ती नरेश भी ऋषियों के शाप से दोष संयुक्त बताए गए हैं। उशना के शाप से ययाति का धर्म और अर्थ नष्ट हो चुका था। च्यवन के शाप से शर्योति और उसकी सेना के लोग मल-मूत्र का विसर्जन करने में असमर्थ हो गए थे। राक्षसों को ऋषियों के शाप से दोष भाजन होना पड़ता था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार







कबन्ध का आनन शाप से विकृत हो गया था। ऋषियों के शाप से प्राकृतिक पदार्थों के गुणों में क्षय हो जाने का उल्लेख पाया जाता है।

कहा जाता है कि हिमालय किसी काल में रत्नभाजन होकर भी महर्षियों के शाप से अरत्नभाजन हो गया था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जनस्थान, जनरहित, पुष्पवेष्य और प्राणरहित हो गया था। महाभारत के अनुसार वनस्पतियाँ सार्वकालिक पुष्पवती न रह सकीं तथा समुद्र को खारा बनना पड़ा था।

ऋषियों के शाप से शप्त व्यक्ति की तत्काल मृत्यु अथवा कालान्तर में विशेष प्रकार से मृत्यु होने का उल्लेख पाया जाता है। अभिशप्त पुरुषवा तत्काल नष्ट हो गया था। सगर पुत्रों की तात्कालिक मृत्यु का विवरण पाया जाता है। कालान्तर में विशेष प्रकार से मृत्यु के वशीभूत होने की अनेक सूचनाएं पायी जाती हैं। शापग्रस्त मणिमान् यक्ष की मृत्यु किसी मनुष्य के द्वारा होनी थी। हिरण्यकशिपु वसिष्ठ के शाप से यज्ञ समाप्ति के पूर्व किसी अपूर्व जन्तु द्वारा मारा जाने वाला था। महर्षि तथा राजाओं की कालान्तर से संबंधित विवरण पाये जाते हैं।

भरद्वाज के शाप से रैम्भ महर्षि अपने ही ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा मारे गये थे। पाण्डु की मृत्यु किंदम ऋषि के शाप से सहवास काल में हुई थी। दुर्योधन, भीम के गदाघात से मारा जाने वाला था। परीक्षित को श्रृंगी के शाप से तक्षक ने काटा था। रामायण के अनुसार मतंग के आश्रम के आसपास आने वाला व्यक्ति महर्षि के शाप से मरने वाला था।

### ऋषियों के शाप -

ऋषियों के शाप से देवता तक न बच सकते थे। इन्द्र, यम, कुबेर और अग्नि जैसे लोकपालों तथा चन्द्र एवं वसुगण जैसे देवों के ऋषियों की शापाग्नि में दग्ध होने का विवरण पाया जाता है। वा०रा० के अनुसार गौतम के शाप से इन्द्र के दोनों वृषण तत्काल टूटकर गिर पड़े थे। महाभारत के अनुसार विपुल के शाप से इन्द्र अधिक



ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



काल तक देवता और मनुष्यों द्वारा पूजित रह न सकता था। यमराज तक को अभिशप्त होकर मानव योनि में जन्म लेना पड़ा था। अणीमाण्डव्य के शाप से धर्मराज को शूद्र योनि में विदुर के रूप में अवतार लेना पड़ा। कुबेर को शाप दिये जाने का उल्लेख मिलता है। अगस्त्य का अपमान देखने पर कुबेर को महर्षि के शाप से मणिमान् की मृत्यु से दुःखित होना पड़ा था। अभिशप्त अग्नि का विवरण पाया जाता है। भृगु ने शाप देकर अग्नि को सर्वभक्षी बना दिया था। चन्द्रमा को शाप दिया जा सकता था। दक्ष के शाप से चन्द्रमा के यक्ष्माग्रस्त होने का उल्लेख पाया जाता है। वसुओं के शाप की चर्चा की गई है। वसिष्ठ के शाप से वसुओं को मानवयोनि स्वीकार करनी पड़ी थी। द्वि नामक वसु भीष्म के रूप में चिरकाल तक पृथ्वी वास करता रहा था।

यक्ष, नाग जैसी जातियों को शाप दिए जाने का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मर्षि के शाप से कर्कोटक नाग अपंग हो गया था।

ऋषियों द्वारा ऋषियों को शाप दिए जाने का उल्लेख मिलता है। शाप द्वारा स्वर्गवास में अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता था। पर्वत महर्षि तप, दम, सत्य, ब्रह्मचर्य और धर्म संयुक्त होकर भी नारद के शाप से स्वर्ग में निवास न कर सकते थे। शाप द्वारा आकृति में परिवर्तन कर देने का उल्लेख मिलता है। कहोड़ के शाप से उनका पुत्र अष्टावक्र हो गया था। पर्वत के शाप से सृंजयकन्या नारद को बानर रूप में देखने वाली थी। किसी ब्रह्मर्षि के शाप से सहस्रपाद ऋषि डुन्दुभ सर्प हो गए थे। त्रित के शाप से एकत और द्वित वृक तथा उनकी संतान रीछ, वानर, गौ लांझूल होने वाली थी। शाप द्वारा बुद्धि में विकार उत्पन्न कर दिया जाता था। जमदग्नि के शाप से उनके चारों पुत्र जड़बुद्धि हो गए थे।

अधीत विद्या की विफलता का विवरण पाया जाता है। देवयानी के शाप से कच की अधीत संजीवनी विद्या विफल हो गयी थी। शाप द्वारा विवाह जैसे कर्म में अवरोध उत्पन्न हो जाता था। कच के शाप से देवयानी का विवाह ऋषि पुत्र के साथ न हो सकता था। ऋषिगण शाप द्वारा मृत्यु का हेतु निश्चित कर सकते थे। भरद्वाज के शाप से रैम्य की मृत्यु स्वयं उसके ज्येष्ठ पुत्र के हाँथों होने वाली थी।







राक्षसों को महर्षियों के शाप का परिणाम भोगना पड़ता था। शाप द्वारा कीट जैसे योनि में परिवर्तन करने का उल्लेख मिलता है।

क्षत्रिय नरेशों तथा उनके सहयोगियों को शाप दिए जाने का विवरण पाया जाता है। ऋषियों के शाप से शक्ति सम्पन्न नरेशों की तुरन्त मृत्यु हो सकती थी। सनत् कुमारों के शाप से पुरुरवा तत्काल विनष्ट हो गया था। ऋषिगण शाप द्वारा नरेशों की भावी मृत्यु का विधान बना सकते थे। किंदम के शाप से पाण्डु की मृत्यु सहवास काल में होने वाली थी। मैत्रेय के शापानुसार भीम के गदाघात से उरुभग्न होकर दुर्योधन मरने वाला था। श्रृंगी के शाप से तक्षक द्वार दष्ट होकर परीक्षित प्राणों से विमुक्त होने वाला था। राजाओं को शाप देकर राक्षस बना देने का उल्लेख पाया जाता है। वसिष्ठ ने सौदास को तथा शक्ति ने कल्माषपाद को शाप देकर नरभक्षी राक्षस बना दिया था। सर्प जैसी योनियों में परिवर्तित कर देने का विवरण मिलता है। ऋषिगण नवयुवक को शाप देकर वृद्ध तथा अर्थकाम से विमुक्त बना सकते थे। शुक्र के शाप से ययाति वृद्ध होकर अर्थ-काम से विमुक्त हो गया था। परशुराम के शाप से कर्ण को कर्मकाल में अस्त्र शस्त्र प्रतिभासित न हो सकते थे।

ऋषियों के शाप का परिणाम वनस्पति, महावन, हिमालय, सरस्वती तथा समुद्र तक को भोगना पड़ता था। वनस्पतियाँ शाप के फलस्वरूप सदा पुष्पित न रह सकती थीं। स्थूलशिरा के शाप का परिणाम आज भी देखा जा सकता है। महावन उजाड़ हो जाते थे। रामायण के अनुसार कण्डु के शाप से महावन के दुष्प्रवेश्य, मृगपक्षी आदि जीवों से हीन तथा जंजरहित हो जाने का विवरण पाया जाता है। ऋषि हिमालय को शाप दे सकते थे। भृगु के शाप से हिमालय के अरत्नभाजन हो जाने का उल्लेख पाया जाता है। सरस्वती नदी को अभिशप्त होना पड़ा था। कहा गया है कि विश्वामित्र के शाप से किसी समय रक्त मिश्रित जल वाली होकर राक्षसों से सेवित हो गई थी। समुद्र को शाप देने का विवरण पाया जाता है। मेरु पर्वत पर तपस्या करने वाले बड़वामुख महर्षि के शाप से समुद्र का जल खारा हो गया था।







## दण्ड का चमत्कार -

महर्षियों के द्वारा भीषण संहार का वर्णन पाया जाता है। ऋषिगण क्रोधित होकर ससागरा पृथ्वी को भस्म कर सकते थे। ऋषियों में सामूहिक संहार की क्षमता बताई गई है। कपिल के विकृत नेत्रों द्वारा सगर के साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने का विवरण पाया जाता है। आततायियों को सामूहिक रूप से यज्ञ बेदी में भस्म कर सकने का सामर्थ्य ऋषियों में बताया गया है। पराशर पिता की हत्या से क्षुब्ध होकर राक्षसों को तथा सामूहिक रूप से उनके आश्रितों को भी ऋषियों के दण्ड का परिणाम भोगना पड़ा था। बकदालभ्य को उपेक्षापूर्वक मृतपशु दान में देने वाले धृतराष्ट्र का सम्पूर्ण राष्ट्र महर्षि की यज्ञाग्नि में भस्म हो रहा था।

सामरिक रूप से भष्म करने के अतिरिक्त ऋषिगण अपराधियों को शस्त्र प्रयोग द्वारा क्षत-विक्षत भी कर देते थे। परशुराम द्वारा कार्तवीर्य की सहस्र भुजाओं को वृक्ष की शाखाओं की भांति परशु द्वारा काटे जाने का विवरण पाया जाता है। कहा जाता है कि परशुराम ने रथ पर बैठकर बाण वर्षा करते हुए तलवार और शक्ति के द्वारा कार्तवीर्य को क्षत-विक्षत कर दिया था। परशुराम से आतंकित होकर अन्य क्षत्रियगण दुर्गम वनों में जाकर छिप गए थे। आश्रितों में संहारक शक्ति का आधान कर विनाश कराने का विवरण पाया जाता है। कहा जाता है कि नन्दिनी से उत्पन्न शबरो के द्वारा वसिष्ठ ने विश्वामित्र के सैनिकों का संहार करा डाला था।

## (४) वरदान, मंत्र शक्ति, भविष्य कथन, दिव्य दृष्टि आदि विशिष्ट शक्तियाँ :-

### वरदान -

सत्कार तथा सेवा से संतुष्ट होकर ऋषियों द्वारा वरदान दिए जाने का विवरण पाया जाता है। एक व्यक्ति को दिये जाने वाले एक तथा अनेक वरदानों का उल्लेख मिलता है।



- प्रकृत्यात् तत् ४३९

प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९

प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९

प्रकृत्यात् तत् ४३९ (४)  
- प्रकृत्यात्

प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९  
प्रकृत्यात् तत् ४३९



ऋषियों द्वारा दिये जाने वाले अधिकांश एकाकी वरदान प्रायः पुत्रोत्पत्ति से संबंध पाए जाते हैं। दीर्घतमा ने बलि की पत्नी सुदेष्णा के अंगों का स्पर्श कर उसे तेजस्वी और सत्यवादी पुत्र की माँ होने का वरदान दिया था। भृगु ने पुत्र कामा पुत्रवधु ऋचीक की पत्नी सत्यवती तथा उसकी माँ को ऋतुकाल में प्रसवन स्नान के पश्चात् क्रमशः पीपल और उदुम्बर के वृक्षों का आलिंगन कर लेने पर पुत्र लाभ होने का वरदान दिया था। चण्ड कौशिक के अनुसार अभिमंत्रित आम्रफल को भक्षण करने पर ऋषि के वरदान से बृहद्रथ की रानी के पुत्र उत्पन्न हो सकता था।

ऋषियों के द्वारा एक व्यक्ति को अनेक सन्तान उत्पन्न करने का वरदान दिये जाने का विवरण पाया जाता है। विदर्भ नरेश भीम और उसकी पत्नी के सत्कार से संतुष्ट होकर दमन महर्षि ने तीन पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति का वरदान दिया था। ऋषि के वरदान के फलस्वरूप दमः, दान्त और दमन नामक तीन पुत्र तथा दमयन्ति नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। दुर्वासा के वरदान से देवों का आव्हान कर कुन्ती अनेक पुत्रों को उत्पन्न कर सकती थी। सौ पुत्रों की उत्पत्ति के वरदान का उल्लेख पाया जाता है। भूखे और थके व्यास देव को संतुष्ट कर गांधारी ने सौ पुत्रों की माँ होने का वरदान पाया था।

वरदान देकर क्षत्रिय को ब्राह्मण बना देने का उल्लेख मिलता है। च्यवन के वरदान से कुशित नरेश की तीसरी पीढ़ी ब्राह्मण बनी तथा वह स्वयं कौशिक नाम से ब्राह्मणवंश का प्रवर्तक बन गया।

व्यक्ति विशेष को अनेक वरदान दिये जाने का विवरण पाया जाता है। जमदग्नि के वरदान से परशुराम के भाइयों की जड़ता की निवृत्ति हुई, माता पुनर्जीवित होकर अपनी हत्या को भूल गई। स्वयं परशुराम मातृहत्या के पाप से मुक्त होकर दीर्घायु हुए तथा युद्ध में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा था। व्यास के वरदान से संजय दूसरों के मन की बात जान सकता था। दिव्य दृष्टि सम्पन्न होना, दिन रात किसी भी घटना का प्रत्यक्ष कर सकना, अस्त्र-शस्त्रों से अवध्य रहना तथा युद्ध के बाद जीवित रह सकता था।







## मन्त्रशक्ति -

ऋषियों के अभिमन्त्रित से देवों का आह्वान कर सन्तानोत्पत्ति की जा सकती थी। कुन्ती ने दुर्वासा के अभिचार से अभिसंयुक्त मंत्र के द्वारा विभिन्न देवों का आह्वान कर पुत्रों को उत्पन्न किया था। अभिमन्त्रित फल के भक्षण द्वारा पुत्रोत्पत्ति होने का विवरण पाया जाता है। चण्ड कौशिक के अभिमन्त्रित फल को खाकर बृहद्रथ की रानी ने पुत्र को जन्म दिया था।

मन्त्रमय अभेद्य कवच को धारण कर अस्त्र-शस्त्रों से शरीर की रक्षा किये जाने का विवरण मिलता है। द्रोण ने मन्त्रमय अभेद्य-कवच के द्वारा दुर्योधन के शरीर की रक्षा की थी। अभेद्य कवच के निर्माण की प्रक्रिया द्रोण के अतिरिक्त अंगिरा, बृहस्पति और अग्निवेश्य को भी ज्ञात थी।

मन्त्रपूत कुशाओं के द्वारा मारण कर्म किया जा सकता था। ऋषियों ने मन्त्रपूत कुशाओं के द्वारा वेन का संहार कर डाला था। मन्त्रों से मृत व्यक्ति को जीवित करने का उल्लेख पाया जाता है। शुक्राचार्य देवों द्वारा मारे गए दानवों को संजीवनी मंत्र के द्वारा पुनर्जीवित कर देते थे।

मन्त्रों के द्वारा राक्षसों की उत्पत्ति की जाने का विवरण पाया जाता है। च्यवन ने मन्त्रपूर्वक आहुति द्वारा मद राक्षस को उत्पन्न किया था। मन्त्रों के प्रयोग द्वारा व्यक्ति विशेष पर 'आविष्ट' राक्षसों को भगाया जा सकता था। वसिष्ठ ने अभिमन्त्रित जल छिड़ककर कल्माषपाद पर आविष्ट राक्षस को भगा दिया था। रक्षोधन मन्त्रों के द्वारा द्रौपदी की मूर्छा दूर कर दी थी।

देवों के संबंध में मन्त्रों का प्रयोग प्राप्त होता है। संस्तम्भन मन्त्रों से स्तम्भित किया जाता था। संवर्त ने संस्तम्भनी विद्या के द्वारा इन्द्र तथा देवों के अस्त्र-शस्त्रों को स्तम्भित कर दिया था। देवों को आकर्षित कर अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किए जाते थे। व्यास की प्रतिस्मृति विद्या के द्वारा अर्जुन, यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र से अस्त्र-शस्त्र







प्राप्त कर सकते थे। मंत्रबल से देवों को बाध्य कर भाग-ग्रहण कराने का विवरण मिलता है। संवर्त ने अपने मंत्रबल से देवों को भाग ग्रहण करने को विवश कर दिया था।

### दिव्य दृष्टि -

भूतकालीन घटनाओं को दिव्य दृष्टि द्वारा देख सकने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। वसिष्ठ ने वसुओं द्वारा हरण की गई कामधेनु को दिव्य दृष्टि से देख लिया था। वे ऋषिगण एकान्त में किए गए कार्यों को देख सकते थे। तपस्वी तथा दिव्यज्ञानी कण्व ने दुष्यन्त और शकुन्तला के रहःसंयोग को दिव्य दृष्टि से देख लिया था। सूक्ष्म मनोविकारों को प्रत्यक्ष कर सकने का विवरण पाया जाता है। वसिष्ठ ने तपती द्वारा किए गए संवरण के चित्तहरण को देख लिया था।

व्यपहित द्वारा दूर स्थित (वर्तमानकालीन) पदार्थों व मनोभावों को ऋषिगण दिव्य दृष्टि से देख सकते थे। व्यास ने पाण्डवों को शाप देने की गांधारी की इच्छा को देखकर तत्काल जाकर उसका समाधान किया था। दूर स्थित कार्यों को देख सकने का विवरण पाया जाता है। व्यास ने कौरवों की हत्या के लिए काम्यक वन की ओर जाते हुए कौरवों को दिव्य दृष्टि से देखकर अविलम्ब जाकर रोका था।

भविष्य में होने वाली घटनाओं को देखने का विवरण पाया जाता है। कतिपय महर्षियों ने भविष्य में होने वाले दमयन्ती और नल के संयोग तथा दमयन्ती के कल्याण को तपस्या के बल पर देखकर दमयन्ती को आश्वासित किया था। दिव्य दृष्टि प्रदान करने तथा लौटा लेने का विवरण पाया जाता है। महाभारत संग्राम में व्यास द्वारा संजय को दी गई दिव्यदृष्टि संग्राम के साथ नष्ट हो गई थी।

### ज्ञाननेत्र -

कतिपय ऋषियों के ज्ञाननेत्र का उल्लेख पाया जाता है। ज्ञाननेत्र से तात्पर्य संभवतः सूक्ष्म (तीक्ष्ण) बुद्धि से होगा। ज्ञाननेत्र से छद्मवेशधारियों को पहचानने का







विवरण पाया जाता है। जमदग्नि ने ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को ज्ञाननेत्र से पहचान लिया था। काश्यप ब्रह्मर्षि ने जीवित रहने का उपदेश देने वाले इन्द्र का परिचय ज्ञान नेत्रों से प्राप्त कर लिया था। दिव्यदृष्टि के प्रसंग में ज्ञाननेत्र का प्रयोग पाया जाता है। जरासंध के दो भागों में उत्पन्न होने तथा जरा राक्षसी द्वारा जोड़े जाने का दृश्य चण्ड कौशिक ने दिव्यदृष्टि से देखा होगा, पर उस प्रसंग में ऋषि के ज्ञाननेत्र का प्रयोग किया गया है।

### सर्वज्ञता -

कतिपय ऋषियों को सर्वज्ञ माना जाता था। श्रुतिनिधि याज्ञवल्क्य को कोई वस्तु अज्ञात न थी। विश्वावसु के अनुसार याज्ञवल्क्य के सर्वज्ञ होने की चर्चा देवलोक तथा पितृलोक तक में होती थी। ऋषियों की बुद्धि में तीनों लोकों का समाचार प्रतिक्षण प्रतिभासित होते रहने का विवरण पाया जाता है। व्यास के अनुसार नारद की बुद्धि में त्रिलोक का समपचार प्रतिक्षण प्रतिभासित होता रहता था।

कतिपय ऋषियों को त्रिकालज्ञ बताया गया है। वेद व्यास को त्रिकालदर्शी माना जाता था। ऋषियों को व्यक्ति विशेष के जीवन से संबंधित तीनों कालों की घटनाओं का ज्ञान रहता था। वेद व्यास को द्रौपदी के पूर्वजन्म में तपस्विनी ऋषि कन्या होने, वर्तमान में द्रुपद की पुत्री कृष्णा - पांचाली कहलाने तथा भविष्य में पाण्डवों के साथ विवाही जाने का यथावत् ज्ञान था।

### भविष्य कथन -

ऋषियों की भविष्यवाणियों का विवरण पाया जाता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार पम्पापुर वासी महर्षियों ने शबरी के आश्रम में श्रीराम के पधारने की भविष्यवाणी की थी। महाभारत के उल्लेख इस प्रकार है -

ऋषिगण गर्भाधान के समय बालक के भविष्य का कथन कर सकते थे। व्यास ने अम्बिका में गर्भाधान के अतिरिक्त बालक के जन्मान्ध होने की भविष्यवाणी







की थी। अम्बिका की दासी में कामोपेरान्त व्यास ने बालक के धर्मात्मा तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ होने की घोषणा की थी।

शाप विमोक्ष से संबंधित भविष्यवाणी का उल्लेख पाया जाता है। नारद ने वर्गा अप्सरा के दक्षिण सागर के पाँचों द्वीपों में चली जाने पर अर्जुन द्वारा ग्राह योनि से विमुक्त करने की भविष्यवाणी की थी।

वध तथा संहार से संबंधित अनेक भविष्यवाणियों का विवरण प्राप्त होता है। ऋषियों ने शिखण्डी द्वारा होने वाले भीष्म वध की भविष्यवाणी की थी। नारद ने भीम और अर्जुन द्वारा कौरवों के संहार की भविष्यवाणी चौदह वर्ष पहले कर दी थी।

### अंतर्धान होना -

देखते-देखते अंतर्धान होकर अपने-अपने स्थानों में चले जाने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। कतिपय ऋषि आकाश की ओर उछल कर अंतर्धान हो जाया करते थे। नारद आकाश की ओर उछलकर अंतर्धान हो गये थे। आश्रम तथा अग्निहोत्र की सामग्री के सहित अंतर्धान होने वाले ऋषिगण भी थे। दमयन्ती के भावी कल्याण की बात बताकर अंतर्धान होने वाले ऋषिगण अग्निहोत्र की सामग्री तथा आश्रम के सहित गुप्त हुए थे।

एकाकी अंतर्धान होने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। ऋषिगण वार्तालाप करते हुए भी अंतर्धान हो जाया करते थे। सहस्रपाद्मक ऋषि रुरु से वार्तालाप करते हुए अंतर्धान हो गये थे। सांत्वना देकर अंतर्धान होने वाले ऋषि भी थे। वेदव्यास पुत्र शोक कसे संतप्त धृतराष्ट्र को सांत्वना देकर अंतर्धान हो गये थे। कतिपय ऋषि रहस्य की बात बताकर अंतर्निहित हो जाते थे। म्हात्म्य बताकर अंतर्धान होने वाले ऋषि भी थे। पुलत्स्य युधिष्ठिर को तीर्थों की महिमा बताकर अंतर्निहित हुए थे।







सामूहिक रूप से अंतर्धान होने का विवरण मिलता है। भावी कुशलता का समाचार बताकर ऋषिगण अंतर्निहित हो जाते थे। दमयन्ती के भावी कल्याण की बात बताकर कतिपय ऋषि तिरोहित हो गए थे। भावी सर्वनाश का संदेश देकर तिरोहित होने का उल्लेख मिलता है। नारद महाभारत युद्ध की भविष्यवाणी करके अन्य ऋषियों के साथ अंतर्निहित हो गए थे। सभाओं की कार्य पद्धति देखकर ऋषिगण अंतर्धान हो जाते थे। कौरव सभा में कृष्ण का समुद्योप देखकर नारदादि ऋषिगण तिरोहित हो गए थे।

यज्ञ-यज्ञादि में सम्मिलित होकर अंतर्धान होने का विवरण मिलता है। युधिष्ठिर के यज्ञ का अवलोकन कर ऋषिगण सामूहिक रूप से तिरोहित हो गए थे।

#### (६) महाभारतीय ऋषियों की कतिपय विशेषताएँ :-

महाभारतीय ऋषि वेदज्ञ होते थे। वेदज्ञता और बहुश्रुतता के आधार पर अन्य व्यक्ति भी महर्षियों के तुल्य मान लिये जाते थे। महा ऋषि वेद घोष करके वेदों का संरक्षण करते थे। द्रोण जैसे ऋषि युद्ध स्थल में भी वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया करते थे। परशुराम चारों वेदों तथा वेदमाता गायत्री के द्वारा निरन्तर समन्वित रहते थे। वसिष्ठ साम का उद्घोष करते थे। ऋषिगण गुरुमुख से वेदाध्ययन करते थे। साठ हजार महर्षियों ने सारस्वत को गुरु बनाकर वेदाध्ययन किया था। उपमन्यु ने आयोद धौम्य द्वारा अधीत 'ऋग्वैदिक ऋचाओं' से अश्विनी कुमारों की स्तुति की थी। शुकदेव ने बृहस्पति तथा वेदव्यास से वेदमन्त्रों का अध्ययन किया था।

महाभारतीय ऋषियों की दूसरी विशेषता उनकी तपस्या थी। तपस्या तथा यज्ञ द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति करने वाले ऋषियों का विवरण मिलता है। जरत्कारु जैसे ऋषि तपस्या द्वारा शरीर को क्षीण कर लेते थे। च्यवन को तपोवृद्ध बताया गया है।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



ऋषियों में यज्ञों का प्रचलन था। अग्निहोत्र जैसे छोटे यज्ञों का नियमित अनुष्ठान किया जाता था। स्नान, संध्या, सूर्योपासना का व्यापक प्रचार था। जरत्कारु आचमन करके संध्योपासना करता था। परशुराम जैसे ऋषि अश्वमेध तथा बाजपेय जैसे बृहद् यज्ञों का अनुष्ठान किया करते थे। जाजलि के सूर्योपासना का विवरण प्राप्त होता है। नारद सूर्योपासना करते थे।

अध्यापन कार्य करने वाले ऋषियों का विवरण पाया जाता है। आयोदधौम्य का अध्यापन कार्य प्रसिद्ध था। द्रोण वेदाभ्यास के बाद शस्त्राभ्यास भी कराया करते थे। परशुराम एवं वेद व्यास के शिष्यों का उल्लेख पाया जाता है।

महाभारतीय ऋषियों की अन्य विशेषताओं में उनका अतिथि सत्कार, परदुःख कातरता तथा अन्याय का प्रतिकार प्रसिद्ध है। उनके वैवाहिक जीवन की विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।

### विशिष्ट स्वभाव के लिए प्रसिद्ध महर्षिगण -

कतिपय महर्षि ऐसे हैं जिनकी प्रसिद्धि उनके स्वभाव विशेष के कारण है - जैसे दयालु वसिष्ठ, क्रोधी दुर्वासा, बलशाली एवं क्रोधी परशुराम, लोक कल्याण करने वाले अगस्त्य, शांत प्रकृति के व्यास, उग्र महर्षि और इत्यादि।

हम यहाँ उनकी स्वभावगत विशिष्टता को प्रकट करने वाली कुछ घटनाएँ विस्तार से प्रकट कर रहे हैं :-

### वसिष्ठ

#### शांत एवं गंभीर स्वभाव वाले वसिष्ठ -

महर्षि वसिष्ठ अत्यंत शांत एवं गंभीर प्रकृति के ऋषि थे। उन्हें कोई भी घटना या उत्तेजना विचलित नहीं कर पाती थी। निंदा अथवा प्रशंसा, द्वेष अथवा प्रेम से उनमें कोई अंतर नहीं पड़ता था।







एक समय विश्वामित्र ने तपस्या में होड़ लगाकर महर्षि वसिष्ठ से बैर कर लिया था। सरस्वती के स्नानार्थ में पूर्वतट पर महर्षि वसिष्ठ का बहुत बड़ा आश्रम था और पश्चिम तट पर विश्वामित्र का आश्रम बना हुआ था। वसिष्ठ मुनि ने अत्यंत क्रोधित होकर सरस्वती नदी का स्मरण किया। उन मुनि के चिन्तन करने पर विचारशीला सरस्वती व्याकुल हो उठी, उसे ज्ञात हो गया कि - ये महान् शक्तिशाली ऋषि इस समय क्रोध से भरे हुए हैं, इससे वह भयभीत हो मुनिवर विश्वामित्र की सेवा में उपस्थित हुई। तब विश्वामित्र ने उन्हें आदेश दिया - 'वसिष्ठ को शीघ्र ही यहाँ बहा कर ले आओ, जिससे मैं आज उनका वध कर दूँगा।' यह सुनकर सरस्वती विश्वामित्र के क्रोध तथा वसिष्ठ के तेज को स्मरण करके काँपने लगी। तब विश्वामित्र ने उसने कहा - "बिना कोई विचार किए वसिष्ठ को यहाँ मेरे पास ले आओ।" यह सुनकर सरस्वती ने वसिष्ठ मुनि के समक्ष जाकर विश्वामित्र ने जो कुछ कहा था वह सब कह सुनाया। उसे भयभीत देखकर मुनि ने उससे कहा - 'श्रेष्ठ सरस्वती। तुम शीघ्र गति से प्रवाहित होकर मुझे बहा कर ले जाओ अन्यथा विश्वामित्र तुम्हें शाप दे देंगे।' उन कृपाशील महर्षि का यह वचन सुनकर सरस्वती ने विचार किया - क्या करने से शुभ होगा। महर्षि ने मुझ पर दया की है तब उनका भी हित करना चाहिए। यह सोचकर उसने वेग से महर्षि वसिष्ठ के आश्रम सहित उन्हें वहाँ ले गई और विश्वामित्र से निवेदन किया कि - 'वसिष्ठ मुनि उपस्थित हैं' सरस्वती नदी का यह वचन सुनकर महर्षि विश्वामित्र वसिष्ठ के जीवन का अंत करने के लिए कोई साधन ढूँढ़ने लगे।

तब सरस्वती नदी ने ब्रह्म हत्या के भय से विश्वामित्र को भ्रमित कर महर्षि वसिष्ठ को पुनः पूर्व दिशा की ओर बहा कर ले गई। इससे क्रोधित हो विश्वामित्र ने सरस्वती को शाप दे दिया कि - तुम्हारा जल रक्तमिश्रित हो जाएगा जो राक्षसों को अधिक प्रिय होगा। बाद में ऋषियों के प्रयत्न से सरस्वती के जल की शुद्धि हुई थी।







इस प्रकार विश्वामित्र के द्वारा अत्यंत बैर भाव रखने एवं जीवन का अंत कर देने के लिए उद्यत विश्वामित्र के प्रति भी महर्षि वसिष्ठ अत्यंत शांतचित्त तथा गंभीर हो रहे थे। वे उनके किसी प्रयत्न से विचलित नहीं हुए।

### दयालु एवं क्षमाशील वसिष्ठ -

महर्षि वसिष्ठ के प्रभाव से ही विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, फिर भी उनसे बैरभाव रखते थे। वसिष्ठ पुत्र शक्ति द्वारा शापित कल्माषपाद को देखकर विश्वामित्र ने एक राक्षस को राजा के भीतर प्रवेश करने के लिए आज्ञा दी। महर्षि शक्ति के शाप तथा विश्वामित्र की आज्ञा से वह किंकर नामक राक्षस राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गया। एक दिन शक्ति को सामने पाकर इस राक्षस ने (शापग्रस्त राजा कल्माषपाद न) वसिष्ठ पुत्र शक्ति को मार डाला। इसके बाद विश्वामित्र ने उस राजा रूपी राक्षस को सभी वसिष्ठ पुत्रों को मार डालने का आदेश दिया। उस राक्षस ने सभी वसिष्ठ पुत्रों को मार डाला।

इस प्रकार विश्वामित्र ने वसिष्ठ के साथ वैरभाव का कुत्सित प्रदर्शन किया। परन्तु यह जानकर भी कि विश्वामित्र ने मेरे सभी पुत्रों को मार डाला है। वसिष्ठ शोकग्रस्त हो गए परन्तु कुपित नहीं हुए। अपने पुत्रों के वियोग में पुत्र वत्सल पिता वसिष्ठ ने अपना शरीर त्याग देने हेतु अनेक प्रयास किये। उन्होंने अपने को ही समाप्त करने की बात सोची, परन्तु विश्वामित्र का मूलोच्छेद करने की बात उन महान् बुद्धिमान महर्षि के मन में नहीं आयी।

चक्रे चात्मविनाशाय बुद्धिं स मुनिसतमः ।  
न त्वेवं कौशिकोच्छेदं मेने मतिमतां वरः ॥

(आदि १७५।४४)

उन क्षमाशील उदारमना महर्षि ने बाद में कल्माषपाद द्वारा किए गए इतने भयंकर अपराध को भी क्षमा कर अपनी योग तथा तपःशक्ति से उन्हें शाप मुक्त कर







दिया तथा यही नहीं, कल्माषपाद द्वारा पुत्र की याचना करने पर यथासमय महर्षि वसिष्ठ ने उस राजा की राजधानी में जाकर उनकी महारानी के साथ नियोग के द्वारा राजा को एक अश्मक नामक पुत्र भी प्रदान किया।

ऐसे महान् दयालुता, क्षमाशीलता, सहनशीलता, पुत्र वत्सलता आदि गुणों से युक्त महातपस्वी महामुनि वसिष्ठ थे।

## कण्व

दयालु महर्षि -

महर्षि कण्व तपस्वी, धृतिमान्, धर्मज्ञ तथा महात्मा थे। उन्होंने मेनका तथा विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला का पालन पोषण कर उसे अपनी पालित पुत्री माना था। सभी शकुन्तला को महर्षि कण्व की पुत्री मानते थे। शकुन्तला के ही शब्दों में -

कण्वस्याहं भगवतो दुष्यन्त ! दुहितामता ।

तपस्विनो धृतिमतो धर्मस्य महात्मनः॥ (आदि ७१।१४)

काश्यप नन्दन महर्षि कण्व शकुन्तला के पिता एवं गुरु थे। महर्षि कण्व ने मानवता एवं दयालुता के कारण ही शकुन्तला का पालन पोषण किया।

महर्षि कण्व समस्त प्राणियों की बोली समझते थे। वे सब जीवों के प्रति दयाभाव रखते थे। वे स्वयं कहते हैं -

सर्वभूतरुतज्ञोऽहं दयावान् सर्वजन्तुषु ।

निर्जनेऽपि महारण्ये शकुनैः परिवारिताम् ॥

आनयित्वा तत्नचैनां दुहितृत्वे न्यवेशयम् ॥

(आदि ७२।१४)

महर्षि कण्व दिव्य ज्ञान से सम्पन्न थे। उन्होंने शकुन्तला के बिना बताये ही उसकी तात्कालिक अवस्था को जान लिया था। ज्ञान दृष्टि उनकी शक्तिशाली थी।







महर्षि कण्व ने, महातपस्वी एवं उर्ध्वरेता ऋषि होते हुए भी, शकुन्तला को पुत्री मानकर उसका पालन पोषण किया। समस्त संस्कार पूरे किए जो कि गृहस्थ पिता करता है। उनके बाद शकुन्तला को पुत्र उत्पन्न होने पर भी उन्होंने उस बालक का, ब्राह्मणों को बुलाकर विधिपूर्वक जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न कराया। अपनी धर्म पुत्री अथवा पालित पुत्री शकुन्तला को एक गृहस्थ के सदृश ही पतिगृह भेजा। त्यागी तपस्वी होने के उपरांत भी उन्हें उतना ही शोक हुआ जितना एक गृहस्थ को होता है।

महर्षि कण्व ने आचार्य होकर अपनी पुत्री शकुन्तला के चक्रवर्ती सम्राट् पुत्र भरत से प्रचुर दक्षिणाओं से युक्त 'गोवितत' नामक अश्वमेध यज्ञ का विधिपूर्वक अनुष्ठान करवाया। भरत ने उस यज्ञ का पूरा फल प्राप्त किया।

## पराशर

### क्रोध एवं बदले की भावना -

पिता की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर पराशर का क्रोधित होना, पितामह वसिष्ठ का उन्हें समझाना - एक दिन ब्रह्मर्षि पराशर ने अपनी माता अदृश्यन्ती के सामने ही वसिष्ठ जी को 'तात' कहकर पुकारा। बेटे के मुख से परिपूर्ण अर्थ का बोधक 'तात' यह मधुर वचन सुनकर अदृश्यन्ती के नेत्रों में आँसू भर आये और वह उससे बोली - बेटा ! ये तुम्हारे पिता के भी पिता हैं तुम इन्हें तात ! तात ! कहकर न पुकारो। वत्स ! तुम्हारे पिता को तो वन के भीतर राक्षस खा गये। अनघ ! तुम जिन्हें तात मानते हो, ये तुम्हारे पिता के भी पूजनीय पिता हैं। माता के यों कहने पर संत्यवादी मुनिश्रेष्ठ महामना पराशर दुःख से आतुर हो उठे। उन्होंने उसी समय सब लोकों को नष्ट कर डालने का विचार किया। उनके मन का ऐसा निश्चय जान ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महातपस्वी, महात्मा एवं तात्त्विक बुद्धि वाले मित्रावरुण नंदन वसिष्ठ जी ने पराशर







को ऐसा करने से रोका। उन्होंने पराशर को और्व मुनि का उपाख्यान सुनाया और उससे उन्हें उपदेशित करते हुए शांत किया।

पराशर द्वारा राक्षस सत्र का अनुष्ठान एवं पुलस्त्य आदि महर्षियों के समझाने से राक्षस सत्र की समाप्ति -

महर्षि वसिष्ठ के समझाने पर (और्व उपाख्यान सुनाकर समझाने पर) उन महर्षि पराशर ने अपने क्रोध को समस्त लोकों के पराभव से रोक लिया। तब संपूर्ण वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ महातेजस्वी शक्तिनंदन पराशर ने राक्षस सत्र का अनुष्ठान किया। उस विस्तृत सत्र में अपने पिता शक्ति के वध का बार-बार चिंतन करते हुए महामुनि पराशर ने राक्षस जाति के बूढ़े तथा बालकों को भी जलाना आरंभ किया। उस समय महर्षि वसिष्ठ ने यह सोचकर कि इसकी दूसरी प्रतिज्ञा को न तोड़ूँ, उन्हें राक्षसों के वध से नहीं रोका। उस यज्ञ में तीन प्रज्वलित अग्नियों के समक्ष महामुनि पराशर चौथे अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे।

पापी राक्षसों का संहार करने के कारण वह यज्ञ अत्यंत निर्मल एवं शुद्ध समझा जाता था। शक्तिनंदन पराशर द्वारा उसमें यज्ञ सांमाग्री का हवन आरंभ होते ही (वह इतना प्रज्वलित हो उठा कि) उसके तेज से संपूर्ण आकाश ठीक उसी तरह उद्भासित होने लगा, जैसे वर्षा बीतने पर सूर्य की प्रभा से उद्दीप्त हो उठता है। उस समय वसिष्ठ आदि मुनियों को वहां तेज से प्रकाशमान महर्षि पराशर दूसरे सूर्य के समान जान पड़ते थे। तदन्तर दूसरों के लिये उस यज्ञ को बंद करना कठिन जानकर महर्षि अत्रि स्वयं उसे समाप्त करने की इच्छा से पराशर के पास आये। उसी प्रकार पुलस्त्य पुलह, क्रुत और महाक्रुत ने भी राक्षसों के जीवन की रक्षा के लिये वहां पदार्पण किया। उन राक्षसों का विनाश होते देख महर्षि पुलस्त्य ने पराशर से यह बात कही - तात् ! तुम्हारे इस यज्ञ में कोई विघ्न नहीं पड़ा, बेटा ! तुम्हारे पिता की हत्या के विषय में कुछ भी न जानने वाले इन सभी निर्दोष राक्षसों का वध करके क्या तुम्हें







प्रसन्नता होती है? वत्स ! तुम्हें मेरी संतति का इस प्रकार उच्छेद नहीं करना चाहिया। यह हिंसा तपस्वी ब्राह्मणों का धर्म कभी नहीं मानी गई। पराशर ! शांत रहना ही ब्राह्मणों का श्रेष्ठ धर्म है। अतः उसी का आचरण करो। तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी यह पाप कर्म करते हो। तुम्हारे पिता शक्ति धर्म के ज्ञाता थे, तुम्हें इस अधर्म कृत्य द्वारा उनकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। फिर मेरी संतानों का विनाश करना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। शक्ति के शाप से ही उस समय यह दुर्घटना हो गई थी। वे अपने ही अपराध से स्वर्गवासी हुये। इसमें राक्षसों का कोई दोष नहीं है। कोई भी राक्षस उन्हें खा नहीं सकता था, अपने ही शाप से उन्हें अपनी मृत्यु देखनी पड़ी।

विश्वामित्र तथा राजा कल्माषपाद भी इसमें इस समय तुम्हारे पिता शक्ति स्वर्ग में आनंद भोग कर रहे हैं। शक्ति के जो छोटे भाई थे, वे भी देवताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक सुख भोग रहे हैं। महर्षि ! तुम्हारे पितामह वसिष्ठ जी को ये सब बातें ज्ञात हैं। तात् शक्तिनंदन। तेजस्वी राक्षसों के विनाश कि लिये आयाजित इस यज्ञ में तुम भी निमित्तमात्र ही हो। अतः अब इस यज्ञ को छोड़ दो। पुलस्त्य जी के ऐसा कहने पर पराशर ने उसी समय उस यज्ञ को समाप्त कर दिया। संपूर्ण राक्षसों के विनाश के लिये संचित की गई उस अग्नि को हिमालय के आसपास के विशाल वन में छोड़ दिया।

## महर्षि कपिल

ऋषि स्वभाव तेजस्वी -

सगर के पुत्रों का भस्म होना -

एक समय राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। कुछ समय विचरण करने के बाद उनका यज्ञिय अश्व सहसा ही लुप्त हो गया। बहुत प्रयत्न के बाद भी वह अश्व सगर पुत्रों को प्राप्त नहीं हुआ। तदनन्तर क्रोध में भरे हुए सगर पुत्रों ने समुद्र के







पूर्वोत्तर प्रदेश में पाताल फोड़कर प्रवेश किया और उस यज्ञिय अश्व को पृथ्वी पर विचरते देखा। वहीं तेज की परम उत्तम राशि महात्मा कपिल बैठे थे, जो अपने दिव्य तेज से उसी प्रकार उद्भासित हो रहे थे, जैसे लपटों से अग्नि। उस अश्व को देखकर सगर पुत्रों को बड़ा हर्ष हुआ।

वे काल से प्रेरित हो क्रोध में भरकर महात्मा कपिल का अनादर करके उस अश्व को पकड़ने के लिये दौड़े। तब मुनि श्रेष्ठ कपिल कुपित हो उठे। मुनि प्रवर कपिल वे ही भागवान् विष्णु हैं, जिन्हें वासुदेव कहते हैं। उन महातेजस्वी ने विकराल आखें करके अपना तेज उन पर छोड़ दिया और मंद बुद्धि सगरपुत्रीं को जला दिया।

ततः क्रुद्धों महाराज कपिलो मुनिसतमः ।  
वासुदेवेति यं प्राहुः कपिलं मुनिपुंगवम् ।  
स चक्षुर्विकृतं कृत्वा तेजस्तेषु समुत्सृजन् ॥  
ददाह सुमहातेजाः मन्दबुद्धीन स सागरान् ॥

(वन १०७।३२)

उन्हें भस्म हुआ देख देवर्षि नारद राजा सगर के समीप गये और उनसे सब समाचार निवेदित किया। मुनि के मुख से निकले हुए घोर वचन को सुनकर राजा दो घड़ी तक अनमनें हो महादेवजी के कथन पर विचार करते रहे। वे पुनः अश्व को दूढ़ने के लिये अपने पुत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान् अर्थात् अपने पौत्र को बुलाकर यह बात कही - तात् ! मेरे अमित तेजस्वी साठ हजार पुत्र मेरे ही लिये महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि में पड़कर नष्ट हो गये। पुरवासियों के हित की रक्षा रखकर धर्म की रक्षा करते हुए मैंने तुम्हारे पिता को भी त्याग दिया है। अश्व के न मिलने से तथा यज्ञ में विघ्न पड़ने से और अपने पुत्रों की मृत्यु हो जाने से मैं दुःख से संतप्त हूँ। तुम अश्व को ले आकर मेरा उद्धार करो। महात्मा सगर के ऐसा कहने पर अंशुमान् बड़े दुःख से उस स्थान पर गये जहाँ पृथ्वी विदीर्ण की गई थी। उन्होंने उसी मार्ग से समुद्र में प्रवेश किया और महात्मा कपिल तथा यज्ञिय अश्व को देखा। तेजो राशि मुनिप्रवर, पुराण







पुरुष कपिल जी का दर्शन करके अंशुमान् ने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया और अपना कार्य बताया। इससे धर्मात्मा कपिल अंशुमान् पर प्रसन्न हो गये और बोले मैं तुम्हें वर देने उद्यत हूँ। अंशुमान् ने पहले तो यज्ञकार्य की सिद्धि के लिये उस अश्व के लिये प्रार्थना की और दूसरा वर अपने पितरों को पवित्र करने की इच्छा से मांगा।

तब मुनिश्रेष्ठ कपिल ने अंशुमान् से कहा - अनघ ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ मांगते हो वह सब तुम्हें दूँगा। तुममें क्षमा, धर्म और सत्य सब कुछ प्रतिष्ठित है। तुम जैसे पौत्र को पाकर राजा सगर कृतार्थ हैं और तुम्हारे पिता तुम्हीं से वस्तुतः पुत्रवान् है। तुम्हारे ही प्रभाव से सगर के सारे पुत्र जो मेरी कोधाग्नि में शलम की भांति नष्ट हो गये हैं, स्वर्ग लोक में चले जाएंगे। तुम्हारा पौत्र भगवान् शंकर को संतुष्ट करके सगर पुत्रों को पवित्र करने के लिये स्वर्ग से यहाँ गंगाजी को ले आयेगा। तुम्हारा भला हो तुम इस यज्ञिय अश्व को ले जाओ। तात् ! महात्मा सगर का यज्ञ पूर्ण करो। महात्मा कपिल के ऐसा कहने पर अंशुमान् उस अश्व को लेकर सगर के यज्ञ मण्डप में आये और उनके चरणों में प्रणाम करके सब समाचार निवेदन किया। अंशुमान् ने सगर पुत्रों का जैसा विनाश देखा था और सुना था वह सब बताया, साथ ही यह भी बताया कि यज्ञिय अश्व यज्ञ मण्डप में आ गया है, तब राजा सगर ने पुत्रों का शोक त्याग, यज्ञ पूर्ण किया।

अन्य -

कपिल मुनि के विषय में कहा गया कि - जो दीप्तिमान् महापुरुष शुक्ल और कृष्ण गति के आधार हैं, जो अग्नि को धारण करते हैं, जिनमें किसी प्रकार का कल्मष अर्थात् विकार नहीं है तथापि जो समस्त विकार स्वरूप जगत के कर्त्ता हैं, यानि लोग जिन्हें सदा महर्षि कपिल के नाम से कहा करते हैं, जो सांख्ययोग के प्रवर्तक हैं वे क्रोध स्वरूप अग्नि के आश्रय कपिल नामक अग्नि हैं। ये मनु के चौथे पुत्र हैं।







पुरुष कपिल जी का दर्शन करके अंशुमान् ने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया और अपना कार्य बताया। इससे धर्मात्मा कपिल अंशुमान् पर प्रसन्न हो गये और बोले मैं तुम्हें वर देने उद्यत हूँ। अंशुमान् ने पहले तो यज्ञकार्य की सिद्धि के लिये उस अश्व के लिये प्रार्थना की और दूसरा वर अपने पितरों को पवित्र करने की इच्छा से मांगा।

तब मुनिश्रेष्ठ कपिल ने अंशुमान् से कहा - अनघ ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ मांगते हो वह सब तुम्हें दूँगा। तुममें क्षमा, धर्म और सत्य सब कुछ प्रतिष्ठित है। तुम जैसे पौत्र को पाकर राजा सगर कृतार्थ हैं और तुम्हारे पिता तुम्हीं से वस्तुतः पुत्रवान् है। तुम्हारे ही प्रभाव से सगर के सारे पुत्र जो मेरी कोधाग्नि में शलम की भांति नष्ट हो गये हैं, स्वर्ग लोक में चले जाएंगे। तुम्हारा पौत्र भगवान् शंकर को संतुष्ट करके सगर पुत्रों को पवित्र करने के लिये स्वर्ग से यहाँ गंगाजी को ले आयेगा। तुम्हारा भला हो तुम इस यज्ञिय अश्व को ले जाओ। तात् ! महात्मा सगर का यज्ञ पूर्ण करो। महात्मा कपिल के ऐसा कहने पर अंशुमान् उस अश्व को लेकर सगर के यज्ञ मण्डप में आये और उनके चरणों में प्रणाम करके सब समाचार निवेदन किया। अंशुमान् ने सगर पुत्रों का जैसा विनाश देखा था और सुना था वह सब बताया, साथ ही यह भी बताया कि यज्ञिय अश्व यज्ञ मण्डप में आ गया है, तब राजा सगर ने पुत्रों का शोक त्याग, यज्ञ पूर्ण किया।

अन्य -

कपिल मुनि के विषय में कहा गया कि - जो दीप्तिमान् महापुरुष शुक्ल और कृष्ण गति के आधार हैं, जो अग्नि को धारण करते हैं, जिनमें किसी प्रकार का कल्मष अर्थात् विकार नहीं है तथापि जो समस्त विकार स्वरूप जगत के कर्त्ता हैं, यानि लोग जिन्हें सदा महर्षि कपिल के नाम से कहा करते हैं, जो सांख्ययोग के प्रवर्तक हैं वे क्रोध स्वरूप अग्नि के आश्रय कपिल नामक अग्नि हैं। ये मनु के चौथे पुत्र हैं।







कपिलं परमर्षिं च यं प्राहुर्यतयः सदा ।

अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोग प्रवर्तकः ॥

(वन २२१।२१)

ऋषि स्वभाव (उग्र) -

परशुराम, भृगु तथा ऋचीक के वंशज थे। उनकी माता का नाम रेणुका था।

अहंकारी स्वाभाव के कारण परशुराम जी के तेज का अपहरण -

एक समय भगवान् श्रीरामचंद्र का भारी पराक्रम सुनकर परशुराम उन्हें देखने के लिये उत्सुक हो क्षत्रिय संहारक दिव्य धनुष लिये अयोध्या में आये। वे श्री राम के बल पराक्रम परीक्षा करना चाहते थे।

परशुराम के आगमन का समाचार सुन दशरथ ने मुनि की आगवानी के लिये अपने पुत्र को भेजा। श्रीरामचन्द्रजी धनुषबाण हाथ में लिये खड़े हैं, यह देखकर परशुराम जी ने हंसते हुए कहा - राजेन्द्र ! यदि तुममें शक्ति हो तो यत्न पूर्वक इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाओ। यह वह धनुष है, जिसके द्वारा मैंने क्षत्रियों का संहार किया है। उनके ऐसा कहने पर श्रीराम ने कहा - भगवन् ! आपको इस तरह आक्षेप नहीं करना चाहिये। मैं भी समस्त द्विजातियों में क्षत्रिय धर्म का पालन करने में अधम नहीं हूँ। विशेषतः इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय अपने बाहुबल की प्रशंसा नहीं करते। श्रीरामचन्द्र के ऐसा कहने पर परशुराम जी बोले - रघुनंदन ! बातें बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। यह धनुष लो और इस पर प्रत्यंचा चढ़ाओ। तब श्रीराम ने रोषपूर्वक परशुराम का वह वीरक्षत्रियों का संहारक दिव्य धनुष उनके हाथ से ले लिया और उन्होंने लीलापूर्वक प्रत्यंचा चढ़ा दी। तत्पश्चात् पराक्रमी रामचन्द्र ने मुस्कुराते हुए धनुष की टंकार फैलायी। श्रीराम ने परशुराम से कहा - ब्रह्मन् ! यह धनुष तो मैंने चढ़ा दिया, अब और आपका कौन सा कार्य करूं ? तब परशुराम ने श्रीराम को एक दिव्य बाण दिया और कहा - इसे धनुष पर रखकर अपने कान के पास तक खींचो। इतना सुनते ही



३११

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः  
॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

(१८८८)

- (१८८) आर्यभट्टः

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

- आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८

॥ अथ आर्यभट्टः ॥ ८ विंशत्यधिकः ॥ ८



श्रीरामचन्द्र जी मानो क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और बोले - भृगुनन्दन ! तुम बड़े घमण्डी हो। मैं तुम्हारी कठोर बातें सुनता हूँ फिर क्षमा कर लेता हूँ। तुमने अपने पितामह ऋचीक के प्रभाव से क्षत्रियों को जीतकर विशेष तेज प्राप्त किया है, निश्चय ही इसीलिये मुझ पर आक्षेप करते हो। लो मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देता हूँ। उसके द्वारा मेरे यथार्थ स्वरूप का दर्शन करो।

तब भृगुवंशी परशुराम जी ने श्रीरामचन्द्र जी के शरीर में दिव्य रूप का दर्शन किया। तदनंतर भगवान् विष्णु श्रीरामचन्द्र जी ने उस बाण को छोड़ा। श्रीरामचन्द्रजी की भुजाओं से प्रेरित हुआ वह प्रज्वलित बाण परशुराम जी को व्याकुल करके केवल उनके तेज को छीनकर पुनः लौट आया। परशुराम जी मूर्छित हो जब पुनः होश में आये तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार किया।

तत्पश्चात् उनकी आज्ञा ले पुनः महेन्द्र पर्वत पर चले गये। वहाँ भयभीत और लज्जित हो महान् तपस्या में संलग्न होकर रहने लगे। तदन्तर एक वर्ष बीत जाने पर तेजहीन और अभिमान शून्य रहने वाले परशुराम को दुखी देखकर उनके पितरों ने कहा - तुमने भगवान् विष्णु के पास जाकर जो बर्ताव किया है वह ठीक नहीं था। अब तुम वधूसर नामक पुण्यमयी नदी के तट पर जाओ और वहाँ तीर्थों में स्नान करके पूर्ववत् अपना तेजोमय शरीर पुनः प्राप्त कर लोगे। वह दीप्तोदक नामक तीर्थ है जहाँ देवयुग में तुम्हारे पितामह भृगु ने उत्तम तपस्या की थी। पितरों के कहने पर परशुराम ने उस तीर्थ में स्नान कर पुनः अपना तेज प्राप्त किया।

जमदग्नि की पत्नि रेणुका के गर्भ से क्रमशः चार पुत्र हुए फिर पांचवे पुत्र परशुरामजी का जन्म हुआ। अवस्था की दृष्टि से भाइयों में छोटे होने पर भी गुणों में उन सबसे बड़े-चढ़े थे।







## ऋषि स्वभाव (जमदग्नि) उग्र -

एक दिन जब सब पुत्र फल लाने वन में चले गये तब नियम पूर्वक उत्तम व्रत का पालन करने वाली रेणुका स्नान करने नदी तट पर गयी। जब वह स्नान करके लौटने लगी, उस समय अकस्मात् उसकी दृष्टि राजा चित्ररथ पर पड़ी, जो अपनी पत्नी के साथ जल में क्रीड़ा कर रहा था। उस समृद्धशाली नरेश को उस अवस्था में देखकर रेणुका ने उसकी इच्छा की। उस समय इस मानसिक विकार से त्रस्त हो उसने आश्रम के भीतर प्रवेश किया परन्तु पतिदेव उसकी बस बातें जान गये। उसे धैर्य से च्युत और ब्रह्मतेज से वंचित हुई देखकर उन महातेजस्वी शक्तिशाली महर्षि ने धिक्कारपूर्ण वचनों द्वारा उसकी निंदा की। इसी समय जमदग्नि के ज्येष्ठ पुत्र स्मरणवान् वहाँ आ गये। फिर क्रमशः सुषेण, वसु और विश्वावसु भी आ पहुँचे। भगवान् जमदग्नि ने बारी-बारी से उन सभी पुत्रों को यह आज्ञा दी कि तुम अपनी माता का वध कर डालो। परन्तु मातृस्नेह से वे कुछ न बोल सके। तब महर्षि ने कुपित होकर उन सब पुत्रों को शाप दे दिया। शापग्रस्त होने पर वे अपनी चेतना (विचार शक्ति) खो बैठे और पक्षियों के समान जड़बुद्धि हो गये। तदन्तर अपने पिता की आज्ञा से परशुरामजी का अपनी माता का मस्तक काटना और उन्हीं के वरदान से पुनः जिलाना।

जब महर्षि जमदग्नि अपने चारों पुत्रों को शाप दे दिया उस समय उनके पाँचवें पुत्र परशुराम वहाँ पहुँचे। उस समय महातपस्वी जमदग्नि ने उनसे कहा - बेटा! अपनी इस पापिनी माता को अंभी मार डालो और उसके लिये मन में कोई खेद न करो। तब परशुराम जी ने फरसा लेकर उसी क्षण माता का मस्तक काट डाला। इससे जमदग्नि का कोप सहसा शांत हो गया और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा - तात ! तुमने मेरे कहने से वह कार्य किया है, जिसे करना दूसरों के लिये बहुत कठिन है। तुम धर्म के ज्ञाता हो। तुम्हारे मन में जो-जो कामनायें हो उन सबको मांग लो। तब परशुराम जी ने कहा - पिताजी ! मेरी माता जीवित हो उठे, उन्हें मेरे द्वारा मारे जाने







परशु की बात याद न रहे, वह मानस पाप उनका स्पर्श न कर सके। मेरे चारों भाई स्वस्थ हो जायें, युद्ध में मेरा सामना करने वाला कोई नहीं और मैं बड़ी आयु प्राप्त करूँ। महातपस्वी जमदग्नि ने उनकी सब कामनायें वर देकर पूर्ण कर दी।

परशुराम द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन का वध एवं उसके (कार्तवीर्य के) पुत्रों द्वारा जमदग्नि मुनि का वध -

एक दिन जमदग्नि के सब पुत्र बाहर गये हुए थे इसी समय कार्तवीर्य अर्जुन उधर आ निकला। आश्रम में आने पर ऋषि पत्नी रेणुका ने उसका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। कार्तवीर्य अर्जुन युद्ध के मद से उन्मत्त हो रहा था। उसने उस सत्कार को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं किया। उल्टे मुनि के आश्रम को तहस-नहस करके होमधेनु को बलपूर्वक हर कर ले गया। जब परशुराम जी आश्रम में आये। तब जमदग्नि ने उनसे सारी बातें कहीं। इससे वे अत्यंत कुपित हो उठे और काल के वशीभूत हुए कार्तवीर्य अर्जुन पर धावा बोल दिया। परशुराम ने अपना सुंदर धनुष ले युद्ध में पराक्रम दिखाकर पैने वाणों द्वारा उसकी सहस्र भुजाओं को काट डाला। इस प्रकार परशुराम जी से परास्त हो अर्जुन काल के गर्त में चला गया।

पिता के मारे जाने से कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्र कुपित हो उठे और एक दिन परशुराम की अनुपस्थिति में जब आश्रम पर केवल जमदग्नि ही रह गये थे, वे उन्हीं पर चढ़ आये। यद्यपि जमदग्नि जी भी महान् शक्तिशाली थे, किन्तु तपस्वी ब्राह्मण होने के कारण युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुए। इस दशा में भी कार्तवीर्य के पुत्र उन पर प्रहार करने लगे। वे महर्षि अनाथ की भांति राम ! राम !! की रट लगा रहे थे। उसी अवस्था में उन्होंने मुनि को बाँसों से घायल करके मार डाला। इस प्रकार मुनि की हत्या करके वे चले गये। जमदग्नि के मारे जाने के बाद परशुराम जी हाथ में समिधा लिये आश्रम में आये। वहाँ अपने पिता को दुर्दशापूर्वक मरा देखकर उन्हें बहुत दुख हुआ। वे विलाप करने लगे।







## परशुराम द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करना -

अनेक प्रकार से विलाप कर परशुराम ने विधिपूर्वक अग्नि में पिता का दाह संस्कार किया और तत्पश्चात् सम्पूर्ण क्षत्रियों के वध की प्रतिज्ञा की। अत्यन्त बलवान् एवं पराक्रमी परशुराम जी क्रोध के आवेश में साक्षात् यमराज हो गये। उन्होंने युद्ध में शस्त्र लेकर अकेले ही कार्तवीर्य के सब पुत्रों को मार डाला। उस समय जिन क्षत्रियों ने अर्जुन पुत्रों का साथ दिया उन सबको भी परशुराम ने मिट्टी में मिला दिया।

इस प्रकार परशुराम जी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया और उनके रक्त से समन्त पञ्चक क्षेत्र में पाँच रुधिर कुण्ड भर दिया। उन कुण्डों में भृगुवंशी पितरों का तर्पण किया और उस समय साक्षात् प्रकट हुए महर्षि ऋचीक को देखा। उन्होंने परशुराम जी को इस घोर कर्म से रोका।

तदन्तर जमदग्नि कुमार ने एक महान् यज्ञ करके इन्द्र को प्रसन्न किया। अनेक दान दिये और तबसे परशुराम जी महेन्द्र पर्वत पर निवास करने लगे।

## क्रोधी ऋषि दुर्वासा -

महर्षि दुर्वासा अपने क्रोध के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध ऋषि थे। वे तप शक्ति से अनेक सिद्धियाँ तो प्राप्त कर चुके थे परन्तु अपने क्रोध को नहीं जीत सके थे। महाभारत में उनके क्रोधी स्वभाव को प्रकट करने वाले अनेक वृष्टांत हैं। अनेक गुणों एवं विशिष्टताओं के होने पर भी क्रोध की अधिकता होने से वे क्रोधी महर्षि के नाम से ही विख्यात थे। महर्षि दुर्वासा हरित पिंगल वर्ण वाले थे। वे सदा चीर पहनते और बेल का दण्ड हाथ में लिए रहते थे। उनकी मूँछ और दाढ़ी बढ़ी रहती थी। वे देखने में दुबले-पतले और ऊँचे कद के थे। वे दिव्य तथा मानव लोकों में इच्छानुसार विचरण करते थे। उनके क्रोध के समक्ष किसी भी ऋषि या देवता को भी साहस नहीं था कि







वे कुछ कह सकें फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या थी। दुर्वासा ने क्रोधित होकर शकुन्तला को शाप दे दिया था।

महर्षि दुर्वासा के क्रोध से कृष्ण भी नहीं बचे थे। महर्षि ने कृष्ण की भी भांति-भांति से परीक्षा ली थी और कृष्ण द्वारा संतुष्ट होने पर उन्हें वर दिया था।

जितः क्रोधस्त्वया कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ।

न तेऽपराधमिह वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।

प्रीतोऽस्मि त गोविन्द वृणु कामान् यधैप्सितान् ॥ (अनु १५९।३८)

दुर्योधन जैसे दुर्धर्ष व्यक्ति भी दुर्वासा के क्रोध से भयभीत रहते थे। जब दुर्वासा उनके पास स्वेच्छा से अपने दस हजार शिष्यों सहित पहुँचे तब दुर्योधन उनके क्रोध एवं शाप से भयभीत रात दिन आलस्य छोड़कर उनकी सेवा करता था।

### उग्र परशुराम -

महर्षि भृगु के तप के प्रभाव से महर्षि परशुराम ब्राह्मण ऋषि होते हुए भी अत्यंत उग्र एवं क्रोधी स्वभाव के थे। वे अस्त्र-शस्त्र तथा धनुर्विद्या में पारंगत थे। महर्षि भृगु के तप के प्रभाव के कारण ही महर्षि में क्षत्रियत्व अधिक एवं ब्राह्मणत्व कम था। रोष-क्रोध तथा बल से सम्पन्न एवं ब्रह्मविद्या से युक्त होने के कारण उन्होंने अनेक ऐसे कार्य सम्पादित किए जो अन्य कोई ब्राह्मण नहीं कर सकता था। एक समय उन्होंने अपने पिता के आदेश देने पर अपनी माता का सर काट लिया था। इतने अधिक उग्र थे महर्षि परशुराम। उनके कतिपय ऐसे कार्य दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत हैं जिनसे उनके उग्र एवं क्रोधी महर्षि होने का प्रमाण प्राप्त होता है।

### कार्तवीर्य की हजार भुजाओं को काटना -

कार्तवीर्य अर्जुन ने अग्नि देव के साथ मिलकर महात्मा आपव मुनि के आश्रम को जला दिया। तब आपव ने रोष में कार्तवीर्य अर्जुन को शाप दिया था कि - तुमने







मेरे इस आश्रम सहित मेरे घर को जला डाला, इसलिये संग्राम में तुम्हारी उन भुजाओं को परशुराम जी काट डालेंगे। उस शाप के कारण ही सदा क्रूर कर्म करने वाले घमण्डी कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्र एक दिन जमदग्नि मुनि की हेमधेनु के बछड़े को चुरा कर ले गये। उस बछड़े के लाये जाने की बात यद्यपि कार्तवीर्य को मालूम नहीं थी तथापि उसी के लिये महात्मा परशुराम का युद्ध छिड़ गया। तब रोष में भरे हुए प्रभावशाली जमदग्नि नदन परशुराम ने अर्जुन की उन सहस्र भुजाओं को काट डाला और इधर-उधर घूमते हुए बछड़े को अपने आश्रम में ले आये। अर्जुन के पुत्र बुद्धिहीन थे। उन्होंने संगठित होकर महात्मा जमदग्नि के आश्रम पर जाकर भत्नों के अग्रभाग से उनके मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। उस समय परशुराम कुशा और समिधा लाने के लिए आश्रम से दूर चले गये थे। पिता के इस प्रकार मारे जाने पर उनके क्रोध की सीमा न रही।

### क्षत्रियों का विनाश -

पिता के इस प्रकार मारे जाने पर परशुराम के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने इस पृथ्वी को क्षत्रियों से सूनी कर देने की भीषण प्रतिज्ञा करके हथियार उठाया। भृगु कुल के सिंह पराक्रमी परशुराम ने पराक्रम प्रकट करके कार्तवीर्य के सभी पुत्रों तथा पौत्रों का शीघ्र ही संहार कर डाला। परम क्रोधी परशुराम ने सहस्रों हैहयों का वध करने पश्चात् अत्यंत दया से द्रवित हो वन में ही चले गये। तदन्तर कई हजार वर्ष बीत जाने पर एक दिन वहां स्वभावतः क्रोधी परशुराम पर आक्षेप किया गया। विश्वामित्र के पौत्र तथा रैभ्य मुनि के पुत्र महातेजस्वी परावसु ने भरी सभा में आक्षेप करते हुए कहा - राम ! राजा ययाति के स्वर्ग से गिरने के समय जो प्रतर्दन आदि सज्जन पुरुष यज्ञ में एकत्र हुए थे, क्या वे क्षत्रिय नहीं थे? तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी है। तुम व्यर्थ ही जनता की सभा में डींग हाँका करते हो कि तुमने क्षत्रियों का अंत कर दिया है। मैं तो समझता हूँ कि तुम क्षत्रियों के भय से ही पर्वत में शरण लिये हो। इस समय पृथ्वी पर पुनः सैकड़ों क्षत्रिय भर गये हैं।







परावसु की बात सुनकर परशुराम ने पुनः शस्त्र उठा लिया। उन्होंने पुनः सभी क्षत्रियों को मार डाला। जो बच्चे गर्भ में रह गये थे, उन्हीं से यह पृथ्वी पुनः क्षत्रियों से व्याप्त हो गयी। परशुराम जी एक गर्भ उत्पन्न होने पर पुनः उसका वध कर डालते थे।

इस प्रकार परशुराम जी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया था। तत्पश्चात् अश्वमेध यज्ञ करके उसकी समाप्ति पर दक्षिणा के रूप में यह सारी पृथ्वी उन्होंने कश्यप जी को दे दी थी।

### शांत एवं दयालु महर्षि व्यास -

महर्षि व्यास की प्रकृति अत्यंत शांत थी। वे दयाभाव से परिपूर्ण तथा हर असहाय को सहायता देने वाले महर्षि थे। अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर महर्षि व्यास तुरन्त ही उसके सम्मुख पहुंच जाते थे। जिसे उनकी सहायता की आवश्यकता होती थी, वे समय-समय पर अपने उपदेश एवं कार्यों द्वारा लोगों की हर तरह से सहायता करते थे।

### असित देवल एवं जैगीषव्य मुनि -

ये दोनों महातपस्वी एवं अनेक तप शक्तियों से युक्त होने पर भी परस्पर वैमनस्य एवं द्वेष भाव रखते थे तथा एक दूसरे से छिपकर तपस्या किया करते थे एवं शक्तियाँ अर्जित करते थे।

--०००--







## पंचम अध्याय

## પંચમ અધ્યાય

# अपि दर्शनि

# ऋषि दर्शन



पुस्तकालय

महेश्वरी



## ऋषि दर्शन

### (१) श्रीमद्भगवद्गीता का तार्त्विक विवेचन

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरुमर्दनम् ।  
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् भागवान् की दिव्य वाणी है। इसकी महिमा अपार है, अपरिमित है। शेष, महेश, गणेश भी इसकी महिमा को पूरी तरह से नहीं कह सकते; फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है? इतिहास, पुराणों में जगह-जगह इसकी महिमा गायी गयी है; परन्तु जितनी महिमा अब तक गायी गयी है, उसे एकत्र कर लिया जाय तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी महिमा इतनी ही है।

गीता एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों का सार संग्रह किया गया है। इसकी रचना इतनी सरल और सुन्दर है कि थोड़ा अभ्यास करने से भी मनुष्य इसको सहज ही समझ सकता है; परन्तु इसका आशय इतना गूढ़ और गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहने पर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते ही रहते हैं, इससे वह सदा नवीन ही बना रहता है एवं एकाग्रचित्त होकर श्रद्धाभक्ति सहित विचार करने से इसके पद-पद में परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। भगवान् के गुण, प्रभाव, स्वरूप, मर्म और उपासना का तथा कर्म एवं ज्ञान का वर्णन जिस प्रकार इस गीताशास्त्र में किया गया है वैसा अन्य ग्रन्थों में एक साथ मिलना कठिन है; भगवद्गीता एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र है जिसका एक भी शब्द सदुपदेश से खाली नहीं है। गीता में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो रोचक कहा जा सके। उसमें जितनी बातें कही गयी हैं, वे सभी अक्षरशः यथार्थ हैं, सत्यस्वरूप भगवान् की वाणी में रोचकता की कल्पना करना उसका निरादर करना है।

गीता सर्वशास्त्रमयी है। गीता में सारे शास्त्रों का सार भरा हुआ है। उसे सारे शास्त्रों का खजाना कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। गीता का भलीभाँति ज्ञान हो







जाने पर सब शास्त्रों का तात्त्विक ज्ञान अपने-आप हो सकता है, उसके लिये अलग परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है।

गीता गङ्गा से भी बढ़कर है। शास्त्रों में गङ्गा स्नान का फल मुक्ति बतलाया गया है। गङ्गा में स्नान करने वाला स्वयं मुक्त हो सकता है, किन्तु वह दूसरों को तारने का सामर्थ्य नहीं रखता। किन्तु गीता रूपी गङ्गा में गोते लगाने वाला स्वयं तो मुक्त होता ही है, वह दूसरों को भी तारने में समर्थ हो जाता है। गङ्गा तो भगवान् के चरणों से उत्पन्न हुई है और गीता साक्षात् भगवान् नारायण के मुखारविन्द से निकली है; फिर गङ्गा तो जो उसमें आकर स्नान करता है उसी को मुक्त करती है, परन्तु गीता तो घर-घर में जाकर उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाती है। इन सब कारणों से गीता को गङ्गा से बढ़कर कहते हैं।

उपर यह बतलाया गया है कि गीता सर्वशास्त्रमयी है। महाभारत में भी कहा है - 'सर्वशास्त्रमयी गीता'। परन्तु इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। क्योंकि सारे शास्त्रों की उत्पत्ति वेदों से हुई, वेदों का प्राकट्य भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ। इस प्रकार शास्त्रों और भगवान् के बीच में बहुत अधिक व्यवधान पड़ गया है। किन्तु गीता तो स्वयं भगवान् के मुखारविन्द से निकली है, इसलिये उसे सभी शास्त्रों से बढ़कर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। स्वयं भगवान् वेदव्यास ने कहा है -

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

इस श्लोक में 'पद्मनाभ' शब्द का प्रयोग करके महाभारतकार ने यही बात व्यक्त की है। तात्पर्य यह है कि यह गीता उन्हीं भगवान् के मुखकमल से निकली है, जिनके नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के मुख से वेद प्रकट हुए, जो सम्पूर्ण शास्त्रों के मूल हैं।

गीता गायत्री से बढ़कर है। गायत्री जप से मनुष्य की मुक्ति होती है, यह बात ठीक है; किन्तु गायत्री-जप करने वाला भी स्वयं ही मुक्त होता है, पर गीता का अभ्यास







करने वाला तो तरन-तारन बन जाता है। जब मुक्ति के दाता स्वयं भागवान् ही उसके हो जाते हैं, तब मुक्ति की तो बात ही क्या है। मुक्ति उसकी चरणधूलि में निवास करती है। मुक्ति का तो वह सत्र खोल देता है।

गीता को हम स्वयं भागवान् से भी बढ़कर कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। भगवान् ने स्वयं कहा है -

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम् ।

गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीँलोकान् पालयाम्यहम् ॥

इसके सिवा, गीता में ही भगवान् मुक्त कण्ठ से यह घोषणा करते हैं कि जो कोई मेरी इस गीतारूप आज्ञा का पालन करेगा वह निःसन्देह मुक्त हो जायेगा। यही नहीं, भगवान् कहते हैं कि जो कोई इसका अध्ययन भी करेगा उसके द्वारा ज्ञान यज्ञ से में पूजित होऊँगा। जब गीता के अध्ययन मात्र का इतना माहात्म्य है, तब जो मनुष्य इसके उपदेशों के अनुसार अपना जीवन बना लेता है और इसका रहस्य भक्तों को धारण कराता है और उनमें इसका विस्तार एवं प्रचार करता है उसकी तो बात ही क्या है। उसके लिए तो भगवान् कहते हैं कि वह मुझको अतिशय प्रिय है। वह भगवान् को प्राणों से भी बढ़कर प्यारा होता है, यह भी कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। भगवान् अपने ऐसे भक्तों के अधीन बन जाते हैं। अच्छे पुरुषों में भी यह देखा जाता है कि उनके सिद्धांतों का पालन करने वाला जितना उन्हें प्रिय होता है उतने प्यारे उन्हें अपने प्राण भी नहीं होते। गीता भगवान् का प्रधान रहस्यमय आदेश है। ऐसी दशा में उसका पालन करने वाला उन्हें प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है?

गीता भागवान् का श्वास है, हृदय है और भगवान् की वाङ्मयी मूर्ति है। जिसके हृदय में, वाणी में, शरीर में तथा समस्त इन्द्रियों एवं उनकी क्रियाओं में गीता रम गयी है वह पुरुष साक्षात् गीता की मूर्ति है। उसके दर्शन, स्पर्श, भाषण एवं चिन्तन से भी दूसरे मनुष्य परम पवित्र बन जाते हैं। फिर उसके आज्ञा पालन एवं अनुकरण करने







वालों की तो बात ही क्या है। वास्तव में गीता के समान संसार में यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, संयम और उपवास आदि कुछ भी नहीं है।

गीता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी है। इसके संकलनकर्ता श्री व्यास जी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने उपदेश का कितना ही अंश तो पद्यों में ही कहा था, जिसे व्यास जी ने ज्यों-का-त्यों रख दिया। कुछ अंश जो उन्होंने गद्य में कहा था, उसे व्यास जी ने स्वयं श्लोकबद्ध कर दिया; साथ ही अर्जुन, सञ्जय एवं धृतराष्ट्र के वचनों को अपनी भाषा में ग्रथित कर लिया और इस पूरे ग्रंथ को अठारह अध्यायों में विभक्त करके महाभारत के अंदर मिला लिया, जो आज हमें इस रूप में उपलब्ध है।

### गीता का तात्पर्य :-

गीता ज्ञान का अथाह समुद्र है। इसके अंदर ज्ञान का अनंत भंडार भरा पड़ा है। इसका पूर्ण रहस्य भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं। उनके बाद कहीं इसके संकलनकर्ता व्यासजी और श्रोता अर्जुन का नंबर आता है। ऐसी अगाध रहस्यमयी गीता का आशय और महत्त्व समझना मेरे-जैसे मनुष्य के लिये ठीक वैसा ही है, जैसे एह साधारण पक्षी का अनन्त आकाश का पता लगाने के लिये प्रयत्न करना। गीता अनन्त भावों का अथाह समुद्र है। रत्नाकर में गहरा गोता लगाने पर जैसे रत्नों की प्राप्ति होती है, वैसे ही इस गीता-सागर में गहरी डुबकी लगाने से जिज्ञासुओं को नित्य-नूतन विलक्षण भाव-रत्न-राशि की उपलब्धि होती है। परन्तु आकाश में गरुण भी उड़ते हैं तथा साधारण मच्छर भी। इसी के अनुसार सभी अपने-अपने भाव के अनुसार कुछ अनुभव करते ही हैं। अतएव विचार करने पर प्रतीत होता है कि गीता का मुख्य तात्पर्य अनादिकाल से अज्ञानवश संसार-समुद्र में पड़े हुए जीव को परमात्मा की प्राप्ति करवा देने में है और उसके लिए गीता में ऐसे उपाय बतलाये गये हैं, जिनसे मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। व्यवहार में परमार्थ के प्रयोग की यह अद्भुत कला गीता में बतलायी गयी है और दो निष्ठाओं का प्रतिपादन किया गया है। वे दो







निष्ठाएँ हैं - ज्ञान निष्ठा यानी सांख्यनिष्ठा और योग निष्ठा। यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'प्रायः सभी शास्त्रों में भगवान् को प्राप्त करने के तीन प्रधान मार्ग बतलाये गये हैं -- कर्म, उपासना और ज्ञान। ऐसी दशा में गीता ने दो ही निष्ठाएँ कैसे मानी हैं? क्या गीता को भक्ति का सिद्धांत मान्य नहीं है? बहुत से लोग तो गीता का उपदेश भक्ति प्रधान ही मानते हैं और यत्र-तत्र भगवान् ने भक्ति का विशेष महत्त्व भी स्पष्ट शब्दों में कहा है भक्ति के द्वारा अपनी प्राप्ति सुलभ बतलायी है। इसका उत्तर यह है कि गीता ने भक्ति को भगवत्-प्राप्ति का प्रधान साधन माना है -- लोगों की यह मान्यता ठीक ही है। गीता ने भक्ति को बहुत ऊँचा स्थान दिया है और स्थान-स्थान पर अर्जुन को भक्त बनने की आज्ञा भी दी है। परन्तु गीता ने निष्ठाएँ दो ही मानी हैं। इनमें भक्ति योगनिष्ठा में शामिल है और भक्ति के क्रियात्मिका होने से गीता का ऐसा मानना युक्ति विरुद्ध भी नहीं कहा जा सकता। भक्ति किस प्रकार योगनिष्ठा के साथ मिली हुई, इस पर आगे विचार किया जायगा।

इसके अतिरिक्त 'ज्ञान' और 'कर्म' शब्दों का जिस अर्थ में गीता में प्रयोग हुआ है, वह भी विशेष रहस्यमय है। गीता के कर्म और कर्मयोग तथा ज्ञान और ज्ञानयोग एक ही चीज नहीं हैं। गीता के अनुसार शास्त्रविहित कर्म ज्ञाननिष्ठा और योगनिष्ठा दोनों ही दृष्टियों से हो सकते हैं। ज्ञाननिष्ठा में भी कर्म का विरोध नहीं है और योगनिष्ठा में तो कर्मों का सम्पादन ही साधन माना गया है और उनका स्वरूप से त्याग उल्टा बाधक माना गया है। दूसरे अध्याय के ४७वें से लेकर ५१वें श्लोक तक तथा तीसरे अध्याय के १९वें और चौथे अध्याय के ४२वें श्लोकों में अर्जुन को योगनिष्ठा दृष्टि से कर्म करने की आज्ञा दी गयी है, और अध्याय ३। २८ तथा ५। ८, ९, १३ में सांख्य यानी ज्ञाननिष्ठा की दृष्टि से कर्म करने की बात कही गयी है। सकाम कर्म के लिये किसी भी निष्ठा में स्थान ही नहीं है, सकाम कर्मियों को तो भगवान् ने तुच्छ बतलाया है।

ज्ञान का अर्थ भी गीता में केवल ज्ञानयोग ही नहीं है; फलस्वरूप ज्ञान को भी, जो सब प्रकार के साधनों का फल है - जो ज्ञाननिष्ठा और योगनिष्ठा दोनों का फल



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



है, और जिसे यथार्थ ज्ञान अथवा तत्त्वज्ञान भी कहते हैं, 'ज्ञान' शब्द से ही कहा है। अध्याय ४। २४ तथा २५ के उत्तरार्द्ध में ज्ञान योग का वर्णन है और अध्याय ४। ३६-३९ में फलरूप ज्ञान का वर्णन है।

शास्त्रों में कर्म और ज्ञान के अतिरिक्त जो 'उपासना' का प्रकरण आया है, वह उपासना इन्हीं दो निष्ठाओं के अन्तर्गत है। जब अपने को परमात्मा से अभिन्न मानकर उपासना की जाती है, तब वह सांख्यनिष्ठा के अन्तर्गत आ जाती है, और जब भेददृष्टि से की जाती है तब योगनिष्ठा के अन्तर्गत मानी जाती है। सांख्य निष्ठा और योगनिष्ठा में यही मुख्य अन्तर है। इसी प्रकार अध्याय १३।२४ में केवल ध्यान के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति बतलायी गयी है; परन्तु वहाँ भी यही बात समझनी चाहिए कि जो ध्यान अभेददृष्टि से किया जाता है वह सांख्यनिष्ठा के अन्तर्गत है, और जो भेददृष्टि से किया जाता है वह योगनिष्ठा के अन्तर्गत है।

गीता में केवल भजन-पूजन अथवा केवल ध्यान से अपनी प्राप्ति बतलाकर भागवान् ने यह भाव दिखलाया है कि योगनिष्ठा के पूरे साधन से तो उनकी प्राप्ति होती ही है, उसके एक-एक अङ्ग के साधन से भी उनकी प्राप्ति हो सकती है। यह उनकी कृपा है कि उन्होंने अपने को जीवों के लिये इतना सुलभ बना दिया है। अब सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठा के क्या स्वरूप हैं, उन दोनों में क्या अन्तर है, उनके कितने और कौन-कौन से अवान्तर भेद हैं तथा दोनों निष्ठाएँ स्वतन्त्र हैं अथवा परस्पर-सापेक्ष हैं, इन निष्ठाओं के कौन-कौन अधिकारी हैं इत्यादि विषयों पर संक्षेप से विचार किया जा रहा है :-

### सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठा का स्वरूप -

- (१) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णा के जल की भाँति अथवा स्वप्न की सृष्टि के सदृश मायामय होने से माया के कार्यरूप गुण ही गुणों में बरतते हैं - इस प्रकार समझकर मन, इन्द्रिय और शरीर के द्वारा होने वाले समस्त कर्मों में कर्तापन के अभिमान से रहित होना तथा







सर्वव्यापी सच्चिदानन्दधन परमात्मा के स्वरूप में एकी भाव से नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दधन वासुदेव के सिवा अन्य किसी के भी अस्तित्व का भाव न रहना। यह तो 'सांख्यनिष्ठा' है। 'ज्ञानयोग' अथवा 'कर्मसंन्यास' भी इसी के नाम हैं। और -

- (२) सब कुछ भगवान् का समझकर, सिद्धि-असिद्धि में समभाव रखते हुए, आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करके भगवत् आज्ञानुसार सब कर्मों का आचरण करना अथवा श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान् के शरण होकर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना - यह 'योगनिष्ठा' है। इसी का भगवान् ने समत्वयोग, तदर्थ कर्म, मदर्थ कर्म एवं सात्त्विक त्याग आदि नामों से उल्लेख किया है।

योगनिष्ठा में सामान्य स्तर से अथवा प्रधान स्तर से भक्ति रहती ही है। गीतोक्त योगनिष्ठा भक्तिसे शून्य नहीं है। जहाँ भक्ति अथवा भगवान् का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख नहीं है (२। ४७ से ५१) वहाँ भी भगवान् की ही प्राप्ति है - इस दृष्टिसे भक्तिका सम्बन्ध वहाँ भी है ही।

ज्ञाननिष्ठा के साधन के लिये भगवान् ने अनेक युक्तियाँ बतलायी हैं, उन सबका फल एक सच्चिदानन्दधन परमात्मा की प्राप्ति ही है। ज्ञानयोग के अवान्तर भेद कई होते हुए भी उन्हें मुख्य चार विभागों में बाँटा जा सकता है -

- (१) जो कुछ है, वह ब्रह्म ही है।
- (२) जो कुछ दृश्यवर्ग प्रतीत होता है, वह मायामय है; वास्तव में एक सच्चिदानन्दधन ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
- (३) जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब मेरा ही स्वरूप है - मैं ही हूँ।
- (४) जो कुछ प्रतीत होता है, वह मायामय है, अनित्य है, वास्तव में है ही नहीं; केवल एक चेतन आत्मा मैं ही हूँ।







इनमें पहले दो साधन 'तत्त्वमसि' महावाक्य के 'तत्' पद की दृष्टि से हैं और पिछले दो साधन 'त्वम्' पद की दृष्टि से हैं। इन्हीं का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

- (१) इस चराचर जगत् में जो कुछ प्रतीत होता है, सब ब्रह्म ही है; एक सच्चिदानन्दधन परमात्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। जो कुछ कर्म हम करते हैं वह कर्म, उस कर्म के साधन एवं उपकरण तथा स्वयं कर्ता -- सब कुछ ब्रह्म है। जिस प्रकार समुद्र में पड़े हुए बरफ के ढेलों के बाहर और भीतर सब जगह जल ही जल व्याप्त है तथा वे ढेले स्वयं भी जलरूप ही हैं, उसी प्रकार समस्त चराचर भूतों के बाहर-भीतर एकमात्र परमात्मा ही परिपूर्ण हैं तथा उन समस्त भूतों के रूप में भी वे ही हैं।
- (२) जो कुछ यह दृश्यवर्ग है, इसे मायामय, क्षणिक एवं नाशवान् समझकर -- उसका अभाव करके केवल एक सच्चिदानन्दधन परमात्मा ही हैं, और कुछ भी नहीं है -- ऐसा समझते हुए मन-बुद्धि को भी ब्रह्म में तद्रूप कर देना एवं परमात्मा में एकीभाव से स्थित होकर उनके अपरोक्ष ज्ञान द्वारा उनमें एकता प्राप्त कर लेना।
- (३) चर, अचर सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ ? इसलिये सब मेरा ही स्वरूप है - इस प्रकार विचारकर सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी आत्मा ही समझना यानी समस्त भूतों में अपनी आत्मा को देखना और आत्मा के अन्तर्गत समस्त भूतों को देखना।

इस प्रकार का साधन करने वाले की दृष्टि में एक ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ भी नहीं रहता, वह फिर अपने इस विज्ञानानन्दधन स्वरूप में ही आनन्द का अनुभव करता है।



... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...

... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ... (१)  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...

... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ... (२)  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...

... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ... (३)  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...

... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...  
 ... ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...



- (४) जो कुछ भी यह मायामय, तीनों गुणों का कार्यरूप दृश्यवर्ग है इसको और इसके द्वारा होने वाली सारी क्रियाओं को अपने से पृथक्, नाशवान् एवं अनित्य समझना तथा इन सबका अत्यन्त अभाव करके केवल भावरूप आत्मा का ही अनुभव करना।

इस प्रकार की स्थिति प्राप्त करने के लिये भगवान् ने गीता में अनके युक्तियों से साधक को जगह-जगह यह बात समझायी है कि आत्मा द्रष्टा, साक्षी, चेतन और नित्य है तथा यह देहादि जड़ दृश्यवर्ग- जो कुछ प्रतीत होता है -- अनित्य होने से असत् है, केवल आत्मा ही सत् है। इसी बात को पुष्ट करने के लिये भगवान् ने दूसरे अध्याय के ११वें से ३०वें श्लोक तक नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निराकार, निर्विकार, अक्रिय, गुणातीत आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है। अभेद रूप से साधन करने वाले पुरुषों को आत्मा का स्वरूप ऐसा ही मानकर साधन करने से आत्मा का साक्षात्कार होता है। जो कुछ चेष्टा हो रही है गुणों की ही गुणों में हो रही है, आत्मा का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है - न वह कुछ करता है और न करवाता है -- ऐसा समझकर वह नित्य-निरन्तर अपने-आप में ही अत्यंत आनंद का अनुभव करता है।

उपर्युक्त ज्ञानयोग के चारों साधनों में पहले दो साधन तो ब्रह्म की उपासना से युक्त हैं एवं तीसरा और चौथा साधन अहंग्रह-उपासना से युक्त है।

यहाँ प्रश्न यह होता है कि 'उपर्युक्त चारो साधन व्युत्थान-अवस्था में करने के हैं या ध्यानावस्था में या कि वे दोनों ही अवस्थाओं में किये जा सकते हैं।' इसका उत्तर यह है कि साधन का पहला अंश जो अध्याय ४।२४ के अनुसार करने का है, तथा चौथे साधन के अंत में जो प्रक्रिया अध्याय ५।८, ९ के अनुसार बतलाई गई है -- ये दोनों तो केवल व्यवहारकाल में करने के हैं और दूसरा साधन केवल ध्यानकाल में ही करने का है। शेष सब दोनों ही अवस्थाओं में किये जा सकते हैं।

यहाँ कोई यह पूछ सकता है कि 'पहले साधन में 'वासुदेवः सर्वमिति' - जो कुछ दिखता है, सब वासुदेव का ही स्वरूप है तथा 'सर्वभूतस्थितं यो मां







भजत्येकत्वमास्थितः' - जो पुरुष एकी भाव में स्थित हुआ मुझ सच्चिदानन्दनघन वासुदेव को ही भजता है - इनका उल्लेख क्यों नहीं किया गया ?' इसका उत्तर यह है कि ये दोनों श्लोक भक्ति के प्रसङ्ग के हैं और दोनों में ही परमात्मा को प्राप्त हुए पुरुष का वर्णन है; अतः इनका उल्लेख उस प्रसङ्ग में नहीं किया गया, परन्तु यदि कोई उनको ज्ञान के प्रसङ्ग में लेकर इनके अनुसार साधन करना चाहे तो कर सकता है; ऐसा करने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

जिस प्रकार ऊपर सांख्यानिष्ठ के चार विभाग किये गये हैं; उसी प्रकार वेदनिष्ठा के भी तीन मुख्य भेद हैं --

- (१) केवल कर्मयोग ।
- (२) भक्तिमिश्रित कर्मयोग ।
- (३) भक्ति प्रधान कर्मयोग ।

#### (१) केवल कर्मयोग :-

केवल कर्मयोग के उपदेश में कहीं-कहीं भगवान् ने केवल फल के त्याग की बात कही है, कहीं केवल आसक्ति के त्याग की बात कही है और कहीं फल और आसक्ति दोनों के छोड़ने की बात कही गयी है। जहाँ केवल फल के त्याग की बात कही गयी है, वहाँ आसक्ति के त्याग की बात ऊपर से ले लेनी चाहिए। कर्मयोग का साधन वास्तव में तभी पूर्ण होता है जब फल और आसक्ति दोनों का ही त्याग होता है।

#### (२) भक्तिमिश्रित कर्मयोग :-

इसमें सारे संसार में परमेश्वर को व्याप्त समझते हुए अपने-अपने वर्णोचित कर्म के द्वारा भगवान् की पूजा करने की बात कही गयी है; इसीलिये इसको भक्तिमिश्रित कर्मयोग कह सकते हैं।







## (३) भक्ति प्रधान कर्मयोग :-

इसके दो अवान्तर भेद हैं --

(१) 'भगवदर्पण' कर्म । (२) 'भगवदर्थ' कर्म ।

भगवदर्पण कर्म भी दो तरह से किया जाता है। पूर्ण 'भगवदर्पण' तो वह है जिसमें समस्त कर्मों में ममता, आसक्ति और फलेच्छा को त्यागकर, तथा यह सब कुछ भगवान् का है, मैं भी भगवान् का हूँ और मेरे द्वारा जो कर्म होते हैं वे भी भगवान् के ही हैं, भगवान् ही मुझसे कठपुतली की भाँति सब कुछ करवा रहे हैं -- ऐसा समझते हुए भगवान् के आज्ञानुसार भगवान् की ही प्रसन्नता के लिये शास्त्रविहित कर्म किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त पहले किसी दूसरे उद्देश्य से किये हुए कर्मों को पीछे से भगवान् के अर्पण कर देना, कर्म करते-करते बीच में ही भगवान् के अर्पण कर देना, कर्म समाप्त होने के साथ-साथ भगवान् के अर्पण कर देना - यह भी 'भगवदर्पण' का ही प्रकार है, यद्यपि यह भगवदर्पण की प्रारंभिक सीढ़ी है। ऐसा करते-करते ही उपर्युक्त पूर्ण भगवदर्पण होता है।

'भगवदर्थ' कर्म भी दो प्रकार के होते हैं -

भगवान् के विग्रह आदि का अर्चन भजन-ध्यान आदि उपासना रूप कर्म जो भगवान् के ही निमित्त किये जाते हैं और जो स्वरूप से भी भगवत्सम्बन्धी होते हैं, इनको 'भगवदर्थ' कह सकते हैं।

इनके अतिरिक्त जो शास्त्रविहित कर्म भगवत् प्राप्ति, भगवत्प्रेम अथवा भगवान् की प्रसन्नता के लिये भगवदाज्ञानुसार किये जाते हैं, वे भी 'भगवदर्थ' कर्म के ही अन्तर्गत हैं। इन दोनों प्रकार के कर्मों का 'मत्कर्म' और 'मदर्थकर्म' नाम से गीता में उल्लेख हुआ है।







जिसे अनन्य भक्ति तथा भक्तियोग कहा गया है, वह भी 'भगवदर्पण' और 'भगवदर्थ' इन दोनों कर्मों में ही सम्मिलित है। इन सबका फल एक भगवत्प्राप्ति ही है।

अब प्रश्न यह होता है कि योगनिष्ठा स्वतन्त्र रूप से भगवत्प्राप्ति करा देती है या ज्ञाननिष्ठा का अङ्ग बनकर ? इसका उत्तर यह है कि गीता को दोनों ही सिद्धांत मान्य हैं अर्थात् भगवद्गीता योगनिष्ठा को भगवत्प्राप्ति यानी मोक्ष का स्वतंत्र साधन भी मानती है और ज्ञाननिष्ठा में सहायक भी। साधक चाहे तो बिना ज्ञाननिष्ठा की सहायता के सीधे ही कर्मयोग से परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। दोनों में से वह कौन सा मार्ग ग्रहण करे, यह उसकी रुचि पर निर्भर है। योगनिष्ठा स्वतंत्र है, इस बात को भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में अध्याय ४।५, ५ तथा १३।२४ में कहा है। भगवान् में चित्त लगाकर भगवान् के लिये ही कर्म करने वालों को भगवान् की कृपा से भगवान् शीघ्र मिल जाते हैं, यह बात जगह-जगह भगवान् ने कही है। इसी प्रकार निष्काम कर्म और उपासना दोनों ही ज्ञाननिष्ठा के अङ्ग भी बन सकते हैं। किन्तु अभेद-उपासना होने से ज्ञाननिष्ठा भेद उपासना रूप भक्तियोग यानी योगनिष्ठा का अङ्ग नहीं बन सकती। यह दूसरी बात है कि किसी ज्ञाननिष्ठा के साधक की आगे चलकर रुचि अथवा मत बदल जाय और वह ज्ञाननिष्ठा को छोड़कर योगनिष्ठा को पकड़ ले और उसे फिर योगनिष्ठा के द्वारा ही भगवत्प्राप्ति हो।

यदि कोई पूछे कि कर्मयोग का साधन करके फिर सांख्ययोग के साधन द्वारा जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्राप्त होते हैं, उनकी प्रणाली कैसी होती है ? तो इसे जानने के लिए 'त्याग' के नाम से सात श्रेणियों में विभाग करके उसे यों समझना चाहिए-

#### (१) निषिद्ध कर्मों का त्याग -

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य-भोजन और प्रमाद आदि शास्त्र विरुद्ध नीच कर्मों को मन, वाणी और शरीर से

किसी प्रकार भी न करना। यह पहली श्रेणी का त्याग है।







## (२) काम्य कर्मों का त्याग -

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति के एवं रोग-संझटादि की निवृत्ति के उद्देश्य से किये जाने वाले यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि सकाम कर्मों को अपने स्वार्थ के लिये न करना। यह दूसरी श्रेणी का त्याग है।

यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय, जो स्वरूप से तो सकाम है परन्तु उसके न करने से किसी को कष्ट पहुँचता हो या कर्म-उपासना की परम्परा में किसी प्रकार की बाधा आती हो तो स्वार्थ को त्याग करके केवल लोकसंग्रह के लिये उसे कर लेना सकाम कर्म नहीं है।

## (३) तृष्णा का सर्वथा त्याग -

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हुए हों, उनके बढ़ने की इच्छा को भागवत्प्राप्ति में बाधक समझकर उसका त्याग करना। यह तीसरी श्रेणी का त्याग है।

## (४) स्वार्थ के लिये दूसरों से सेवा कराने का त्याग -

अपने सुख के लिये किसी से भी धनादि पदार्थों की अथवा सेवा कराने की याचना करना एवं बिना याचना के दिये हुए पदार्थों को या की हुई सेवा को स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसी से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की मन में इच्छा रखना - इत्यादि जो स्वार्थ के लिये दूसरों से सेवा कराने के भाव हैं, उन सबका त्याग करना। यह चौथी श्रेणी का त्याग है।

यदि कोई ऐसा अवसर योग्यता से प्राप्त हो जाये कि शरीर सम्बन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थों के स्वीकार न करने से किसी को कष्ट पहुँचता हो या लोकशिक्षा में किसी प्रकार की बाधा आती हो तो उस अवसर पर स्वार्थ का त्याग करके केवल उनकी प्रीति के लिये सेवादि का स्वीकार करना दोषयुक्त







नहीं है। क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदि से की हुई सेवा एवं बन्धु-बान्धव और मित्र आदि द्वारा दिये हुये भोजनादि पदार्थों के स्वीकार न करने से उनको कष्ट होना एवं लोकमर्यादा में बाधा पड़ना संभव है।

- (५) सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों में आलस्य और फल की इच्छा का सर्वथा त्याग -

ईश्वर की भक्ति, देवताओं का पूजन, माता-पितादि गुरुजनों की सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रम के अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थ का निर्वाह एवं शरीर सम्बन्धी खान-पान आदि जितने कर्तव्य कर्म हैं, उन सबमें आलस्य का और सब प्रकार की कामना का त्याग करना।

- (६) संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में और कर्मों में ममता और आसक्ति का सर्वथा त्याग-

धन, मकान और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुएँ तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण बान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोक और परलोक के जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं, उन सबको क्षणभङ्गुर और नाशवान् होने के कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्ति का न रहना तथा केवल एक परमात्मा में ही अनन्य भाव से विशुद्ध प्रेम होने के कारण मन, वाणी और शरीर के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में और शरीर में भी ममता और आसक्ति का सर्वथा अभाव हो जाना। यह छठी श्रेणी का त्याग है।

उक्त छठी श्रेणी के त्याग को प्राप्त हुए पुरुषों का संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान् में ही अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको भगवान् के गुण, प्रभाव और रहस्य से भरी हुई विशुद्ध प्रेम के विषय की कथाओं का सुनना-सुनाना और मनन करना तथा एकान्त स्थान में रहकर निरन्तर भगवान् के भजन, ध्यान और शास्त्रों के मर्म



७११

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं  
 ज्ञातः स हि जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं (१)  
 - भाष्य

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं (२)  
 - भाष्य

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः

अथ-पुनः श्रुत्वा ह्येवं किं हि जीवो ज्ञातः प्रोक्तं ह्यु, किं जीवो ह्येवं  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः  
 किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः किं जीवो ज्ञातः



का विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्यों में रहकर हास्य, विलास, प्रमाद, निन्दा, विषय-भोग और व्यर्थ वार्तादि में अपने अमूल्य समय का एक क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता एवं उनके द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म भगवान् के स्वरूप और नाम का मनन रहते हुए ही बिना आसक्ति के केवल भगवदर्थ होते हैं।

यह कर्मयोग का साधन है; इस साधन के करते-करते ही साधक परमात्मा की कृपा से परमात्मा के स्वरूप को तत्त्वतः जानकर अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है।

किन्तु यदि कोई सांख्ययोग के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना चाहे तो उसे उपर्युक्त साधन करने के अनन्तर निम्नलिखित सातवीं श्रेणी की प्रणाली के अनुसार सांख्ययोग का साधन करना चाहिये।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मों में सूक्ष्म वासना और अहंभाव का सर्वथा त्याग :-

संसार के सम्पूर्ण पदार्थ माया के कार्य होने से सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभाव से परिपूर्ण है - ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीर सहित संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में और सम्पूर्ण कर्मों में सूक्ष्म वासना का सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरण और उनके चित्रों का संस्कार रूप से भी न रहना एवं शरीर में अहंभाव का सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन के अभिमान का लेशमात्र भी न रहना तथा इस प्रकार शरीर सहित सम्पूर्ण पदार्थों और कर्मों में वासना और अहंभाव का अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में ही एकीभाव से नित्य-निरन्तर दृढ़ स्थिति रहना। यह सातवीं श्रेणी का त्याग है।







इस प्रकार साधन करने से वह पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दधन परमात्मा को सुखपूर्वक प्राप्त हो जाता है। किन्तु जो पुरुष उक्त प्रकार से कर्मयोग का साधन न करके आरम्भ से ही सांख्ययोग का साधन करता है, वह परमात्मा को कठिनता से प्राप्त होता है।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्नुमयोगतः ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि कोई साधक एक ही समय में दोनों निष्ठाओं के अनुसार साधन कर सकता है या नहीं -- यदि नहीं तो क्यों ? इसका उत्तर यह है कि - सांख्ययोग और कर्मयोग -- इन दोनों साधनों का सम्पादन एक काल में एक ही पुरुष के द्वारा नहीं किया जा सकता। क्योंकि कर्मयोगी साधनकाल में कर्म को, कर्मफल को, परमात्मा को और अपने को भिन्न-भिन्न मानकर कर्मफल, और आसक्ति का त्याग करके ईश्वरार्थ या ईश्वरार्पण बुद्धि से समस्त कर्म करता है और सांख्ययोग, माया से उत्पन्न सम्पूर्ण गुण गुणों में बरत रहे हैं - अथवा इन्द्रियाँ ही इन्द्रियों के अर्थों में बरत रही हैं - ऐसा समझकर मन, इन्द्रिय और शरीर के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान से रहित होकर केवल सर्वव्यापी सच्चिदानन्दधन परमात्मा के स्वस्त्र में अभिन्नभाव से स्थित रहता है। कर्मयोगी अपने को कर्मों का कर्ता मानता है, सांख्ययोगी कर्ता नहीं मानता। कर्मयोगी अपने कर्मों को भगवान् के अर्पण करता है, सांख्ययोगी कर्ता नहीं मानता। कर्मयोगी अपने कर्मों को भगवान् के अर्पण करता है, सांख्ययोगी मन और इन्द्रियों के द्वारा होने वाली अहंतारहित क्रियाओं को कर्म ही नहीं मानता। कर्मयोगी परमात्मा को अपने से पृथक् मानता है, सांख्ययोगी सदा अभेद मानता है, कर्मयोगी प्रकृति और ईश्वर की भिन्न सत्ता स्वीकार करता है, सांख्ययोगी एक ब्रह्म के सिवा किसी की भी सत्ता नहीं मानता। कर्मयोगी कर्मफल और कर्म की सत्ता मानता है, सांख्ययोगी न तो ब्रह्म से भिन्न कर्म और उनके फल की सत्ता ही मानता है और न उसे अपना कोई सम्बन्ध ही समझता है। इस प्रकार दोनों की साधनप्रणाली और मान्यता में पूर्व और पश्चिम की भाँति महान् अन्तर है। ऐसी अवस्था में दोनों निष्ठाओं का साधन एक पुरुष एक काल में नहीं कर सकता। किन्तु जैसे किसी मनुष्य को भारतवर्ष से अमेरिका के न्यूयार्क शहर को जाना है, तो वह यदि ठीक रास्ते







से होकर यहाँ से पूर्व-ही-पूर्व दिशा में जाता रहे, तो भी अमेरिका पहुँच जायगा और पश्चिम-ही-पश्चिम की ओर चलता रहे तो भी अमेरिका पहुँच जायेगा; वैसे ही सांख्ययोग और कर्मयोग की साधन-प्रणाली में परस्पर भेद होने पर भी जो मनुष्य किसी एक साधन में दृढ़तापूर्वक लगा रहता है, वह दोनों के ही एकमात्र परम लक्ष्य परमात्मा तक पहुँच ही जाता है।

### अधिकारी -

अब प्रश्न यह रह जाता है कि गीतोक्त सांख्ययोग और कर्मयोग के अधिकारी कौन हैं - क्या सभी वर्णों और सभी आश्रमों के तथा सभी जातियों के लोग इनका आचरण कर सकते हैं अथवा किसी खास वर्ण, किसी खास आश्रम तथा किसी खास जाति के लोग ही इनका साधन कर सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि गीता में जिस पद्धति का निरूपण किया गया है वह सर्वथा भारतीय और ऋषिसेवित है, तथापि गीता की शिक्षा पर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि गीता में बतलाये हुए साधनों के अनुसार आचरण करने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण का यह उपदेश समस्त मानवजाति के लिये है - किसी खास वर्ण अथवा किसी खास आश्रम के लिये नहीं। यही गीता की विशेषता है। भगवान् ने अपने उपदेश में जगह-जगह 'मानवः', 'नरः', 'देहभृत्', 'देही' इत्यादि शब्दों का प्रयोग करके इस बात को स्पष्ट कर दिया है। अध्याय ५।१३ में जहाँ सांख्ययोग का मुख्य साधन बतलाया गया है, भगवान् ने देही शब्द का प्रयोग करके मनुष्य मात्र को उसका अधिकारी बतलाया है। इसी प्रकार अध्याय १८।४६ में भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मनुष्य मात्र अपने-अपने शास्त्रविहित कर्मों द्वारा सर्वव्यापी परमेश्वर की पूजा करके सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार भक्ति के लिये भगवान् ने स्त्री, शूद्र तथा पापयोनि तक को अधिकारी बतलाया है और भी जहाँ-जहाँ भगवान् ने किसी भी साधन का उपदेश दिया है, वहाँ ऐसा नहीं कहा है कि इस साधन को करने का किसी खास वर्ण, आश्रम या जाति को ही अधिकार है, दूसरों को नहीं।







ऐसा होने पर भी यह स्मरण रखना चाहिये कि सभी कर्म सभी मनुष्यों के लिये उपयोगी नहीं होते। इसीलिये भगवान् ने वर्णधर्म पर बहुत जोर दिया है। जिस वर्ण के लिये जो कर्म विहित है, उसके लिये वे ही कर्म कर्तव्य हैं, दूसरे वर्ण के लिये नहीं। इस बात को ध्यान में रखकर ही कर्म करना चाहिये। ऐसे वर्णधर्म के द्वारा नियत कर्तव्य-कर्मों को अपने-अपने अधिकार और रुचि के अनुकूल योगनिष्ठा के अनुसार मनुष्य मात्र ही कर सकते हैं। वर्णधर्म के अतिरिक्त मानव मात्र के लिये पालनीय सदाचार, भक्ति आदि का साधन तो सभी कर सकते हैं।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि सांख्ययोग के साधन का अधिकार सन्यासियों को ही है, दूसरे आश्रम वालों को नहीं। यह बात भी युक्तिसंज्ञत नहीं मालूम होती। अध्याय २।१८ में भगवान् ने सांख्य की दृष्टि से भी युद्ध ही करने की आज्ञा दी है। भगवान् यदि केवल सन्यासियों को ही सांख्ययोग का अधिकारी मानते तो वे अर्जुन को उस दृष्टि से युद्ध करने की आज्ञा कभी न देते। क्योंकि संन्यास-आश्रम में स्वरूप से ही कर्ममात्र का त्याग कहा गया है, युद्ध रूपी घोर कर्म की तो बात ही क्या है। फिर अर्जुन तो संन्यासी थे भी नहीं। उन्हें भगवान् ने ज्ञानियों के पास जाकर ज्ञान सीखने तक की बात कही है।

इसके अतिरिक्त तीसरे अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान् ने सांख्ययोग की सिद्धि केवल कर्मों के स्वरूपतः त्याग से नहीं बतलायी। यदि भगवान् सांख्ययोग का अधिकारी केवल सन्यासियों को ही मानते तो सांख्ययोग के लिये कर्मों का स्वरूप से त्याग आवश्यक बतलाते और यह नहीं कहते कि कर्मों को स्वरूपतः त्याग देने मात्र से ही सांख्ययोग की सिद्धि नहीं होती। यही नहीं, अध्याय १३।७ से ११ में जहाँ ज्ञान के साधन बतलाये गये हैं, वहाँ एक साधन स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि में आसक्ति एवं ममता का त्याग भी बतलाया है -

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।







स्त्री, पुत्र, मकान आदि के साथ स्वरूपतः सम्बन्ध होने पर ही उनके प्रति आसक्ति एवं ममता के त्याग की बात कही जा सकती है। संन्यास-आश्रम में इनका स्वरूप से ही त्याग है, ऐसी दशा में यदि संन्यासियों को ही ज्ञान योग के साधन का अधिकार होता तो उनके लिये इन सबके प्रति आसक्ति और ममता के त्याग का कथन अनावश्यक था।

तीसरी बात यह है कि अठारहवें अध्याय में जहाँ अर्जुन ने खास संन्यास और त्याग के सम्बन्ध में प्रश्न किया है, वहाँ भगवान् ने १३वें से लेकर ४० वें श्लोक तक संन्यास के स्थान पर सांख्ययोग का ही वर्णन किया है, संन्यास-आश्रम का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। यदि भगवान् को 'संन्यास' शब्द से संन्यास-आश्रम अभिप्रेत होता अथवा सांख्ययोग का अधिकारी वे केवल संन्यासियों को ही मानते तो इस प्रसङ्ग पर अवश्य उसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करते। इन सब बातों से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि सांख्ययोग के साधन का अधिकार संन्यासी, गृहस्थ सभी को समान रूप से है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि सांख्ययोग का साधन करने के लिये संन्यास-आश्रम में सुविधाएँ अधिक हैं, इस दृष्टि से उस आश्रम को गृहस्थाश्रम की अपेक्षा सांख्ययोग के साधन के लिये अवश्य ही अधिक उपयुक्त कह सकते हैं।

कर्मयोग के साधन में कर्म की प्रधानता है और स्ववर्णोचित विहित कर्म करने की विशेषरूप से आज्ञा है, बल्कि कर्मों का स्वरूप से त्याग इसमें बाधक बतलाया गया है। इसलिये संन्यास-आश्रम में द्रव्यसाध्य कर्मयोग का आचरण नहीं बन सकता, क्योंकि वहाँ द्रव्य और कर्मों का स्वरूप से त्याग है; किन्तु भगवान् की भक्ति सभी आश्रमों में की जा सकती है। कुछ लोगों में यह भ्रम पैला हुआ है कि गीता तो साधु-संन्यासियों के काम की चीज है, गृहस्थों के काम की नहीं; इसीलिये वे प्रायः बालकों को इस भय से गीता नहीं पढ़ते कि ये लोग गृहस्थ का त्याग कर देंगे। परन्तु उनका ऐसा समझना सर्वथा भूल है, यह बात ऊपर की बातों से स्पष्ट हो जाती है। वे लोग यह नहीं सोचते कि मोह के कारण अपने क्षात्रधर्म से विमुख होकर भिक्षा के अन्न से निर्वाह







करने के लिये उद्यत अर्जुन ने जिस परम रहस्यमय गीता के उपदेश से आजीवन गृहस्थ में रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया, उस गीता-शास्त्र का यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है। यही नहीं, गीता के उपदेश स्वयं भगवान् जब तक इस धराधाम पर अवतार रूप में रहे, तब तक बराबर कर्म ही करते रहे - साधुओं की रक्षा की, दुष्टों का संहार करके उद्धार किया और धर्म की स्थापना की। यही नहीं, उन्होंने यहाँ तक कहा है कि यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूँ तो लोग मेरी देखा-देखी कर्मों का परित्याग कर आलसी बन जायँ और इस प्रकार लोक की मर्यादा छिन्न-भिन्न करने का दायित्व मुझ पर ही रहे। इसका यह अर्थ भी नहीं कि गीता संन्यासियों के लिये नहीं है। गीता सभी वर्णाश्रम वालों के लिये है। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम के कर्मों को करते हुए साख्य या योग - दोनों में से किसी एक निष्ठा के द्वारा अधिकारानुसार साधन कर सकते हैं।

### गीता में भक्ति -

गीता में कर्म, भक्ति, ज्ञान - सभी विषयों का विशद रूप विवेचन किया गया है; सभी मार्गों से चलने वालों को इसमें यथेष्ट सामग्री मिल सकती है। किन्तु अर्जुन भगवान् के भक्त थे; अतः सभी विषयों का प्रतिपादन करते हुए जहाँ अर्जुन को स्वयं आचरण करने के लिये आज्ञा दी है, वहाँ भगवान् ने उसे भक्ति प्रधान कर्मयोग का ही उपदेश दिया है। कहीं-कहीं केवल कर्म करने की भी आज्ञा दी है। परन्तु उसके साथ भी भक्ति का अन्य स्थलों से अध्याहार कर लेना चाहिये। केवल ४।३४ में भगवान् ने अर्जुन को ज्ञानियों के पास जाकर ज्ञान सीखने की आज्ञा दी है, वह भी ज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली बतलाने तथा अर्जुन को चंतावनी देने के लिये। वास्तव में भगवान् का आशय अर्जुन को ज्ञान सीखने के लिये किसी ज्ञानी के पास भेजने का नहीं था और न अर्जुन ने जाकर उस प्रक्रिया से ही ज्ञान सीखा ही। उपक्रम-उपसंहार को देखते हुए भी गीता का पर्यवसान शरणागति में ही प्रतीत होता है। वैसे तो गीता का उपदेश 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्' इस श्लोक से प्रारम्भ हुआ है; किन्तु इस उपक्रम का बीज







‘कार्पण्यदोषोपहत-स्वभावः’ अर्जुन की इस उक्ति में है, जिसमें ‘प्रपन्नम्’ पद से शरणागति का भाव व्यञ्जित होता है। इसीलिये ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य’ इस श्लोक से भगवान् ने शरणागति में ही अपने उपदेश का उपसंहार भी किया है।

गीता का ऐसा कोई भी अध्याय नहीं है, जिसमें कहीं-न-कहीं भक्ति का प्रसङ्ग न आया हो। उदाहरण के लिये दूसरे अध्याय का ६१वाँ, तीसरे का ३०वाँ, चौथे का ११वाँ, ग्यारहवें का ५४वाँ, बारहवें का २रा, तेरहवें का १०वाँ, चौदहवें का २६वाँ, पंद्रहवें का १९वाँ, सोलहवें का १ला (जिसमें ‘ज्ञानयोगव्यवस्थितिः’ पद के द्वारा भगवान् के ध्यान की बात कही गयी है), सतरहवें का २७वाँ, अठारहवें का ६६वाँ श्लोक देखना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक अध्याय में भक्ति का प्रसङ्ग आया है। सातवें से लेकर बारहवें अध्याय तक में तो भक्तियोग का प्रकरण भरा पड़ा है; इसीलिये इन छहों अध्यायों को भक्ति प्रधान माना गया है। यहाँ उदाहरण के लिये प्रत्येक अध्याय के एक-एक श्लोक की ही संख्या दी गयी है। इसी प्रकार ज्ञान परक श्लोक भी प्रायः सभी अध्यायों में मिलते हैं। उदाहरण के लिये - दूसरे अध्याय का २९वाँ, तीसरे का २८वाँ, चौथे के २५वें का उत्तरार्द्ध, पाँचवें का १३वाँ, छठे का २९वाँ, आठवें का १३वाँ, नवें का १५वाँ, बारहवें का ३रा, तेरहवें का ३४वाँ, चौदहवें का १९वाँ और अठारहवें का ४९वाँ श्लोक देखना चाहिये। इनमें भी दूसरे, पाँचवें, तेरहवें, चौदहवें तथा अठारहवें अध्यायों में ज्ञान परक श्लोक बहुत अधिक मिलते हैं।

गीता में जिस प्रकार भक्ति और ज्ञान का रहस्य अच्छी तरह से खोला गया है, उसी प्रकार कर्मों का रहस्य भी भलीभाँति खोला गया है, दूसरे अध्याय के ३९वें से ५३वें श्लोक तक, तीसरे अध्याय के ४थे श्लोक से ३५वें श्लोक तक, चौथे अध्याय के १३वें से ३२वें श्लोक तक, पाँचवें अध्याय के २रे श्लोक से ७वें श्लोक तक तथा छठे अध्याय के १ले श्लोक से ४थे श्लोक तक तो कर्मों का रहस्य पूर्णरूप भरा हुआ है। इनमें भी अध्याय २।४७ में कर्म का तथा ४।१६ से १८ में कर्म, अकर्म एवं विकर्म के नाम से कर्मों के रहस्य का विशेषरूप से विवेचन हुआ है। इसी प्रकार अन्यान्य अध्यायों







में भी कर्मों का वर्णन है। इससे यह विदित होता है कि गीता में केवल भक्ति का ही वर्णन नहीं है, ज्ञान, कर्म और भक्ति - तीनों का ही सम्यक्तया प्रतिपादन हुआ है।

### सगुण-निर्गुण-तत्त्व -

ऊपर यह बात कही गयी कि परमात्मा की उपासना भेद-दृष्टि से की जाय अथवा अभेद-दृष्टि से की जाये, दोनों का फल एक ही है - 'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।' यह बात कैसे कही गयी ? भेदोपासक को भगवान् साकार रूप में दर्शन देते हैं और इस शरीर को छोड़ने के बाद वह उन्हीं के परम धाम को जाता है; और अभेदोपासक स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। वह कहीं जाता-आता नहीं। फिर यह कैसे कहा जाता है कि दोनों प्रकार की उपासना का - सांख्यनिष्ठा का और योगनिष्ठा का फल एक ही है ? इसका उत्तर यह है कि ऊपर जो बात कही गयी वह ठीक है और प्रश्नकर्ता ने जो बात कही वह भी ठीक है। दोनों का समन्वय कैसे है, अब इसी पर विचार किया जाता है।

साधनकाल में साधक जिस प्रकार के भाव और श्रद्धा से भावित होकर परमात्मा की उपासना करता है, उसको उसी भाव के अनुसार परमात्मा की प्राप्ति होती है। भगवान् स्वयं भी कहते हैं कि 'जो मुझे जिस भाव से भजते हैं, मैं उन्हें उसी भाव से भजता हूँ। जो अभेदरूप से अर्थात् अपने को परमात्मा से अभिन्न मानकर परमात्मा की उपासना करते हैं, उन्हें अभेदरूप से परमात्मा की प्राप्ति होती है; और जो भेदरूप से उन्हें भजते हैं, उन्हें भेदरूप से ही वे दर्शन देते हैं। साधक के निश्चयानुसार भगवान् भिन्न-भिन्न रूप से सब लोगों को मिलते हैं।

भेदोपासना तथा अभेदोपासना - दोनों ही उपासनाएँ भगवान् की उपासना हैं। क्योंकि भगवान् सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त सभी कुछ हैं। जो पुरुष भगवान् को निर्गुण-निराकार समझते हैं, उनके लिये वे निर्गुण-निराकार हैं। जो उन्हें सगुण-निराकार मानते हैं, उनके लिये वे सगुण-निराकार हैं। जो उन्हें



... १०५ ...  
... १०६ ...  
... १०७ ...  
... १०८ ...  
... १०९ ...  
... ११० ...  
... १११ ...  
... ११२ ...  
... ११३ ...  
... ११४ ...  
... ११५ ...  
... ११६ ...  
... ११७ ...  
... ११८ ...  
... ११९ ...  
... १२० ...  
... १२१ ...  
... १२२ ...  
... १२३ ...  
... १२४ ...  
... १२५ ...  
... १२६ ...  
... १२७ ...  
... १२८ ...  
... १२९ ...  
... १३० ...  
... १३१ ...  
... १३२ ...  
... १३३ ...  
... १३४ ...  
... १३५ ...  
... १३६ ...  
... १३७ ...  
... १३८ ...  
... १३९ ...  
... १४० ...  
... १४१ ...  
... १४२ ...  
... १४३ ...  
... १४४ ...  
... १४५ ...  
... १४६ ...  
... १४७ ...  
... १४८ ...  
... १४९ ...  
... १५० ...  
... १५१ ...  
... १५२ ...  
... १५३ ...  
... १५४ ...  
... १५५ ...  
... १५६ ...  
... १५७ ...  
... १५८ ...  
... १५९ ...  
... १६० ...  
... १६१ ...  
... १६२ ...  
... १६३ ...  
... १६४ ...  
... १६५ ...  
... १६६ ...  
... १६७ ...  
... १६८ ...  
... १६९ ...  
... १७० ...  
... १७१ ...  
... १७२ ...  
... १७३ ...  
... १७४ ...  
... १७५ ...  
... १७६ ...  
... १७७ ...  
... १७८ ...  
... १७९ ...  
... १८० ...  
... १८१ ...  
... १८२ ...  
... १८३ ...  
... १८४ ...  
... १८५ ...  
... १८६ ...  
... १८७ ...  
... १८८ ...  
... १८९ ...  
... १९० ...  
... १९१ ...  
... १९२ ...  
... १९३ ...  
... १९४ ...  
... १९५ ...  
... १९६ ...  
... १९७ ...  
... १९८ ...  
... १९९ ...  
... २०० ...

... २०१ ...  
... २०२ ...  
... २०३ ...  
... २०४ ...  
... २०५ ...  
... २०६ ...  
... २०७ ...  
... २०८ ...  
... २०९ ...  
... २१० ...  
... २११ ...  
... २१२ ...  
... २१३ ...  
... २१४ ...  
... २१५ ...  
... २१६ ...  
... २१७ ...  
... २१८ ...  
... २१९ ...  
... २२० ...  
... २२१ ...  
... २२२ ...  
... २२३ ...  
... २२४ ...  
... २२५ ...  
... २२६ ...  
... २२७ ...  
... २२८ ...  
... २२९ ...  
... २३० ...  
... २३१ ...  
... २३२ ...  
... २३३ ...  
... २३४ ...  
... २३५ ...  
... २३६ ...  
... २३७ ...  
... २३८ ...  
... २३९ ...  
... २४० ...  
... २४१ ...  
... २४२ ...  
... २४३ ...  
... २४४ ...  
... २४५ ...  
... २४६ ...  
... २४७ ...  
... २४८ ...  
... २४९ ...  
... २५० ...  
... २५१ ...  
... २५२ ...  
... २५३ ...  
... २५४ ...  
... २५५ ...  
... २५६ ...  
... २५७ ...  
... २५८ ...  
... २५९ ...  
... २६० ...  
... २६१ ...  
... २६२ ...  
... २६३ ...  
... २६४ ...  
... २६५ ...  
... २६६ ...  
... २६७ ...  
... २६८ ...  
... २६९ ...  
... २७० ...  
... २७१ ...  
... २७२ ...  
... २७३ ...  
... २७४ ...  
... २७५ ...  
... २७६ ...  
... २७७ ...  
... २७८ ...  
... २७९ ...  
... २८० ...  
... २८१ ...  
... २८२ ...  
... २८३ ...  
... २८४ ...  
... २८५ ...  
... २८६ ...  
... २८७ ...  
... २८८ ...  
... २८९ ...  
... २९० ...  
... २९१ ...  
... २९२ ...  
... २९३ ...  
... २९४ ...  
... २९५ ...  
... २९६ ...  
... २९७ ...  
... २९८ ...  
... २९९ ...  
... ३०० ...

... ३०१ ...  
... ३०२ ...  
... ३०३ ...  
... ३०४ ...  
... ३०५ ...  
... ३०६ ...  
... ३०७ ...  
... ३०८ ...  
... ३०९ ...  
... ३१० ...  
... ३११ ...  
... ३१२ ...  
... ३१३ ...  
... ३१४ ...  
... ३१५ ...  
... ३१६ ...  
... ३१७ ...  
... ३१८ ...  
... ३१९ ...  
... ३२० ...  
... ३२१ ...  
... ३२२ ...  
... ३२३ ...  
... ३२४ ...  
... ३२५ ...  
... ३२६ ...  
... ३२७ ...  
... ३२८ ...  
... ३२९ ...  
... ३३० ...  
... ३३१ ...  
... ३३२ ...  
... ३३३ ...  
... ३३४ ...  
... ३३५ ...  
... ३३६ ...  
... ३३७ ...  
... ३३८ ...  
... ३३९ ...  
... ३४० ...  
... ३४१ ...  
... ३४२ ...  
... ३४३ ...  
... ३४४ ...  
... ३४५ ...  
... ३४६ ...  
... ३४७ ...  
... ३४८ ...  
... ३४९ ...  
... ३५० ...  
... ३५१ ...  
... ३५२ ...  
... ३५३ ...  
... ३५४ ...  
... ३५५ ...  
... ३५६ ...  
... ३५७ ...  
... ३५८ ...  
... ३५९ ...  
... ३६० ...  
... ३६१ ...  
... ३६२ ...  
... ३६३ ...  
... ३६४ ...  
... ३६५ ...  
... ३६६ ...  
... ३६७ ...  
... ३६८ ...  
... ३६९ ...  
... ३७० ...  
... ३७१ ...  
... ३७२ ...  
... ३७३ ...  
... ३७४ ...  
... ३७५ ...  
... ३७६ ...  
... ३७७ ...  
... ३७८ ...  
... ३७९ ...  
... ३८० ...  
... ३८१ ...  
... ३८२ ...  
... ३८३ ...  
... ३८४ ...  
... ३८५ ...  
... ३८६ ...  
... ३८७ ...  
... ३८८ ...  
... ३८९ ...  
... ३९० ...  
... ३९१ ...  
... ३९२ ...  
... ३९३ ...  
... ३९४ ...  
... ३९५ ...  
... ३९६ ...  
... ३९७ ...  
... ३९८ ...  
... ३९९ ...  
... ४०० ...



सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वव्यापी, सर्वोत्तम आदि उत्तम गुणों से युक्त मानते हैं, उनके लिये वे सर्वसद्गुण सम्पन्न हैं। जो पुरुष उन्हें सर्वरूप मानते हैं, उनके लिये वे सर्वरूप हैं। जो उन्हें सगुण-साकार मानते हैं, उन्हें वे सगुण-साकार रूप में दर्शन देते हैं।

ऊपर जो बात कही गयी, वह तो ठीक है; परन्तु इससे प्रश्नकर्ता की मूल शङ्क का समाधान नहीं हुआ, वह ज्यों-की-त्यों बनी है। शङ्क तो यही थी कि जब भगवान् सबको अलग-अलग रूप में मिलते हैं, तब फल में एकता कहाँ हुई। इसका उत्तर यह है कि प्रथम भगवान् साधक को उसके भाव के अनुसार ही मिलते हैं। उसके बाद जो भगवान् के यथार्थ तत्त्व की उपलब्धि होती है, वह वाणी के द्वारा अकथनीय है, वह शब्दों द्वारा बतलायी नहीं जा सकती। भेद अथवा अभेद रूप से जितने प्रकार से भी भगवान् की उपासना होती है, उन सबका अंतिम फल एक ही होता है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये भगवान् ने कहीं-कहीं अभेदोपासकों को अपनी प्राप्ति बतलायी है और भेदोपासक के लिये यह कहा है कि वह ब्रह्म को प्राप्त होता है, अनामय पद को प्राप्त होता है, शाश्वत् शान्ति को प्राप्त होता है, ब्रह्म को जान जाता है, अविनाशी शाश्वत पद को प्राप्त होता है इत्यादि-इत्यादि। भेदोपासना तथा अभेदोपासना-दोनों प्रकार की उपासना का फल एक ही होता है, इसी बात को लक्ष्य कराने के लिये भगवान् ने एक ही बात को उलट-फेरकर कई प्रकार से कहा है। भेदोपासक तथा अभेदोपासक दोनों के द्वारा प्रापणीय वस्तु, यथार्थ तत्त्व अथवा 'स्थान' एक ही है; उसी को कहीं परम शान्ति और शाश्वत स्थान के नाम से कहा है, कहीं परमधाम के नाम से, कहीं अमृत के नाम से, कहीं 'माम्' पद से, कहीं परम गति के नाम से, कहीं परम संसिद्धि के नाम से, कहीं अव्यय पद के नाम से, कहीं ब्रह्म निर्वाण के नाम से, कहीं निर्वाणपरमा शान्ति के नाम से और कहीं नैष्ठिक शान्ति के नाम से व्यक्त किया है। इनके अतिरिक्त और भी कई शब्द गीता में उस अंतिम फल को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु वह वस्तु सभी साधनों का फल है - इसके अतिरिक्त उसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वह वाणी का अविषय है। जिसे वह वस्तु प्राप्त हो गयी है, वही उसे जानता है;



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



परन्तु वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकता, उपर्युक्त शब्दों तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों द्वारा वह शाखाचन्द्र न्याय से उसका लक्ष्य मात्र करा सकता है। अतः साधनों का फलरूप जो परम वस्तु तत्त्व है वह एक है, यही बात युक्ति संज्ञित है।

ईश्वर का यह तात्त्विक स्वरूप अलौकिक है, परम रहस्यमय है, गुह्यतम है। जिन्हें यह प्राप्त है वे ही उसे जानते हैं। परन्तु यह बात भी उसका लक्ष्य कराने के उद्देश्य से ही कही जाती है। युक्ति से विचारकर देखा जाय तो यह कहना भी नहीं बनता।

### गीता में समता -

गीता में समता की बात प्रधान रूप से आयी है। भगवत्प्राप्ति की तो समता ही कसौटी है। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति तीनों ही मार्गों में साधनरूप में भी समता की आवश्यकता बतलायी गयी है और तीनों ही मार्गों से परमात्मा को प्राप्त हुए पुरुषों का भी समता एक असाधारण लक्षण बतलाया गया है। साधन भी उसके बिना अधूरा है, सिद्धि तो अधूरी है ही। जिसमें समता नहीं, वह सिद्धि तो अधूरी ही है। जिसमें समता नहीं, वह सिद्धि ही कैसी ? अध्याय २।१५ में 'समदुःखसुखम्' पद से ज्ञान मार्ग के साधकों में समता वाले को ही अमृतत्व अर्थात् मुक्ति का अधिकारी बतलाया गया है। अध्याय २।४८ में 'सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते' इस श्लोकार्ध के द्वारा कर्मयोग के साधक को समतायुक्त होकर कर्म करने की आज्ञा दी गयी है। अध्याय १२।१८, १९ दन दो श्लोकों में सिद्ध भक्त के लक्षणों में समता का उल्लेख किया गया है और उसी अध्याय के २०वें श्लोक में भक्ति-मार्ग के साधक के लिये भी इन्हीं गुणों के सेवन की बात कही गयी है। इसी प्रकार ६।७ से ९ में सिद्ध कर्मयोगी को सम बतलाया गया है और १४।२४-२५ में गुणों (सिद्ध ज्ञानयोगी) के लक्षणों में भी समता का प्रधान रूप से समावेश पाया जाता है।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



इस समता का तत्त्व सुगमता के साथ भली भाँति समझाने के लिये श्रीभगवान् ने गीता में अनेकों प्रकार से सम्पूर्ण क्रिया, भाव, पदार्थ और भूतप्राणियों में समता की व्याख्या की है। जैसे -

### मनुष्यों में समता

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

‘सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं और पापियों में भी समान भाव रखने वाला श्रेष्ठ है।’

### मनुष्यों और पशुओं में समता

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

‘ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते हैं।’

### सम्पूर्ण जीवों में समता

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

‘हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।’

कहीं-कहीं पर भगवान् ने व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ और भाव की समता का ही साथ वर्णन किया है। जैसे -

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥



॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ अथ विष्णुसहस्रनामोक्तम् ॥



‘जो शत्रु-मित्र और मान-अपमान में सम है तथा सरदी-गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है। (वह भक्त है)।’

यहाँ शत्रु-मित्र ‘व्यक्ति’ के वाचक हैं, मान-अपमान ‘परकृत क्रिया’ है, शीत-उष्ण ‘पदार्थ’ हैं और सुख-दुःख ‘भाव’ हैं।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाक्षेनः ।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ .

‘जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित दुःख-सुख को समान समझने वाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रिय को एक-सा मानने वाला और अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाव वाला है (वही गुणातीत है)।’

इसमें भी दुःख-सुख ‘भाव’ हैं; लोष्ट, अष्म और कक्षेन ‘पदार्थ’ है; निन्दा-स्तुति, परकृत क्रिया है और प्रिय-अप्रिय ‘प्राणी’, ‘भाव’, ‘पदार्थ’ हैं तथा ‘क्रिया’ सभी के वाचक हैं।

इस प्रकार जो सर्वत्र समदृष्टि है, व्यवहार में कथन मात्र की अहंता-ममता रहते हुए भी जो सब में समबुद्धि रखता है, जिसका समष्टि रूप समस्त संसार में आत्मभाव है, वह समतायुक्त पुरुष है और वही सच्चा साम्यवादी है।

गीता के साम्यवाद और आजकल के कहे जाने वाले साम्यवाद में बड़ा अन्तर है। आजकल का साम्यवाद ईश्वर विरोधी है और यह गीतोक्त साम्यवाद सर्वत्र ईश्वर को देखता है; वह धर्म का नाशक है, यह अहिंसा का प्रतिपादक है; वह स्वार्थमूलक है; यह स्वार्थ को समीप भी नहीं आने देता; वह खान-पान-स्पर्शादि में एकता रखकर आन्तरिक भेदभाव रखता है, यह खान-पान-स्पर्शादि में शास्त्र मर्यादानुसार यथायोग्य भेद रखकर भी आन्तरिक भेद नहीं रखता और सब में आत्मा को अभिन्न देखने की शिक्षा देता है; उसका लक्ष्य केवल धनोपासना है, इसका लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है; उसमें अपने दल का अभिमान है और दूसरों का अनादर है, इसमें सर्वथा अभिमान शून्यता







है और सारे जगत् में बाहरी व्यवहार की प्रधानता है, इसमें अन्तःकरण के भाव की प्रधानता है; उसमें परधन और परमत से असहिष्णुता है, इसमें सबका समान आदर है एवं राग द्वेष रहित व्यवहार है।

### जीवों की गति -

गीता में जीवों के गुण एवं कर्मानुसार उनकी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ-तीन गतियाँ बतलायी गयी हैं।

योग तथा सांख्य की दृष्टि से शास्त्रोक्त कर्म एवं उपासना करने वाले साधकों की गति अध्याय ८।२४ में बतलायी गयी है। उनमें जो योगभ्रष्ट हो जाते हैं अर्थात् साधन करते-करते उसके सिद्ध होने के पूर्व ही जिनका देहान्त हो जाता है, उनकी गति का अध्याय ६।४० से ४५ में वर्णन किया गया है। वहाँ यह बतलाया गया है कि करने के बाद वे स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होते हैं और सुदीर्घकाल तक उन दिव्यलोकों के सुख भोगकर पवित्र आचरण वाले श्रीमान् लोगों के घरों में जन्म लेते हैं अथवा योगियों के ही कुल में जन्मते हैं और वहाँ पूर्व अभ्यास के कारण पुनः योग के साधन में प्रवृत्त होकर परम गति को प्राप्त हो जाते हैं।

सकामभाव से विहित कर्म एवं उपासना करने वालों की गति का अध्याय १।२०, २१ में वर्णन किया गया है - जहाँ स्वर्ग की कामना से यज्ञ-यागादि वेदविहित कर्म करने वालों को स्वर्ग के भोगों की प्राप्ति तथा पुण्यों के क्षय हो जाने पर उनके पुनः मर्त्यलोक में ढकेले जाने की बात कही गयी है। वे लोग किस मार्ग से तथा किस तरह स्वर्ग को जाते हैं, इसकी प्रक्रिया अध्याय ८।२५ में बतलायी गयी है।

चौदहवें अध्याय के १४वें, १५वें और १८वें श्लोकों में सामान्य भाव से सभी पुरुषों की गति संक्षेप में बतलायी गयी है। सत्त्वगुण की वृद्धि में मरने वाले उत्तम लोकों में जाते हैं, रजोगुण की वृद्धि में मरने वाले मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तथा तमोगुण की वृद्धि में मरने वाले पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग तथा वृक्षादि योनियों में जन्मते







हैं। इस प्रकार सत्त्वगुण में स्थित पुरुष मरकर ऊपर के लोकों में जाते हैं, रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मनुष्य लोक में ही रहते हैं और तमोगुण में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् नरकों को और तिर्यक्योनियों को प्राप्त होते हैं! सोलहवें अध्याय के १९वें से २१वें श्लोक तक आसुरी प्रकृति के तामसी मनुष्यों के सम्बन्ध में भगवान् ने कहा है कि उन्हें में बार-बार आसुरी योनियों में अर्थात् कूकर शूकर आदि योनियों में डालता हूँ और इसके बाद वे घोर नरकों में गिरते हैं। इसी प्रकार और-और स्थलों में भी गुण-कर्म के अनुसार गीता में जीवों की गति बतलायी गयी है। मुक्त पुरुषों की गति का वर्णन विस्तार से सांख्य और योग के फलरूप में कहा गया है।

### गीता की कुछ खास बातें

#### (१) गुणों की पहिचान -

गीता में सात्त्विक-राजस-तामस पदार्थों, भावों एवं क्रियाओं की कुछ खास पहिचान बतलायी गयी है। वह इस प्रकार है -

जिस पदार्थ, भाव या क्रिया का स्वार्थ से सम्बन्ध न हो और जिसमें आसक्ति एवं ममता न हो तथा जिसका फल भगवत्प्राप्ति हो, उसे सात्त्विक जानना चाहिये।

जिस पदार्थ, भाव या क्रिया में लोभ, स्वार्थ एवं आसक्ति का सम्बन्ध हो तथा जिसका फल क्षणिक सुख की प्राप्ति एवं अन्तिम परिणाम दुःख हो, उसे राजस समझना चाहिये।

जिस पदार्थ, भाव या क्रिया में हिंसा, मोह एवं प्रमाद हो तथा जिसका फल दुःख एवं अज्ञान हो, उसे तामस समझना चाहिये।

इस प्रकार तीनों तरह के पदार्थों, भावों एवं क्रियाओं का भेद बतलाकर भगवान् ने सात्त्विक पदार्थों, भावों एवं क्रियाओं को ग्रहण करने तथा राजस







और तामस पदार्थों, भावों एवं क्रियाओं का त्याग करने का उपदेश दिया है।

**गीता में आचरण की अपेक्षा -**

**भावना की प्रधानता -**

यद्यपि उत्तम आचरण एवं अन्तःकरण का उत्तम भाव दोनों ही को गीता ने कल्याण का साधन माना है, किन्तु प्रधानता भाव को ही दी है। दूसरे, बारहवें तथा चौदहवें अध्यायों के अन्त में क्रमशः स्थितप्रज्ञ, भक्त एवं गुणातीत पुरुषों के लक्षणों में भाव की ही प्रधानता बतलायी गयी है। दूसरे तथा चौदहवें अध्याय में तो अर्जुन ने प्रश्न किया है आचरण को लक्ष्य करके, परन्तु भगवान् ने उत्तर दिया है भाव को ही दृष्टि में रखकर। गीता के अनुसार सकामभाव से की हुई यज्ञ, दान, तप आदि ऊँची से ऊँची क्रिया एवं उपासना से भी निष्काम भाव से की हुई शिल्प, व्यापार एवं सेवा आदि छोटी से छोटी क्रिया भी मुक्तिदायक होने के कारण श्रेष्ठ है। चौथे अध्याय में जहाँ कई प्रकार के यज्ञ रूप साधन बतलाये गये हैं, उनमें भी भाव की प्रधानता से ही मुक्ति बतलायी है।

**गीता और वेद -**

गीता वेदों को बहुत आदर देती है। अध्याय १५।१५ में भगवान् अपने को समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य, वेदान्त का रचने वाला और वेदों का जानने वाला कहकर उनका महत्त्व बहुत बढ़ा देते हैं। अध्याय १५।१ में संसार रूपी अश्वत्थवृक्ष का वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं कि 'मूल सहित उस वृक्ष को तत्त्व से जानने वाला ही वास्तव में वेद के तत्त्व को जानने वाला है।' इससे भगवान् ने यह बतलाया कि जगत् के वास्तविक स्वरूप को जानना ही वेदों का तात्पर्य है। अध्याय १३।४ में भगवान् ने कहा है कि 'जो बात वेदों के द्वारा विभागपूर्वक कही गयी है, उसी को मैं कहता हूँ।' इस प्रकार अपनी उक्तियों के समर्थन में वेदों को प्रमाण बतलाकर भगवान् ने वेदों की महिमा को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। अध्याय ९।१७ में तो भगवान् ने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद - वेदत्रयी को अपना ही स्वरूप बतलाकर उसको और भी अधिक आदर







दिया है। अध्याय १७।२३ में भगवान् वेदों को अपने से ही उत्पन्न हुए बतलाते हैं और अध्याय ४।३२ में भगवान् ने यह कहा है कि परमात्मा को प्राप्त करने के अनेकों साधन वेदों में बतलाये हैं। इसने मानों भगवान् स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि वेदों में केवल भोग-प्राप्ति के साधन ही नहीं हैं - जैसा कि कुछ अविवेकी जन समझते हैं - किन्तु भगवत्प्राप्ति के भी एक-दो नहीं, अनेकों साधन भरे पड़े हैं। अध्याय ८।११ में भगवान् परमपद के नाम से अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वेदवेत्ता लोग उसे अक्षर (ओंकार) के नाम से निर्देश करते हैं। इससे भी भगवान् यही सूचित करते हैं कि वेदों में सकाम पुरुषों द्वारा प्रापणीय इस लोक के एवं स्वर्ग के अनित्य भोगों का ही वर्णन नहीं है, उनमें परमात्मा के अविनाशी स्वरूप का भी विशद वर्णन है।

उपर्युक्त वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वेदों को भगवान् ने बहुत अधिक आदर दिया है। इस पर यह शङ्क होती है कि 'फिर भगवान् ने कई स्थलों पर वेदों की निन्दा क्यों की है ! उदाहरणतः अध्याय २।४२ में उन्होंने सकाम पुरुषों को वेदवाद में रत एवं अविवेकी बतलाया है। अध्याय २।४५ में उन्होंने वेदों को तीनों गुणों के कार्यरूप सांसारिक भोगों एवं उनके साधनों का प्रतिपादन करने वाला कहकर अर्जुन को उन भोगों में आसक्ति रहित होने के लिये कहा है और अध्याय ९।२१ में वेदत्रयी धर्म का आश्रय लेने वाले सकाम पुरुषों के सम्बन्ध में भगवान् ने यह कहा है कि वे बारम्बार जन्मते-मरते रहते हैं, आवागमन के चक्र से छूटते नहीं। ऐसी स्थिति में क्या माना जाय ?'

इस शङ्क का उत्तर यह है कि उपर्युक्त वचनों में यद्यपि वेदों की निन्दा प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में उनमें वेदों की निन्दा नहीं है। गीता में सकाम भाव की अपेक्षा निष्काम भाव को बहुत अधिक महत्व दिया गया है और भगवान् की प्राप्ति के लिये उसे आवश्यक बतलाया है। इसी से उसकी अपेक्षा सकाम भाव को नीचा और नाशवान् विषय-सुख के देने वाला बतलाने के लिये ही उसको जगह-जगह तुच्छ सिद्ध किया है, निषिद्ध कर्मों की भाँति उनकी निन्दा नहीं की है। अध्याय ८।२८ में जहाँ वेदों के







फल को लॉघ जाने की बात कही गयी है, वहाँ भी सकाम कर्म को लक्ष्य करके ही वैसा कहा गया है। उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान् ने गीता में वेदों की निन्दा कहीं भी नहीं की है, बल्कि जगह-जगह वेदों की प्रशंसा ही की है।

### गीता और सांख्यदर्शन तथा योगदर्शन -

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि गीता में जहाँ-जहाँ 'सांख्य' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ वह महर्षि कपिल के द्वारा प्रवर्तित सांख्य दर्शन का वाचक है, परन्तु यह बात युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती। गीता के तेरहवें अध्याय में लगातार तीन श्लोकों में तथा अन्यत्र भी 'प्रकृति' और 'पुरुष' दोनों शब्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है और प्रकृति-पुरुष सांख्यदर्शन के खास शब्द हैं; इससे लोगों ने अनुमान कर लिया कि गीता को कापिल सांख्य का सिद्धांत मान्य है। इसी प्रकार 'योग' शब्द को भी कुछ लोग पातञ्जल योग का वाचक मानते हैं। पाँचवें अध्याय के प्रारम्भ में तथा अन्यत्र भी कई जगह 'सांख्य' और 'योग' शब्दों का एक ही जगह प्रयोग हुआ है, इससे भी लोगों ने यह मान लिया कि 'सांख्य' और 'योग' शब्द क्रमशः कापिल सांख्य तथा पातञ्जल योग के वाचक हैं; परन्तु यह बात युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती। न तो गीता का सांख्य कापिल सांख्य ही है और न गीता का 'योग' पातञ्जल योग ही। नीचे लिखी बातों से यह स्पष्ट हो जाता है।

(१) गीता में ईश्वर को जिस रूप में माना है, उस रूप में सांख्यदर्शन नहीं मानता।

(२) यद्यपि 'प्रकृति' शब्द का गीता में कई जगह प्रयोग आया है, परन्तु गीता की 'प्रकृति' और सांख्य की 'प्रकृति' में महान् अन्तर है। सांख्य ने प्रकृति को अनादि एवं नित्य माना है; गीता ने भी प्रकृति को अनादि तो माना है, परन्तु गीता के अनुसार ज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म के सिवा प्रकृति की अलग सत्ता नहीं रहती।







- (३) गीता के 'पुरुष' और सांख्य के 'पुरुष' में भी महान् अन्तर है। सांख्य के मत में पुरुष नाना हैं; किन्तु गीता एक ही पुरुष को मानती है।
- (४) गीता की 'मुक्ति' और सांख्य की 'मुक्ति' में भी महान् अन्तर है। सांख्य के मत में दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मुक्ति का स्वरूप है; गीता की 'मुक्ति' में दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तो है ही, किन्तु साथ-ही-साथ परमानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति भी है।
- (५) पातञ्जल योग में योग का अर्थ है - 'चित्त-वृत्ति का निरोध' परन्तु गीता में प्रकरणानुसार 'योग' शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है (गीतातत्त्वाङ्क अध्याय २।५३ की टीका)।

इस प्रकार गीता और सांख्यदर्शन तथा योगदर्शन के सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर है।

## (२) महर्षि वाल्मीकि एवं उनके रामायण पर वेदों का प्रभाव :-

प्रायः सभी व्याख्येताओं ने अपनी रामायण-व्याख्या के प्रारम्भ में एक बड़ा सुन्दर मनोहारी श्लोक लिखा है, जो इस प्रकार है -

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।

वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना ॥

भाव यह है कि परमात्मा वेदवेद्य है अर्थात् केवल वेदों के द्वारा ही जाना जा सकता है। जब वह परब्रह्म परमेश्वर लोककल्याण के लिये दशरथनन्दन रघुनन्दन आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र के रूप में अवतीर्ण हुआ, तब सभी वेद भी प्रचेतामुनि के पुत्र महर्षि वाल्मीकि के मुख से श्रीमद्रामायण के रूप में अवतीर्ण हुए। तात्पर्य यह कि श्रीमद्रामायण विशुद्ध वेदार्थ-रूप में ही लोककल्याण के लिये प्रकट हुआ है। इन्हीं कारणों से मूल रूप में सौ करोड़ श्लोकों में उपनिबद्ध श्रीमद्रामायण का एक-एक



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



अक्षर सभी महापातकों एवं उपातकों का प्रशमन करने वाला और परम एवं चरम पुण्य का उत्पादक बताया गया है -

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

वेदों का अर्थ गूढ़ है तथा रामायण के भाव अत्यन्त सरल हैं। अतः रामायण के द्वारा ही वेदार्थ जाना जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि ने इस रहस्य का वर्णन अपनी रामायण में बार-बार किया है। मूल रामायण की फलश्रुति में वे कहते हैं -

इदं पवित्रं पापन्धं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।

यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अर्थात् यह सर्वाधिक परम पवित्र, सभी पापों का नाश करने वाला, अपार पुण्य प्रदान करने वाला तथा वेदों के तुल्य है। इसे जो पढ़ता है, वह सभी पाप-तापों से मुक्त हो जाता है।

भगवान् श्रीराम चारों भाइयों के साथ महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जाकर वेदाध्ययन करते हैं। राजर्षि जनक के गुरु पुरोहित याज्ञवल्क्य, गौतम, शतानन्द आदि सभी वेदों में निष्णात थे। यही नहीं, स्वयं रावण भी वेदों का बड़ा भारी विद्वान् पण्डित था। उसके भाष्यों का प्रभाव सायण, उद्गीथ, वेंकट माधव तथा मध्वादि के भाष्यों पर प्रत्यक्ष दीखता है। उसके यहाँ अनेक वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण थे। हनुमान्जी जब अशोक वाटिका में सीताजी को ढूँढ़ते हुए पहुँचे और अशोक वृक्ष पर छिपकर बैठे, तब आधी रात के बाद उन्हें लंकानिवासी वेदपाठी विद्वानों की वेदध्वनि सुनायी पड़ी -

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।

शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥







रात के उरा। पिछले पहर में छहों अङ्गों सहित रामपूर्ण वेदों के विद्वान् तथा श्रेष्ठ यज्ञों द्वारा यजन करने वाले ब्रह्म-राक्षसों के घर में वेदपाठ की ध्वनि होने लगी, जिसे हनुमान्जी ने सुना।

अयोध्या में तो वेदज्ञ ब्राह्मणों का बाहुल्य ही था। जब भरतजी रामजी को वापस करने चित्रकूट जाते हैं तो अनेक वेदपाठी शिक्षक-छात्र भरतजी के साथ चलते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि कठ, कण्व, कपिष्ठल आदि शाखाओं के शिक्षक, याज्ञिक भरतजी के साथ चल रहे थे और भरतजी ने उनकी रुचि के अनुसार जलपान तथा भोजनादि की पूरी व्यवस्था कर रखी थी।

इसी प्रकार वनवास-काल में भगवान् श्रीरामजी की महर्षि अगस्त्य से भेंट होती है। अगस्त्यजी का ऋग्वेद में 'आगस्त्य-मण्डल' बहुत प्रसिद्ध है। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा वेद के कई सूक्तों की द्रष्टा हैं।

हनुमान्जी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् - निष्णात पण्डित थे। जब वे किष्किन्धा में भगवान् श्रीराम से बातें करते हैं, तब श्रीरामजी लक्ष्मण जी से कहते हैं -

तमभ्यभाष सौपित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् ।  
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥  
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।  
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विंभाषितुम् ॥  
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।  
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥  
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।  
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥

“लक्ष्मण ! इन शत्रुदमन सुग्रीव सचिव कपिवर हनुमान् से, जो बात के मर्म को समझने वाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक मीठी वाणी में बातचीत करो।” जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान्







नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुँह से कोई अशुद्धि नहीं निकली। सम्भाषण के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य सब अङ्गों से भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ।”

भाव यह है कि जब तक कोई अनेक व्याकरणों का ज्ञाता नहीं होगा, वेदज्ञ नहीं होगा, तब तक इतना सुन्दर, शान्त एवं प्रसन्न-चित्त से शुद्धातिशुद्ध सम्भाषण नहीं कर सकेगा।

हनुमान्जी जब लंका जाते हैं और रावण से बातचीत करते हैं तो वेदों के सारभूत ज्ञान का निरूपण करते हैं। वे रावण से कहते हैं कि तुम पुलस्त्य-कुल में उत्पन्न हुए हो, वेदज्ञ हो, तुमने तपस्या की है और देवलोक तक को भी जीत लिया है, इसलिये सावधान हो जाओ। तुमने वेदाध्ययन और धर्म का फल तो पा लिया, अब वेदविरुद्ध दुष्कर्मों का परिणाम भी तुम्हारे सामने उपस्थित दीखता है -

प्राप्तं धर्मफलं तावद् भवता नात्र संशयः ।

फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रनत्स्यसे ॥

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा

रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा

स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥

तुमने पहले जो धर्म किया था, उसका पूरा-पूरा फल तो यहाँ पा लिया, अब इस सीताहरण रूपी अधर्म का फल भी तुम्हें शीघ्र मिलेगा। चार मुखों वाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रों वाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा देवताओं के स्वागी महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र भी समराङ्गण में श्रीरघुनाथजी के सामने नहीं ठहर सकते।







अर्थात् जिनके तुम भक्त हो, वे त्रिनेत्रधारी त्रिशूलपाणि भगवान् शंकर अथवा चार मुखवाले ब्रह्मा या समस्त देवताओं के स्वामी इन्द्र - सभी मिलकर भी राम के वध्य शत्रु की रक्षा नहीं कर सकते।

इसी प्रकार हनुमान्जी ने रावण के समक्ष तर्कों से - युक्तियों से राम को परब्रह्म परमात्मा सिद्ध किया है। वे कहते हैं -

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ।  
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥  
सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।  
पुनरेव तथा स्त्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥

विभीषण को वेद का तत्त्वज्ञान था। उन्होंने रावण को वेदज्ञान के आधार पर परामर्श दिया, किन्तु उसने उनकी एक भी नहीं सुनी। इसलिये वेद को जानते हुए भी वेद के विरुद्ध वह चल रहा था। गोस्वामीजी ने ठीक लिखा है -

बेद विरुद्ध मही, मुनि, साधु ससोक किए सुरलोक उजारो।  
और कहा कहों, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो॥  
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम ! सुभाउ तिहारो।  
तौलों न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलों बिभीषन लातु न मारो ॥

विभीषण सच्चे वेदज्ञ थे, इसलिये वे वेदतत्त्व-राम को पहचान पाये। तुलसीदास ने वसिष्ठ के मुख से राम के जन्मते ही यह बात कहलायी -

धरे नाम मुनि हृदयँ बिचारी । बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी॥  
मुनि धन जन सरबस सिव प्राणा । बाल केलि रस.तेहिं सुख माना ॥

ये आनन्दकन्द रघुनन्दन साक्षात् वेदपुरुष - वेदतत्त्व हैं और अपनी लेशमात्र शक्ति से सारे संसार को प्रकाशित करते हैं। समस्त मन, बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और जीवात्मा को प्रकाशित करते हैं -

जो आनंद सिंधु सुखरासी । सीकर तं त्रैलोक सुपासी ॥  
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक विश्रामा ॥







बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तेँ एक सचेता ॥

सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥

समस्त प्राणियों के विषय, इन्द्रिय, उनके स्वामी देवता एक-से-एक विशिष्ट चैतन्य कहे गये हैं, किन्तु सबको प्रकाशित करने वाली शक्ति एक ही है, जो अनादि ब्रह्म वेदसार श्रीराम के नाम से विज्ञेय है। स्वयं भगवान् राम ने रावण को देखकर कहा था - यह रावण अत्यन्त तेजस्वी है, वेदों का ज्ञाता है, किन्तु इसका आचरण वेदविरुद्ध हो गया, अन्यथा यह शाश्वत काल के लिये तीनों लोकों का स्वामी हो सकता था। महर्षि वाल्मीकि द्वारा श्रीमद्रामायण में भगवान् के भाव इन शब्दों में निरूपित हुए हैं -

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः ।

स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥

वाल्मीकि रामायण की समाप्ति के समय प्रार्थनारूप में कहा गया है कि सम्पूर्ण वेदों के पाठ का जितना फल होता है, उतना ही फल इसके पाठ से होता है। इससे देवताओं की सारी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। सम्पूर्ण विश्व में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और भगवान् विष्णु का बल बढ़ता जाता है -

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।

देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

इस प्रकार संक्षेप में यह समझाया गया है कि बिना रामायण के जाने वेद का ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। जो रामायण को नहीं जानता वह वेद के अर्थ को ठीक नहीं समझ सकता। इसीलिये अल्पश्रुतों से वेद भयभीत रहता है।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदों गामयं प्रहरिष्यति ।

वाल्मीकि जी ने जब प्रथम श्लोकबद्ध लौकिक साहित्य की रचना की, तब ब्रह्माजी उनकी मनःस्थिति समझकर हँसने लगे और मुनिवर वाल्मीकि से इस प्रकार बोले - 'ब्रह्मन् ! तुम्हारे मुँह से निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा। इस विषय में तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए। मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे







मुँह से ऐसी वाणी निकली है। इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजी की परम पवित्र एवं मनोरम कथा को श्लोकबद्ध करके लिखो। वेदार्थयुक्त रामचरित का निर्माण करो' -

तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन् मुनिपुङ्गवम् ॥  
 श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा ।  
 मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥  
 कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् ।

आगे ब्रह्माजी ने पुनः कहा - जब तक पृथ्वी, पर्वत और समुद्र रहेंगे, तुम्हारी रामायण भी रहेगी और इसके आधार पर अनेक रामायणों की रचना होगी तथा तुम्हारी तीनों लोकों में अबाधगति होगी और रामायणरूपी तुम्हारी यह वाणी समस्त काव्य, इतिहास, पुराणों का आधारभूत बीजमन्त्र बनी रहेगी।

कहा जाता है कि सभी ब्राह्मण बालकों को सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि के मुखा से निकला हुआ यही श्लोक पढ़ाया जाता था, जो इस प्रकार है -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।  
 यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

गोविन्दराज, माधव गोविन्द, नागेश भट्ट, कतक, तीर्थ और शिवसहाय तथा राजा भोज आदि कवियों ने इस श्लोक के अनेक अर्थ किये हैं। राजा भोज ने इसी के आधार पर चम्पू रामायण का निर्माण किया है। सबसे अधिक अर्थ गोविन्दराज ने किया है।

इस प्रकार अत्यन्त संक्षेप में वेदसारभूत श्रीमद्रामायण का परिचय दिया गया है, जो कि वैदिक साहित्य से भिन्न सम्पूर्ण विश्व के लौकिक साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है। सारे संसार के ग्रंथ इसी से प्रकाशित होते हैं। प्रथम कवि संसार में वाल्मीकि ही हुए हैं, जैसा कि प्रसिद्ध है -

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभवद् ध्वनिः ।



॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
- अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
- अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥  
अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥

॥ अथ चत्वारिंशदधिकशतिकाः ॥



### (३) भारतीय दर्शन एवं नीति में महाभारत का महत्व एवं स्थान :-

प्राचीन भारत के इतिहास की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य में 'रामायण', 'महाभारत' और 'पुराणों' का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक इतिहास-ग्रन्थों की भाँति वे घटनावलियों और तिथियों का क्रमबद्ध इतिहास भले ही उपस्थित न करते हों, फिर भी भारत के सांस्कृतिक इतिहास के अनुशीलन के लिए वे बहुमूल्य हैं। हमारे प्राचीन राष्ट्रीय जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और व्यावहारिक सभी अंशों पर उनसे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

'महाभारत' एक सम्पूर्ण युग की रचना है, जिसमें उसके समस्त गुण-दोषों का अत्यन्त मार्मिक रूप से उद्घाटन हुआ है। संसार के साहित्य में शायद ही कोई दूसरा ऐसा ग्रन्थ हो जो 'महाभारत' की तुलना में रखा जा सके। यह कविरूपी माली का यत्नपूर्वक संवारा हुआ ऐसा उद्यान नहीं है जिसके लता-वृक्ष-पुष्प अपने सौन्दर्य के लिए बाहरी सहायता की अपेक्षा रखते हैं, बल्कि यह स्वाभाविक जीवन शक्ति से परिपूर्ण वनस्पतियों और लताओं का अयत्न परिवर्धित विशाल वन है, जो अपनी उपमा आप ही है। अनेक युगों से संचित भारतीय ज्ञान का भण्डार है। वेदांत दर्शन में जो स्थान ब्रह्म सूत्र, उपनिषद् व गीता का है, जिसे प्रस्थानत्रयी कहा जाता है, लौकिक साहित्य में भी ठीक वही स्थान इन तीन ग्रन्थ रत्नों का है।

वेदों की तरह ये ग्रन्थ भी परवर्ती साहित्य के उपजीव्य रहे हैं, जहाँ स अजस्र ज्ञानधारा प्रस्फुटित होकर विशाल संस्कृत साहित्योद्यान को आप्लावित कर रही है। वैदिक ज्ञान-विज्ञान धर्म व संस्कृति की सरल सुगम व विस्तृत व्याख्या इन ग्रन्थ-रत्नों में विद्यमान है। प्राचीन भारत के इतिहास के साथ-साथ आचार-विचार, व्यवहार व उस समय की समग्र धर्म और राजनीति की झलक इन्हीं ग्रन्थों में हमें दृष्टिगोचर होती है।







संस्कृत साहित्य की सेवा जिन महामनीषियों ने की है, उनमें से महामुनि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास तथा महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व महान् आश्चर्य जनक अद्भुत तथा अलौकिक है, जिनकी अमर कृतियाँ वाल्मीकि रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत्, रघुवंश महाकाव्य व 'मेघदूतादि' हमें अनमोल विरासत के रूप में मिले हैं। यदि संस्कृत साहित्य से इन अनमोल रत्नों को अलग कर दिया जाय तो कहना न होगा कि यह साहित्य अपनी दिव्य आभा से शून्य हो जायेगा। निःसंदेह ये ग्रन्थ, गुण व परिमाण में भी अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा महान् हैं।

रामायण महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक हैं। क्योंकि गायत्री मंत्र में भी चौबीस ही अक्षर हैं, इन्हीं चौबीस अक्षरों की यहाँ विशाल व्याख्या की गई है। यह पाँच सौ सर्गों में तथा सात काण्डों में विभक्त है। निश्चित ही यह काव्यरत्न महाकाव्यों के महनीय गुण-गणों से विभूषित संस्कृत साहित्य-मंदिर के कलश के समान है। काव्यसंसार में वाल्मीकि समान वाणी की तुलना में न कोई समर्थ है और न हो सकता। स्वभाव के कथन में, चरित्र-चित्रण में तथा मानव-मनोगत, भाव विलासों के प्रदर्शन में, वन-पर्वत, नदी-तपोवन, उपवनादि के वर्णन में निःसंदेह वाल्मीकि जी अद्वितीय हैं। आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, वेदों की परवर्ती परम्परा में, एक सामाजिक ग्रन्थ के प्रति वही पूज्यभाव है जो साक्षात् भगवान् के प्रति होता है, साथ ही साथ इस ग्रन्थ के रसात्मक सौन्दर्य का जितना चरमोत्कर्ष है उतना ही कलात्मक सौन्दर्य का भी है। रसात्मक अनुभूति के स्तर पर भी वाल्मीकि एक ऐसे कवि हैं कि परवर्ती कवि उनकी छाया भी न छू सके। निश्चित रूप से वाल्मीकीय रामायण एक ऐसी पावन भागीरथी है जिसके अगाध महत्त्व को ग्रहण कर अन्य अनेक काव्य नदियों एवं उपनदियों के रूप में अजस्र रूप से प्रवाहित हो चले हैं। वाल्मीकीय रामायण रुपी पुण्य सलिला के अवगाहन से युगों-युगों के कालुष्य धुल जाते हैं। जनमानस इसकी पवित्र लहरी से प्रफुल्लित हो उठता है। बिखरी हुई राष्ट्रीयता एक सूत्र में बंध जाती है। समस्त समाज सुसंगठित होकर प्रफुल्लता की अँगड़ाईयों से झूम उठता है। आशय यह है कि इस ग्रन्थ का महत्त्व मानव समाज के लिए निर्विवाद है।







यह तथ्य स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का मूल रूप संस्कृत साहित्य में निवास करता है तथा संस्कृत साहित्य का आदि महाग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण है। कृत युग के बाद त्रेता युग की मूल भारतीय संस्कृति प्रस्तुत ग्रन्थ में ही निहित है। राम का सम्पूर्ण जीवन चरित्र भारतवासियों के लिए आदर्श महामानव का जीवन चरित्र है, राम की अर्धांगिनी सीता भी आदर्श भारतीय नारी के चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है।

महाभारत का ही एक अंग भगवद्गीता है, जिसे भारतीय संस्कृति, अध्यात्म एवं दर्शन का सर्वश्रेष्ठ एवं आधारभूत ग्रंथ कहा जा सकता है। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय किया गया है। महाभारत के इस शतसाहस्री संहिता में गीता सबसे महत्त्वपूर्ण व अमूल्य उपदेशों की मञ्जूषा मानी जाती है। इसमें वर्णाश्रम धर्म, नित्यधर्म और नैमित्तिक धर्म की विस्तार पूर्वक चर्चा की गई। इसमें मोक्ष अथवा लोक संग्रह को परम साध्य मानकर साधन के रूप में निष्काम कर्म का विवेचन किया गया है। विश्वरूप दर्शन में विश्व में नैतिक एवं दार्शनिक व्यवस्था दिखलाई गई है, और आसुरी प्रवृत्तियों में भेद करके सद्गुणों को विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। महाभारत में गीता-उपदेश की परिस्थिति एक दार्शनिक एवं नैतिक परिस्थिति थी, जिसमें अर्जुन को मार्ग नहीं सूझ रहा था, और इस ग्रंथ के अठारह अध्यायों में श्रीकृष्ण ने विभिन्न तर्कों से अर्जुन को उसके धर्म का महत्त्व समझाने का प्रयास किया है। गीता का उपदेश सुनकर अर्जुन को मार्ग स्पष्ट हो गया था। तब से आज तक संसार में असंख्य व्यक्तियों के लिए गीता मार्गदर्शक का कार्य करती है।

महाभारत में जो भी धर्म एवं दर्शन की बातें कही गई हैं, वे मुख्यतः श्रीकृष्ण एवं ऋषियों के द्वारा ही कहलाई गयी है। वैसे भी महाभारत के रचयिता वेदव्यास ने ही इन समस्त सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन किया है। अतः महाभारत में प्राप्त समस्त धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त उपदेश आदि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित ही समझे जा सकते हैं।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



इस प्रकार भारतीय धर्म, दर्शन और सभ्यता आदि का संरक्षण महर्षि व्यास ने अपने ग्रंथों में किया है तथा वेदान्त दर्शन में उन्होंने जो मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि जीवन पद्धतियों का व्यवहारिक विवेचन किया है, वह उन्हें युग निर्माता प्रमाणित करता है। योग और दर्शन सम्भवतः मनुष्यों को कल्याण पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए व्यास रचित महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में मानव के अभ्युदय और कल्याण के साधक अमृतमय वचन पग-पग पर प्राप्त होते हैं। महर्षि व्यास मानव के सर्वोत्कृष्ट जीवन के प्रति सदैव श्रद्धालु रहे हैं।

महाभारत को पाँचवा वेद कहा जाता है। चारों वेद केवल द्विजों के लिए थे। महाभारत शूद्रों तथा मलेच्छों के लिए भी है। इस प्रकार महाभारत सम्पूर्ण वर्गों या जातियों का ग्रंथ है। वह भारत वर्ष का राष्ट्रीय महाग्रन्थ है। आधुनिक युग के विचारकों का यह कहना है - "महाभारत जैसे सार्ववर्णिक ग्रन्थ की आवश्यकता हिन्दुओं को बौद्धों के धर्मग्रन्थों के कारण हुई है। बौद्धों के धर्मग्रन्थ सभी मनुष्यों के लिए थे और चारों वेद केवल ब्राह्मणों के लिए थे। ऐसी परिस्थिति में हिन्दुओं को ऐसे पाँचवें वेद की आवश्यकता पड़ी जो द्विजों और शूद्रों तथा मलेच्छों सभी के लिए हो। इस प्रकार महाभारत को पाँचवा वेद कहने का जो भी रहस्य रहा हो, उसका तात्पर्य यह अवश्य है कि यह चारों वेदों की वेदता को सुरक्षित रखते हुए भी सभी मनुष्यों के लिए धर्मशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र का विधान करता है। उसने वेदों को तो ब्राह्मणों तक ही सीमित रखा तथा ब्राह्मणेत्तर लोगों के लिये एक पाँचवा वेद प्रदान किया। इस वेद में वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म का समन्वय है।

महाभारत में धर्म की व्याख्या प्रवृत्ति और निवृत्ति में की गई है। विशेषतः यह प्रवृत्ति दोनों रूपों में की गई है। विशेषतः यह प्रवृत्ति मार्ग या कर्ममार्ग का ग्रन्थ है। उसमें चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार वर्ण कर्म के पालन पर विशेष बल दिया गया है। किन्तु इतना होने पर भी इसमें निवृत्ति मार्ग का अच्छा विवेचन और समन्वय है। सभी लोग अपने इसी जीवन में अपने वर्ण कर्म के पालन से, शक्ति से या योग से मोक्ष प्राप्त







कर सकते हैं। मोक्ष परम धर्म है और वह सभी को सुलभ है। इसके अतिरिक्त अर्थ, काम और धर्म या वर्ण कर्म का पालन भी धर्म है। इस धर्म को लोक धर्म कहा गया है। लोक धर्म में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का कट्टर समर्थन महाभारत में मिलता है। धर्म व्याध शूद्र थे, उन्हें परम धर्म ज्ञात था। इतना होने पर भी उन्होंने अपने वर्णगत कर्म को, मांस बेचने को छोड़ा नहीं था। इसी प्रकार तुलाधार वैश्य जीवनमुक्त थे, किन्तु उन्होंने भी अपने वर्णगत व्यवसाय को छोड़ा नहीं था। इससे स्पष्ट है कि महाभारत में प्रवृत्ति मार्ग पर विशेष बल है। जीवनमुक्त को भी यज्ञ, दान तथा तप करने का विधान भगवद्गीता में किया गया है।

फिर यद्यपि ब्राह्मणेत्तर धर्म व्याध, तुलाधार, मातंग आदि धर्मवेत्ता और मुक्त पुरुष माने गए हैं तथापि उन्हें ब्राह्मण नहीं माना गया है। मातंग को तो स्पष्ट कहा गया है कि ब्राह्मण जन्म से ही होते हैं, और इस जन्मतर में मातंग परमज्ञानी होने पर भी ब्राह्मण नहीं हो सकते। इस प्रकार महाभारत में जन्मा ब्राह्मण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु ज्ञानी अब्राह्मणों को भी ब्राह्मणवत् सम्मान दिया गया है और ब्रह्मज्ञानी तथा तपस्वी ब्राह्मणों ने उनकी शिष्यता स्वीकार की है। उदाहरण के लिए कौशिक ने धर्मव्याध की और जाजलि ने तुलाधार की शिष्यता ग्रहण की थी। इससे सिद्ध है कि महाभारत में ब्रह्मणेत्तर विद्वानों को भी आदर दिया जाता था और उस काल के ब्राह्मण ज्ञान की खोज में किंसी को भी अपना गुरु बना सकते थे।

महाभारत मुख्यतः धर्मशास्त्र है। वह तीन पुरुषार्थों में धर्म पर ही अधिक बल देता है। शांति पर्व के अंत में तीन श्लोकों में महाभारत का सार दिया गया है। वह 'भारत सावित्री' कहलाता है। भारत सावित्री के अनुसार धर्म से ही अर्थ का पालन सदैव करना चाहिए। कामना से भय, भय से लोभ, लोभ से पाप उत्पन्न होता है। प्राण रक्षा के लिए कभी भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म नित्य है, सुख-दुःख अनित्य है तथा जीव नित्य है और जीव का बंधन या देह अनित्य है। यही बात भगवद्गीता में भी कही गई है कि अपना धर्म निर्गुण हो तो भी कर्तव्य है और परधर्म







भयावह है। अपने धर्म का पालन करते मर जाना श्रेष्ठ है। यही धर्म का महत्व है। धर्म की गति सूक्ष्म और गहन है। प्रायः धर्म और अधर्म का विवेक नहीं हो पाता, किन्तु जिन परिस्थितियों में यह विवेक नहीं हो पाता, उनमें ही धर्म की परीक्षा होती है। धीर, धर्मात्मा लोग उस समय भी धर्म को अधर्म से भिन्न कर लेते हैं। महाभारत के उपाख्यान तथा विवेचन ऐसी परिस्थितियों में धर्म के स्वरूप को बताने में अत्यन्त सफल हैं।

महाभारत ही पहला ग्रंथ है जिसमें निगम और आगम दोनों का सर्वप्रथम मेल हुआ है। एक ओर इसमें वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञान काण्ड का समन्वय है तो दूसरी ओर उसमें लोक जीवन के रीति-रिवाज तथा भक्ति, धर्म का भी विवेचन है। आर्यों, पहलवों, शकों, हूणों, आभीरों आदि के रीति-रिवाज तथा जीवन-पद्धतियों का अद्भुत समन्वय महाभारत में मिलता है। इस प्रसंग में सबसे अधिक उल्लेखनीय तत्त्व यह है कि महाभारत में कृष्ण परमदेव या देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। महाभारत के पहले कृष्ण को यह स्थान नहीं मिला था। कृष्ण ने इन्द्र का मानमर्दन किया, रुद्र को परास्त किया और स्वयं अपने को विष्णु या हरि से अभिन्न किया। अतः महाभारत निश्चित रूप से वैष्णवशास्त्र है।

महाभारत समस्त भारतीय साहित्य का एक उपजीव्य ग्रंथ है। उसके उपाख्यानों को लेकर परवर्ती युगों में अनेक महाकाव्य तथा नाटकों की रचना की गई है। इसके परायण से चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है, ऐसा कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि महाभारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जिस प्रकार से कहे गए हैं, उससे वे एक दूसरे से संतुलित रहते हैं, और परस्पर सहायक हैं। महाभारत एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें श्रेष्ठ धर्मशास्त्र, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र, श्रेष्ठ कामशास्त्र तथा श्रेष्ठ मोक्षशास्त्र सन्निहित है। (मार्कण्डेय पुराण १।६७)। स्पष्ट है कि यह एक परमार्थ दर्शन या मूल्य-मीमांसा का ग्रंथ है। मार्कण्डेय पुराण में इस मूल्य मीमांसा को महाशास्त्र कहा गया है। क्योंकि सभी शास्त्र पृथक-पृथक मूल्यों का ही अनुशीलन करते हैं और यह महाभारत सभी मूल्यों का अनुशीलन एक निश्चित समय में करता है। इस प्रकार







एक महाभारत महाशास्त्र होने के कारण केवल महाभारत के ही ज्ञान में सभी साध्यों का ज्ञान हो सकता है। इस रूप में महाभारत का महत्व भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही सर्वोपरि माना गया है। आज भी मूल्य मीमांसा का एक विशाल ग्रंथ होने के कारण इसका महत्व उतना ही है जितना इसकी रचना के समय था। वास्तव में महाभारत मानवता को संपूर्ण मूल्य-मीमांसा का उचित तथा पर्याप्त ज्ञान सदा कराता रहेगा, और जैसी मूल्य मीमांसा इसमें विकसित हुई है, वैसी विश्व के किसी अन्य ग्रंथ या दर्शन में नहीं है। अतः महाभारत का महत्व नित्य नूतन तथा सर्वोपरि है और बना रहेगा।

भारतीय दर्शन में महाभारत को स्मृति के अंतर्गत रखा जाता है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ भी महाभारत के धर्मशास्त्र से विकसित हुई हैं। इन सभी स्मृतियों में प्रायः महाभारत का महत्व सर्वोपरि है। श्रुति स्मृति से बलवान् है और जब श्रुति और स्मृति का विरोध हो तब श्रुति ही स्वीकार्य है। किन्तु जब दोनों में विरोध नहीं है या जब स्मृति के विषय में श्रुति मौन है। तब स्मृति का प्रामाण्य स्वीकार्य है और अन्य शब्द प्रमाणों या प्रमाणों से बलवान् है। इस प्रकार महाभारत का स्थान केवल वेदों से कम और अन्य समस्त शास्त्रों से अधिक है।

#### (४) महाभारत के दार्शनिक प्रकरण ग्रंथ :-

महाभारत एक विशाल ग्रंथ है। इसमें कई जगह दार्शनिक विचार व्यक्त किए गए हैं। इसके अनेक छोटे-छोटे अंशों को पृथक-पृथक पुस्तकों का रूप दिया गया है और ये पुस्तकें भारतीय नीति एवं धर्म के लिए अत्यंत महत्पूर्ण हैं। उनमें से निम्नलिखित का विशेष प्रचार है:-

#### श्रीमद्भगवद्गीता -

यह भीष्म पर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर बयालीसवें अध्याय समाहित (कुल अठारह अध्याय) हैं। इसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है। भगवद्गीता एक तरह से सम्पूर्ण महाभारत के दर्शन का सार संक्षेप है और इसका प्रभाव भारतीय







दर्शन पर सर्वाधिक है। इसका महत्त्व इसी से आंका जा सकता है कि यह ग्रंथ सभी प्रकार के वेदान्त दर्शनों का एक प्रधान ग्रंथ बन गया है। और इस पर जितना लिखा गया है उतना किसी अन्य ग्रंथ पर नहीं लिखा गया है।

इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण द्वारा कर्मयोग तथा मोक्ष पर वृहद् उपदेश दिया गया है। यही भारतीय दर्शन का आधार है।

### विष्णुसहस्रनाम -

यह ग्रंथ अनुशासन पर्व का एक सौ उन्नीसवां अध्याय (१४९ अ) है। यह वैष्णव मत का एक प्रमुख ग्रंथ है किन्तु अद्वैत वेदान्त में भी इसको मान्यता तथा महत्त्व मिला है। इस पर शंकराचार्य का भाष्य है।

इस ग्रंथ में युधिष्ठिर ने भीष्म से यह छह प्रश्न किए हैं - (१) एक द्वैत या देव कौन है ? (२) एकमात्र परायण या परमगति क्या है ? (३) किस देवता की स्तुति से मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है ? (४) किस देवता की अर्चना मनुष्य को करनी चाहिए ? (५) सभी धर्म में से कौन सा धर्म श्रेष्ठ है ? (६) क्या जपते हुए मनुष्य जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त होते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में भीष्म ने कहा है - एक देव या देवत जगत्प्रभु पुरुषोत्तम हैं, जिनके एक हजार नाम हैं। भक्ति से पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करना तथा पूजा करना ही सबसे प्रकृष्ट धर्म है। वही पुरुषोत्तम सभी जीवों का परायण या परमगति है। विष्णु सहस्र नाम को जपते-जपते ही मनुष्य जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।

स्पष्ट है कि विष्णु सहस्रनाम एक आगम प्रधान ग्रंथ हैं। इसमें कहा गया है-

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।

आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥

अर्थात् सभी आगमों में आचरण को प्रथम स्थान दिया जाता है। धर्म का उद्भव आचरण से होता है। धर्म का प्रभु अच्युत अर्थात् भगवान् है।







## अनुगीता -

आश्वमेधिक पर्व के १६ वें अध्याय से ९२वें अध्याय तक के अंश को 'अनुगीता' कहते हैं। अर्जुन इसमें श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण ! आपने मुझ युद्ध करते समय जो भगवद्गीता का उपदेश दिया था, उसे मैं भूल गया हूँ, इसे फिर सुनने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा है, अतः कृपया फिर से सुना दीजिए। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि - वे फिर से भगवद्गीता नहीं सुना सकते, किन्तु वे उसी अर्थ को प्रतिपादित करने वाली दूसरी गीता उसे सुनाएंगे। फिर वे अनुगीता अर्जुन को सुनाते हैं। जिसमें मोक्ष धर्म का प्रमुख वर्णन है। श्रीमद्भगवद् गीता का अनुनय करने के कारण ही इस गीता का नाम 'अनुगीता' है।

## भीष्मस्तवराज -

यह शांति पर्व का ४७वाँ अध्याय है। श्रीकृष्ण हरि हैं, नारायण हैं, परम ब्रह्म हैं। वेदों के ब्रह्म का यहां पूर्ण अभेद श्रीकृष्ण से किया गया है। इसके अतिरिक्त यहां भगवान् के दस अवतारों का भी वर्णन है। इसमें सांख्य के तत्त्वों, वैशेषिक मतों के गुणों, योग तथा भक्ति का उल्लेख है। पुनश्च इसमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इन त्रिदेवों या त्रिमूर्ति का भी वर्णन है। स्पष्ट है कि यह ईश्वरवाद की स्थापना करता है।

## सनत्सुजातीय -

यह उद्योग पर्व का ४१ से ४६ अध्याय है। भीष्म ने यहां श्रीकृष्ण की स्तुति की है। इस पर शंकराचार्य का भाष्य है। इसमें सनत्सुजात का सिद्धांत प्रतिपादित है। इस सिद्धांत के अनुसार मृत्यु है ही नहीं। (मृत्युर्नास्ति) मृत्यु केवल प्रमाद है। प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद अमृत है।

सनत्सुजात ने अपने इस सिद्धांत को ब्रह्मविद्या से सत्यापित किया है। अतः इसका कथन करने के पश्चात् उन्होंने ब्रह्मविद्या का बड़ा ही सूक्ष्म और सार्थक विवरण दिया है।







### व्याध-गीता -

यह वन पर्व का २०७ से २१६ अध्याय है। इसमें खटिक जाति में उत्पन्न महात्मा धर्मव्याध ने वेदपाठी कौशिक ब्राह्मण को उपदेश दिया है। उनके उपदेश का सारांश है -

अतन्द्रितः कुरु क्षिप्रं मातापित्रोः पूजनम् ।  
अतः परमहं धर्मनान्यं पश्यामि कंचन ॥

अर्थात् आलस्य रहित होकर माता-पिता की सेवा करो। इससे बड़ा कोई धर्म नहीं है। इस धर्म के पालन से धर्मव्याध को ब्रह्मज्ञान हो गया था।

### नारायणीय -

यह शांति पर्व का ३३४ से ३५१ अध्याय है। इसमें नारायण धर्म, भगवत् धर्म, सनातन धर्म का उपदेश है। संभवतः यही नारायण धर्म का मूल है। इसमें भगवान् के प्रति ऐकान्तिक भक्ति को ही भगवत् प्राप्ति का साधन माना गया है। अतः यह धर्म भक्ति रूप है न कि ज्ञान रूप। इस धर्म का ही उपदेश भगवद्गीता में किया गया है। इस धर्म की दार्शनिक मान्यता है कि भगवान् के चार व्यूह हैं, जिन्हें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कहा गया है। वासुदेव सम्पूर्ण भूतों की आत्मा हैं।

### हारीत गीता -

हारीत मुनि के द्वारा प्रतिपादित सन्यासी के स्वभाव, आचरण और धर्मों का वर्णन :-

पूर्वकाल में हारीत मुनि ने ज्ञान का उपदेश किया था। वह निम्न है - 'मुमुक्षु पुरुष' को चाहिए कि लाभ और हानि में समान भाव रखकर मुनिवृत्ति से रहे। भोगों के उपस्थित होने पर भी उनकी आकांक्षा से रहित होकर अपने घर से निकल कर सन्यास ग्रहण कर ले। न नेत्र से, न मन से और न वाणी से ही वह दूसरों के दोष देखे, सोचे या







कहे। रामस्त प्राणियों में से किसी की भी हिंसा न करे, किसी को भी पीड़ा न दे। सबके प्रति मित्रभाव लेकर वह विचरता रहे। यदि कोई अपने प्रति अमर्यादित बात कहे - निन्दा या कटु वचन सुनाये तो उसके उन वचनों को चुपचाप सह ले। किसी के प्रति अहंकार या घमण्ड प्रकट न करे। पक्षपात न करे। भिक्षावृत्ति को छोड़कर किसी के यहां पहले से निमंत्रित होकर भोजन के लिये न जाये। किसी के प्रति कठोरता न करे। उसे केवल अपनी प्राणयात्रा के निर्वाह मात्र का यत्न करना चाहिये। यदि भिक्षा न मिले तो उससे मन में पीड़ा का अनुभव न करे और अगर मिल जाये तो उससे हर्षित न हो। लौकिक लाभ की इच्छा न करे। सोने और बैठने के लिये सदा एकान्त का ही आदर करे। सूने घर, वृक्ष की जड़, जंगल अथवा पर्वत की गुफा अथवा अन्य किसी गुप्त स्थान में अज्ञातभाव से रहकर आत्मचिन्तन में ही लगा रहे। सर्वदा तृप्त और संतुष्ट रहे। सन्यासी, तपस्वी होकर वाणी, मन् क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थ इनके वेगों को सहता हुआ इन्हें वश में रखे। सन्यासी को महामनस्वी, सब प्रकार से जितेन्द्रिय, सब ओर से असङ्ग, सौम्य, मठ और कुटिया से रहित, तथा एकाग्रचित्त होना चाहिए। वानप्रस्थ और गृहस्थी के साथ उसे कभी संसर्ग नहीं करना चाहिए। यह सन्यासाश्रम ज्ञानियों के लिये तो मोक्ष रूप हैं और अज्ञानियों के लिये श्रम रूप ही हैं।

हारीत मुनि ने इस सम्पूर्ण धर्म को मोदन का विमल बताया है। जो पुरुष सबको अभयदान देकर घर से निकल जाता है। उसे तेजोमय लोक की प्राप्ति होती है तथा वह अनंत परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

पराशर गीता -

धर्मोपदेश -

‘एक समय राजा जनक ने पराशर मुनि से पूछा - मुने ! ऐसी कौन सी वस्तु है जो समस्त प्राणियों के लिये इहलोक और परलोक में कल्याणकारी एवं जानने योग्य है - मुझे बताइये ? तब पराशर जो सम्पूर्ण धर्मों के विधान को जानने वाले थे, इस प्रकार बोले -







- (१) पाराशर गीता का आरंभ - पराशर मुनि का राजा जनक को कल्याण की प्राप्ति के साधन का उपदेश (२९० अ)।
- (२) कर्मफल की अनिवार्यता तथा पुण्यकर्म से लाभ (२९१)
- (३) धर्मोपार्जित धन की श्रेष्ठता, अतिथि सत्कार का महत्व, पांच प्रकार के ऋणों से छूटने की विधि, भगवत्स्तवन की महिमा एवं सदाचार तथा गुरुजनों की सेवा से महान् लाभ (२९२)।
- (४) शूद्र के लिये सेवावृत्ति की प्रधानता, सत्संज्ञ की महिमा और चारों वर्णों के धर्म पालन का महत्व (२९३)।
- (५) ब्राह्मण और शूद्र की जीविका, निन्दनीय कर्मों के परित्याग की आज्ञा, मनुष्यों में आसुर भाव की उत्पत्ति और भगवान् शिव के द्वारा उसका निवारण तथा स्वधर्म के अनुसार कर्त्तव्य पालन के आदेश (२९४)।
- (६) विषसासक्त मनुष्य का पतन, तपोबल की श्रेष्ठता तथा दृढ़तापूर्वक स्वधर्म पालन का आदेश (२९५)।
- (७) वर्ण विशेष की उत्पत्ति का रहस्य, तपोबल से उत्कृष्ट वर्ण की प्राप्ति, विभिन्न वर्णों के विशेष और सामान्य धर्म, सत्कर्म की श्रेष्ठता और हिंसा रहित धर्म का वर्णन (२९६)।
- (८) नाना प्रकार के धर्म और कर्त्तव्यों का उपदेश (२९७)।
- (९) पराशर गीता का उपसंहार - राजा जनक के विविध प्रश्नों का उत्तर (२९८)।

बोध्य गीता -

बोध्य मुनि का उपदेश -

किसी समय नहुषनन्दन ययाति ने, वैराग्य से शान्त भाव को प्राप्त हुए, शास्त्र के उत्कृष्ट ज्ञान से परितृप्त परम शांत बोध्य ऋषि से पूछा - महाप्राज्ञ ! आप







मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मुझे शांति मिले। कौन सी ऐसी बुद्धि है, जिसका आश्रय लेकर आप शांति और संतोष के साथ विचरते हैं? महात्मा बोध्य ने कहा - "राजन् ! मैं किसी को उपदेश नहीं देता, बल्कि स्वयं दूसरों से प्राप्त हुए उपदेश के अनुसार आचरण करता हूँ। मैं अपने को मिले हुए उपदेश का लक्षण बता रहा हूँ। जिससे उपदेश मिला है उन गुरुओं का संकेत मात्र कर रहा हूँ। तुम स्वयं उस पर विचार करो। पिङ्गला, कुरुरपक्षी, सर्प, वन में सारङ्ग का अन्वेषण, बाण बनाने वाला और कुमारी कन्या - ये छः मेरे गुरु हैं।"

बोध्य को अपने गुरुओं से जो उपदेश प्राप्त हुआ था वह इस प्रकार है - आशा बड़ी प्रबल है। वही सबको दुःख देती है। निराशा ही परम सुख है। आशा को निराशा में परिवर्तित करके पिङ्गला वेंश्या सुख से सो गयी। पिङ्गला आशा के त्याग का उपदेश देने के कारण गुरु हुई।

चोंच में मांस का टुकड़ा लिये उड़ते हुए कुरुर (क्रौन्च) पक्षी को देखकर दूसरे पक्षी जो मांस नहीं लिये थे, उसे मारने लगे। तब उसने उस मांस के टुकड़े को त्याग दिया। अतः पक्षियों ने उसका पीछा करना छोड़ दिया। इस प्रकार आमिष के त्याग से क्रौन्च पक्षी सुखी हो गया। भोगों के परित्याग का उपदेश देने के कारण कुरुर पक्षी गुरु हुआ।

घर बनाने का खटपट करना दुःख का ही कारण है। उससे कभी सुख नहीं मिलता। देखो ! सांप दूसरों के बनाये हुए घर (बिल) में प्रवेश करके सुख से रहता है। अतः अनिकेत रहने - घर-द्वार के चक्कर में न पड़ने का उपदेश देने के कारण सर्प गुरु हुआ।

जिस प्रकार पपीहा पक्षी किसी भी प्राणी से द्वेष न करके याचनावृत्ति से निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार मुनिजन भिक्षावृत्ति का आश्रय लेकर सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। अद्रोह का उपदेश देने के कारण पपीहा गुरु हुआ।







एक बार एक बाण बनाने वाले को देखा गया, वह अपने काम में ऐसा दत्तचित्त था, कि उसके पास से निकली हुई राजा की सवारी का भी उसे पता नहीं चला। उसके द्वारा एकाग्रचित्तता का उपदेश प्राप्त होने के कारण वह गुरु हुआ।

बहुत मनुष्य एक साथ रहें तो उनमें प्रतिदिन कलह होता है और दो रहें तो भी उसमें बातचीत तो अवश्य होती है। अतः कुमारी कन्या के हाथ में धारण की हुई शंख की एक-एक चूड़ी के समान अकेला ही विचरण करना श्रेष्ठ है।

**भङ्गि गीता -**

**भङ्गि मुनि का उपदेश-**

भङ्गि नामक मुनि ने भोगों से विरक्त होकर जो उद्गार प्रकट किया था वही 'भङ्गि गीता' है।

भङ्गि धन के लिये अनेक चेष्टाएं करते थे पर हर बार उनका प्रयत्न व्यर्थ हो जाता था। अंत में जब बहुत थोड़ा धन शेष रह गया, तो उसे देकर उन्होंने दो नये बछड़े खरीदे। एक दिन दोनों बछड़ों को परस्पर जोड़कर वे हल चलाने की शिक्षा देने जा रहे थे। जब वे दोनों बछड़े गांव से बाहर निकले तो एक बैठे हुए ऊँट को बीच में करके सहसा दौड़ा पड़े जब वे उसकी गर्दन के पास पहुंचे तो ऊँट के लिए यह असह्य हो उठा। वह रोष में भरकर खड़ा हो गया और उन दोनों बछड़ों को ऊपर लटकाये बड़े जोर से भागने लगा। बलपूर्वक अपहरण करने वाले उस ऊँट द्वारा उन दोनों बछड़ों को अपहृत होते और मरते देख भङ्गि ने इस प्रकार कहा - मनुष्य कैसा भी चतुर क्यों न हो, जो उसके भाग्य में नहीं है, उस धन को वह श्रद्धापूर्वक भलीभाँति प्रयत्न करके भी नहीं पा सकता। पहले जो मैंने प्रयत्न किया था उसमें अनेक प्रकार के अनर्थ खड़े हो गये थे। उन अनर्थों से युक्त होने पर भी मैं धनोपार्जन की ही चेष्टा में लगा रहा, परन्तु देखो, आज बछड़ों की संगति से मुझ पर कैसा दैवी उपद्रव आ गया? यह ऊँट मेरे बछड़ों को उठा कर विषम मार्ग से ही जा रहा है।







काकतालीय न्याय से (अर्थात् देव संयोग से) इन्हें गर्दन पर उठाकर बुरे मार्ग से ही दौड़ रहा है। यह केवल देव की ही लीला है। यदि कोई पुरुषार्थ कभी सफल होता दिखायी देता है तो वहां भी खोज करने पर देव का ही सहयोग सिद्ध होता है।

अतः सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को धन आदि की ओर से वैराग्य का ही आश्रय लेना चाहिये। धनोपार्जन की चेष्टा से जो विरक्त हो जाता है वह सुख की नींद सोता है। इसके पश्चात् शुकदेव मुनि का वैराग्य के प्रति उपदेश है तथा स्वयं मङ्गिक का भी उपदेश है - सम्पूर्ण अध्याय में (शांति पर्व १७७ से १४)।

हंसगीता -

प्रजापति ब्रह्माजी ने सुवर्णमय हंस का रूप धारण कर धर्म का उपदेश दिया था। वही हंसगीता में संकलित है। उस समय उन्होंने साध्यगणों के बीच कहा था कि-

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ।  
एतान्वेगान् यो विषहेदुदीर्णस्तं मन्थेऽहं तं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥

जो वाणी का वेग, मन और क्रोध का वेग, तृष्णा का वेग तथा पेट और जननेन्द्रिय का वेग - इन सब प्रचण्ड वेगों को सह लेता है - उसी को मैं ब्रह्मवेत्ता और मुनि मानता हूँ।

अन्य -

शान्दिल्य मुनि द्वारा प्रतिपादित दर्शन -

जड़ स्थूल शरीर, अमूर्त-सूक्ष्म शरीर तथा वज्र तुल्य सुदृढ़ कारण - ये जो तीन प्रकार के शरीर हैं इन्हें आत्मा को प्राप्त करने की इच्छा वाले योगशास्त्र परायण होकर लांघ जाते हैं। सन्यास आश्रम के कर्म भिन्न-भिन्न प्रकार के बताये गये हैं। इनमें समाहित विषय में जो कुछ (व्यास ने) बताया है उसी को शान्दिल्य मुनि ने छान्दोग्य उपनिषद् शान्दिल्य ब्राह्मण में कहा है।







इन प्रकरण ग्रंथों के अतिरिक्त और भी अनेक दार्शनिक प्रकरण महाभारत में संकलित हैं। शांति पर्व स्वयं अपने आप में दर्शन, धर्म, नीतिशास्त्र और राजशास्त्र का एक महान् पर्व है। इसमें धौम्य नीति, विदुर नीति, कणिक नीति, नारद राजनीति, आदि प्रमुख और प्रसिद्ध हैं।

याज्ञवल्क्य -

याज्ञवल्क्य का राजा जनक को उपदेश -

एक बार देवरात के महायशस्वी पुत्र राजा जनक ने प्रश्न का रहस्य समझने वालों में श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य जी से पूछा - ब्रह्मर्षे ! इन्द्रियां कितनी हैं ? प्रकृति के कितने भेद माने गये हैं ? अव्यक्त क्या है ? और काल की गणना कैसे की जाती है ? सृष्टि और प्रलय क्या है ? परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप क्या है ? ये सब बताने की कृपा करें। मैं इन बातों को नहीं जानता। आप ज्ञान के भंडार हैं। इसीलिये आप ही से इन सब विषयों को सुनने की इच्छा हो रही है। जिससे सारा सन्देह दूर हो जाये। तब याज्ञवल्क्य ने कहा - भूपाल ! तुम जो कुछ पूछते हो, वह योग और विशेषतः सांख्य का परम रहस्य ज्ञान तुम्हें बताता है। (इसके बाद जो उन्होंने उपदेश दिया उसकी अनुक्रमणिका ही यहां है)।

- (१) सांख्यमत के अनुसार चौबीस प्रकार के तत्त्वों और नौ प्रकार के सर्ग का निरूपण।
- (२) अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, मन और विषयों की कालसंख्या का एवं सृष्टि का वर्णन तथा इन्द्रियों में मन की प्रधानता का वर्णन।
- (३) संहार का क्रम।
- (४) अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत का वर्णन तथा सात्विक, राजस और तामस भावों के लक्षण।







- (५) सात्विक, राजस और तामस प्रकृति के मनुष्यों की गति का वर्णन तथा राजा जनक के प्रश्न।
- (६) प्रकृति - पुरुष का विवेक और उसका फल।
- (७) योग का वर्णन और उसके साधन से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति।
- (८) विभिन्न अंशों से प्राणों के उत्क्रमण का फल तथा मृत्यु सूचक लक्षणों का वर्णन और मृत्यु को जीतने का उपाय।
- (९) याज्ञवल्क्य द्वारा अपने को सूर्य से वेद ज्ञान की प्राप्ति का प्रसंग सुनाना, विश्वावसु को जीवात्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान का उपदेश देकर उसका फल बताना और जनक को उपदेश देकर विदा करना।

ब्रह्म को भी ऋषि कहा गया है -

चतुरश्रापरान् पुत्रान् पूर्वं महानृषिः ।  
ते वै पितॄणां पितरः श्रूयन्ते राजसत्तम ॥

महान् ऋषि ब्रह्म ने पूर्वकाल में भौतिक देह की उत्पत्ति से पहले चार अन्य पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनके नाम हैं - बुद्धि, अहंकार, मन और चित्त। वे चारों पुत्र पितरों के भी पितर अर्थात् पंचमहाभूतों के श्रीजनक सुने जाते हैं।

वसिष्ठ मुनि द्वारा प्रतिपादित दर्शन -

वसिष्ठ द्वारा राजा जनक को योग एवं सांख्य दर्शन का उपदेश -

एक समय, ऋषियों में सूर्य के समान तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ अपने आश्रम पर थे। वहां राजा जनक ने पहुंच कर उनसे ज्ञान के विषय में पूछा। मित्रावरुण के पुत्र वसिष्ठ जी अध्यात्म विषयक प्रवचन में अत्यंत कुशल थे। और उन्हें अध्यात्म ज्ञान का निश्चय हो गया था। राजा जनक ने उनसे पूछा - भगवन् ! जहाँ से मनीषी







पुनः इस संसार में लौटकर नहीं आते। उस सनातन पर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन मैं सुनना चाहता हूँ। उस निर्विकार कल्याणमय शिवरूप अधिष्ठान का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। - तब वसिष्ठ जी ने कहा - जिस प्रकार जगत् का क्षय (परिवर्तन) होता है उसको, तथा जो किसी भी काल में क्षरित नहीं होता उस अक्षर को भी बता रहा हूँ सुनो।

- (१) क्षर और अक्षर तत्त्व का निरूपण और इसके ज्ञान से मुक्ति।
- (२) प्रकृति संसर्ग के कारण जीव का अपने को नाना प्रकार के कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता मानना एवं नाना योनियों में बार-बार जन्म ग्रहण करना।
- (३) प्रकृति के संसर्ग दोष के जीवन का पतन।
- (४) क्षर-अक्षर एवं प्रकृति-पुरुष के विषय में राजा जनक की शंका और उसका वसिष्ठ जी द्वारा उत्तर।
- (५) योग एवं सांख्य के स्वरूप का वर्णन तथा आत्मज्ञान से मुक्ति।
- (६) विद्या-अविद्या, क्षर और अक्षर तथा प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का एवं विवेकी उद्गार का वर्णन।
- (७) क्षर-अक्षर और परमात्म तत्त्व का वर्णन, जीव के नानात्व और एकत्व का दृष्टांत, उपदेश के अधिकारी और अनधिकारी तथा इस ज्ञान की परम्परा को बताते हुए वसिष्ठ-कराल जनक संवाद का उपसंहार।

‘पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व, काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न - संसार के पाँच हेतु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - ये पाँच विषय, सत्त्व, रज और तम, - ये तीन गुण तथा पाँच महाभूतों सहित अविद्या, अहंकार और कर्म - ये आठ तत्त्वों के समुदाय सब मिलाकर अड़तालीस तत्त्व होते हैं। इन सबसे मुक्त हुए तीक्ष्ण व्रतधारी मुनि पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection



ब्रह्म की प्राप्ति किसी क्रियात्मक यत्न से साध्य नहीं है। इसके लिये देवताओं सहित सम्पूर्ण जगत् को उन पुरुषों की उपासना करनी चाहिये जो जीवन्मुक्त हैं। अतएव महर्षियों के समुदाय को नमस्कार है।

पञ्च शिख मुनि द्वारा प्रतिपादित दर्शन -

पञ्च शिख द्वारा मोक्ष तत्त्व का विवेचन -

जनक के प्रश्नों के उत्तर में पञ्चशिख मुनि ने मृत्यु पश्चात् मोक्ष का विवेचन किया है। उन्होंने कहा - "मृत्यु के पश्चात् आत्मा का न तो नाश होता है और न वह आत्मा किसी विशेष आकार में ही परिणत होता है। यह जो प्रत्यक्ष दिखने वाला संघात है, यह भी शरीर, इन्द्रिय और मन का समूह मात्र है। यद्यपि ये सब पृथक्-पृथक् हैं तो भी एक दूसरे का आश्रय लेकर कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। प्राणियों के शरीर में उपादान के रूप में आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये पांच धातु हैं। ये स्वभाव से ही एकत्र होते हैं और विलग हो जाते हैं। शरीर में ज्ञान (बुद्धि) उष्मा (जठरानल) तथा वायु (प्राण) - इनका समुदाय समस्त कर्मों का संग्राहक है, क्योंकि इन्हीं से इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय, स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान, विकार और धातु प्रकट हुए हैं। श्रवण, त्वचा, जिह्वा, नेत्र और नासिका - ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं। शब्द आदि गुण चित्त से संयुक्त होकर इन इन्द्रियों से विषम होते हैं। विज्ञानयुक्त चेतना (विषयों की उपादेयता, हेयता और उपेक्षधरणीयता के कारण) निश्चय ही तीन प्रकार की होती है। उसे अदुःखा-असुखा और सुखदुखा कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा मूर्ति द्रव्य, ये छः गुण जीव की मृत्युके पहले तक इन्द्रियजन्य ज्ञान के साधक होते हैं। इनके साथ इन्द्रियों का संयोग होने पर ये भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान होता है। श्रोत्र आदि इन्द्रियों में उनके विषयों का विसर्जन (त्याग) करने से सम्पूर्ण तत्त्वों के यथार्थ निश्चय रूप मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति होती है। इस तत्त्व-निश्चय को अत्यंत निर्मल, उत्तमज्ञान और अविनाशी महान् ब्रह्मपद कहते हैं।







इसके बाद सांख्यशास्त्र का वर्णन है जिसे सम्यग्बध (सम्यग्रूपेण दुःखों का नाश करने वाला) भी कहा जाता है। उसमें त्याग की प्रधानता है।

जो लोग मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हों, उन रागको चाहिये कि सम्पूर्ण कर्मों में अहंता, ममता, आसक्ति और कामना का त्याग करें। जो इनका त्याग किये बिना ही विनीत (शम, दम आदि साधनों में तत्पर) होने का झूठा दावा करते हैं, उन्हें अविद्या आदि दुखदायी क्लेश प्राप्त होते हैं। शास्त्र में द्रव्यों का त्याग करने के लिये यज्ञादि, कर्म भोग का त्याग करने के लिये व्रत, दैहिक सुखों का त्याग के लिये तप और सब कुछ त्याग (अहंता, ममता, आसक्ति, कामना आदि) देने के लिये योग के अनुष्ठान की आज्ञा दी गई है। यही त्याग की चरम सीमा है। (इसके बाद कर्मप्रियों का वर्णन है जो कि विशेष नहीं है।)

हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्त की शांति, ये सब भाव बिना किसी कारण के स्वतः हों, या भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सत्सङ्ग आदि के कारणवश हों, सात्विक गुण माने गये हैं। असंतोष, संताप, शोक, लोभ और असहनशीलता - में किसी कारण से हो या अकारण - रजोगुण के चिन्ह हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य - ये किसी तरह भी क्यों न हो, तमोगुण के ही विविध रूप हैं। शब्द का आधार श्रोत हैं और श्रोत्रेन्द्रिय का भी आधार आकाश। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस, गंध के आश्रय तथा अपने आधारभूत, महाभूतों के स्वरूप हैं। इन सबका कारण मन है, इसलिये ये सबके सब मनः स्वरूप हैं।

तमोगुण के सुषुप्तिकाल में अपने कारण में विलीन हो जाने से इन्द्रियां विषयों का ग्रहण नहीं कर सकती, किन्तु उनका नाश नहीं होता है। उनमें जो अपने विषय को एक साथ ग्रहण करने की शक्ति है वह लौकिक व्यवहार में ही दिखायी देती है, सुषुप्ति काल में नहीं।







अध्यात्म तत्त्व का चिन्तन करने वाले विद्वान् इस शरीर और इन्द्रियों के संघात को क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) कहते हैं। जैसे नद और नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नाम और रूप को त्याग देती हैं और जैसे बड़े-बड़े नद छोटी नदियों को अपने में विलीन कर लेते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है - यही मोक्ष है, किन्तु संतानों के प्रति आसक्ति के कारण और भिन्न-भिन्न देवताओं की प्रसन्नता के लिये अज्ञानियों द्वारा जो सकाम कर्म किये जाते हैं - ये सब मनुष्यों के लिये नाना प्रकार के सुदृढ़ बंधन हैं। जब वह इन बंधनों से छूटकर सुख-दुःख की चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सूक्ष्म शरीर के अभिमान का त्याग करके जीव सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त कर लेता है। सुख-दुःख दोनों का त्याग कर मुक्त पुरुष सूक्ष्म शरीर का त्याग कर उत्तम गति को प्राप्त होता है।

### भारद्वाज और भृगु -

भारद्वाज मुनि के प्रश्न करने पर भृगु ने उपदेश दिया था। कैलास पर्वत के शिखर पर अपने तेज से देदीप्यमान् होते हुए महातेजस्वी महर्षि भृगु को बैठा देख भारद्वाज मुनि ने पूछा - 'जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई?' धर्म अधर्म का विधान किस प्रकार किया गया? जीवित प्राणियों का जीवात्मा कैसा है? जो मर गये वो कहां चले जाते हैं? - यह सब मुझे बताने की कृपा करें। भारद्वाज मुनि के द्वारा इस प्रकार अपना संशय रखने पर ब्रह्माजी के समान तेजस्वी ब्रह्मर्षि भगवान् भृगु ने उन्हें सब कुछ बताया।

- (१) जगत् की उत्पत्ति का वर्णन और विभिन्न तत्त्वों का वर्णन।
- (२) आकाश से अन्य चार स्थूल भूतों की उत्पत्ति का वर्णन।
- (३) पञ्च महाभूतों के विस्तार का वर्णन।
- (४) शरीर के भीतर जठराग्नि (जठरानल) तथा प्राण अपान आदि वायुओं की स्थिति आदि का वर्णन।







- (५) जीव की सत्ता पर नाना प्रकार की युक्तियों से शंका उपस्थित करना।
- (६) जीव की सत्यता और नित्यता को युक्तियों से सिद्ध करना।
- (७) वर्ण विभागपूर्वक मनुष्यों की और समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन।
- (८) चारों वर्णों के अलग-अलग कर्मों और सदाचार का वर्णन तथा वैराग्य से परब्रह्म की प्राप्ति।
- (९) सत्य की महिमा असत्य के दोष तथा लोक और परलोक के सुख-दुःख का विवेचन।
- (१०) वानप्रस्थ और सन्यास धर्मों का वर्णन तथा हिमालय के उत्तर-पार्श्व भाग में स्थित उत्कृष्ट लोकों की विलक्षणता एवं महत्ता का प्रतिपादन।

### महर्षि व्यास द्वारा प्रतिपादित नीति -

‘जो धर्म का विनाश चाहते हुए, अधर्म के प्रवर्तक हो रहे हैं, उन दुरात्माओं का वध करना ही उचित है। जैसे देवताओं ने उद्दण्ड दैत्यों का विनाश कर डाला था। यदि एक पुरुष को मार देने से कुटुम्ब के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर हो जाये, और एक कुटुम्ब का नाश कर देने से सारे राष्ट्र में सुख और शांति छा जाये तो वैसा करना सदाचार या धर्म का नाशक नहीं है। जो पुरुष हृदय में पाप की भावना रखकर किसी पापकर्म की ओर प्रवृत्त होता है, उसे करते हुए भी उसी भावना से भावित रहता है, तथा पापकर्म करने के बाद भी लज्जित नहीं होता, उसमें वह सारा पाप पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाता है। ऐसा शास्त्र का कथन है। उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है तथा प्रायश्चित्त से भी उसके पाप कर्म का नाश नहीं होता।’

व्यास जी का युधिष्ठिर को समझाते हुए काल की प्रबलता बताकर देवासुर संग्राम के उदाहरण से धर्म द्रोहियों के दमन का औचित्य सिद्ध करना और प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता बताना।



अथ चत्वारिंशत्तमः अध्यायः । (१)

अथ पञ्चमः अध्यायः । (२)

अथ षष्ठः अध्यायः । (३)

अथ सप्तमः अध्यायः । (४)

अथ अष्टमः अध्यायः ।

अथ नवमः अध्यायः । (५)

अथ दशमः अध्यायः ।

अथ एकादशः अध्यायः । (६)

अथ द्वादशः अध्यायः ।

- श्रीमद्भगवद्गीता -

अथ त्रयोविंशत्तमः अध्यायः । (७)

अथ चत्वारिंशत्तमः अध्यायः । (८)

अथ पञ्चमः अध्यायः । (९)

अथ षष्ठः अध्यायः । (१०)

अथ सप्तमः अध्यायः । (११)

अथ अष्टमः अध्यायः । (१२)

अथ नवमः अध्यायः । (१३)

अथ दशमः अध्यायः । (१४)

अथ एकादशः अध्यायः । (१५)

अथ द्वादशः अध्यायः । (१६)

अथ त्रयोविंशत्तमः अध्यायः । (१७)

अथ चत्वारिंशत्तमः अध्यायः । (१८)



‘जिन कर्मों के करने और न करने से कर्त्ता प्रायश्चित्त का भागी होता है और नहीं होता उनका विवेचन’।

‘पाप कर्मों के प्रायश्चित्त का वर्णन’

‘स्वायम्भुव मनु के कथनानुसार धर्म का स्वरूप, पाप से शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त, अभक्ष्य वस्तुओं का वर्णन तथा दान के अधिकारी एवं अनधिकारी का विवेचन’।

अपने बन्धु जनों के शोक से विह्वल युधिष्ठिर द्वारा शरीर त्याग देने की बात करने पर मुनिवर व्यास जी ने उन्हें रोक कर कहा - नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम बहुत शोक न करो। मैं पहले की कही हुई बात फिर दोहरा रहा हूँ। यह सब प्रारब्ध का ही खेल है। जैसे पानी में बुलबुले होते हैं और मिट जाते हैं, उसी प्रकार संसार में उत्पन्न हुए प्राणियों के आपस में जो संयोग होते हैं, उनका अंत निश्चय ही वियोग होता है। सम्पूर्ण संग्रहों का अंत विनाश है, सारी उन्नतियों का अंत पतन है, संयोगों का अंत वियोग है और जीवन का अंत मरण है।

सर्वे क्षयान्ताः निचयाः पतनान्ताः समुच्छयाः ।  
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं ही जीवितम् ॥

‘आलस्य सुख रूप प्रतीत होता है पर उसका अंत दुःख है तथा कार्य दक्षता दुःख रूप प्रतीत होती है पर उससे सुख का उदय होता है। इसके सिवा ऐश्वर्य, लक्ष्मी, लज्जा, धृति और कीर्ति दक्ष पुरुष में ही निवास करती है, आलसी में नहीं।

सुखदुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखे सुखोदयम् ।  
भूतिः श्रीहीर्धृतिः कीर्तिदक्षे वसति नालसे ॥

न तो सुहृद् सुख देने में समर्थ है, और न शत्रु दुःख देने में। इसी प्रकार प्रजा न तो धन दे सकती है और न धन सुख दे सकता है।

इसीलिये नरेश्वर ! विधाता ने जिन कर्मों के लिये तुम्हारी सृष्टि की है, तुम उन्हीं का अनुष्ठान करो। उन्हीं से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। तुम कर्मों के (फल के) स्वामी या नियन्ता नहीं हो।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



## व्यास एवं शुकदेव -

व्यास ने शुकदेव के प्रश्न करने पर उसके उत्तर के रूप में उपदेश दिया है। ये समस्त अध्याय महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रतिपादित धर्म एवं दर्शन को संजोये हुए हैं-

- (१) शुकदेव जी का प्रश्न और व्यास जी का उनके प्रश्न के उत्तर देते हुए काल का स्वरूप बतलाना।
- (२) व्यास जी का शुकदेव को सृष्टि के उत्पत्ति क्रम तथा युगधर्मों का उपदेश।
- (३) ब्रह्म प्रलय एवं महाप्रलय का वर्णन।
- (४) ब्राह्मणों का कर्त्तव्य एवं उन्हें दान देने की महिमा का वर्णन।
- (५) ब्राह्मण के कर्त्तव्य का प्रतिपादन करते हुए काल रूप नद को पार करने का उपाय बतलाना।
- (६) ध्यान के सहायक योग, उनके फल और सात प्रकार की धारणाओं का वर्णन तथा सांख्य एवं योग के अनुसार ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति।
- (७) सृष्टि के समस्त कार्यों में बुद्धि की प्रधानता और प्राणियों की श्रेष्ठता के तारतम्य का वर्णन।
- (८) नाना प्रकार के भूतों की समीक्षा पूर्वक कर्मतत्त्व का विवेचन, युगधर्म का वर्णन तथा काल का महत्त्व।
- (९) ज्ञान का साधन और उसकी महिमा।
- (१०) योग से परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन।
- (११) कर्म और ज्ञान का अंतर तथा ब्रह्म प्राप्ति के उपाय का वर्णन।
- (१२) आश्रम धर्म की प्रस्तावना करते हुए ब्रह्मचर्य आश्रम का वर्णन।
- (१३) ब्राह्मणों के उपलक्षण से गृहस्थ धर्म का वर्णन।
- (१४) वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के धर्म और महिमा का वर्णन।







- (१५) सन्यासी के आचरण और ज्ञानवान् सन्यासी की प्रशंसा।
- (१६) परमात्मा की श्रेष्ठता, उसके दर्शन का उपाय तथा इस ज्ञानमय उपदेश के पात्र का निर्णय।
- (१७) महाभूतादि तत्त्वों का वर्णन।
- (१८) बुद्धि की श्रेष्ठता और प्रकृति पुरुष विवेक।
- (१९) ज्ञान के साधन तथा ज्ञानी के लक्षण और महिमा।
- (२०) परमात्मा की प्राप्ति का साधन, संसार नदी का वर्णन और ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति।
- (२१) ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के लक्षण और परब्रह्म की प्राप्ति का उपाय।
- (२२) शरीर में पाँच महाभूतों के कार्य और गुणों की पहचान।
- (२३) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से भिन्न जीवात्मा और परमात्मा का योग के द्वारा साक्षात्कार करने का प्रकार।
- (२४) कामरूपी अद्भुत वृक्ष तथा उसे काटकर मुक्ति प्राप्त करने का उपाय और शरीर रूपी नगर का वर्णन।
- (२५) पञ्चमहाभूतों के तथा मन और बुद्धि के गुणों का विस्तृत वर्णन।

इस प्रकार इन सभी अध्यायों में व्यास द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त हैं।

सप्तर्षियों के नाम -

‘मरी चिरङ्गिराश्चात्रिः, पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।  
वसिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिताहिते ॥

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, क्रतु और वसिष्ठ ये सातों महर्षि ब्रह्माजी द्वारा ही अपने मन से रचे हुए हैं।







व्यास -

द्वैपपायन व्यास जी के मुख से वर्णित जो पञ्चमहाभूतों का निरूपण है उसे भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी भगवान् वेदव्यास ने धूमाच्छादित अग्नि के सदृश विराजमान अपने पुत्र शुकदेव के समक्ष पहले किस प्रकार इस विषय का प्रतिपादन किया था मैं उसे पुनः तुमसे कहूँगा।

व्यास जी का अनेक युक्तियों से युधिष्ठिर को समझाना -

राजा युधिष्ठिर को शोक में डूबा हुआ देखकर व्यासजी ने उन्हें पुनः अनेक युक्तियों, अनेक कथाओं का उदाहरण देकर तथा अनेकानेक बुद्धिमत्तापूर्ण तर्कों द्वारा युधिष्ठिर को समझाया। उन्होंने कहा ' राजाओं का धर्म प्रजापालन है। धर्म का अनुसरण करने वालों के लिये धर्म ही प्रमाण है। व्यासजी ने कहा - भरतनन्दन ! जो लोग मारे गये हैं उसका दायित्व किस पर है? इस प्रश्न को लेकर चार विकल्प हो सकते हैं (१) सब का प्रेरक ईश्वर है ? (२) वध करने वाला पुरुष कर्त्ता है? (३) मारे जाने वाले पुरुष का हठ (बिना विचारे किसी काम को कर डालने का दुराग्रही स्वभाव) कर्त्ता है? अथवा (४) उसके प्रारब्ध कर्म का फल ही इस रूप में प्राप्त होने के कारण प्रारब्ध ही कर्त्ता है ? इस सब का हल तथा निष्कर्ष भी व्यास जी ही बताते हैं -

- (१) यदि प्रेरक ईश्वर को ही कर्त्ता माना जाये तो यही कहना पड़ेगा कि ईश्वर से प्रेरित होकर ही मनुष्य शुभ या अशुभ कर्म करता है, अतः उसका फल भी ईश्वर को ही मिलना चाहिये।
- (२) यदि कहो कि पुण्य या पाप कर्मों का कर्त्ता उसे करने वाला पुरुष ही है, दूसरा कोई नहीं (ईश्वर नहीं) तो ऐसा मानने पर भी तुमने यह शुभ कर्म ही किया है, क्योंकि तुम्हारे द्वारा पापियों और उनके समर्थकों का ही वध हुआ है, इसके सिवा उनके प्रारब्ध का फल ही उन्हें इस रूप में मिला है। तुम तो निमित्त मात्र ही हो।







- (३) यदि ऐसा मानते हो कि युद्ध करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का मरना निश्चित ही है अर्थात् वह स्वभाववश हठात् मारा गया है, तब तो स्वभाववादी के अनुसार भूत या भविष्य काल में किसी अशुभ कर्म से न तो तुम्हारा सम्पर्क था और न होगा।
- (४) यदि कहीं, लोगों को पुण्य फल (सुख) और पाप फल (दुःख) प्राप्त होते हैं, उनकी संगति लगानी चाहिये, क्योंकि बिना कारण वे तो कोई कार्य ही नहीं कर सकता, अतः प्रारब्ध ही कर्त्ता है तो उस कारण भूत प्रारब्ध को धर्माधर्म रूप ही मानना होगा, धर्माधर्म का निर्णय शास्त्र से होता है और शास्त्र के अनुसार जगत् में उद्वण्ड मनुष्य को दण्ड देना राजाओं के लिये सर्वथा युक्तिसंगत है, अतः किसी भी दृष्टि से तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

अपना धर्म दोषयुक्त हो तो भी उसमें स्थित रहने वाले तुम जैसे धर्मात्मा नरेश के लिये अपने शरीर का परित्याग करना शोभा की बात नहीं है। यदि जीवित रहोगे तो उन कर्मों का प्रायश्चित्त कर सकेंगे और यदि प्रायश्चित्त के बिना ही मर गये तो परलोक में तुम्हें संतप्त होना पड़ेगा।

### व्यासजी द्वारा उपदेश -

अधीर युधिष्ठिर को व्यास जी ने भिन्न प्रकार से उपदेशित किया - "राजन्! न तो कोई कर्म करने से नष्ट हुई वस्तु मिल सकती है, न चिन्ता से ही। कोई ऐसा दाता भी नहीं है जो मनुष्य को उसकी विनष्ट वस्तु दे दे। बारी-बारी से विधाता के विधानानुसार मनुष्य समय पर सब कुछ पा लेता है। बुद्धि अथवा शास्त्राध्ययन से भी मनुष्य असमय में किसी विशेष वस्तु को नहीं पा सकता और समय आने पर कभी-कभी मूर्ख भी अभीष्ट पदार्थों को पा लेता है अतः काल ही कार्य सिद्धि में सामान्य कारण है। अवनति के समय शिल्पकलायें, मंत्र और औषध भी कोई फल नहीं देते हैं। वे ही जब उन्नति के समय उपयोग में लाये जाते हैं, तब काल की प्रेरणा से सफल होते हैं और बुद्धि में सहायक बनते हैं।"







संसार में जो अत्यंत मूर्ख है अथवा जो बुद्धि से परे पहुँच गये हैं वे ही सुखी होते हैं, बीच वाले लोग कष्ट ही उठाते हैं। लोक के भूत-भविष्य तथा सुख एवं दुःख को जानने वाले धर्मवेत्ता महाज्ञानी सेनजित्, ने ऐसा ही कहा है। जिस किसी भी दुःख से जो दुःखी है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता, क्योंकि दुःखों का अंत नहीं है। एक दुःख से दूसरा दुःख होता ही रहता है।

सुख दुःख उत्पत्ति विनाश, लाभ हानि और जीवन मरण ये समय-समय पर सबको क्रम से प्राप्त होते हैं। इसलिये धीर पुरुष इनके लिये हर्ष और शोक न करे।

### वृहस्पति जी का इन्द्र को नीति उपदेश -

देवगुरु विद्वान् वृहस्पति जी ने इन्द्र को नीति का उपदेश करते हुए यह कहा था कि - शत्रुसूदन। जो आपका अहित करते हैं, उन शत्रुओं को बिना युद्ध के अथवा युद्ध करके सभी उपायों से मार डालना चाहिये।

### सनतसुजात ऋषि द्वारा प्रतिपादित दर्शन -

कुमार सनत् सुजात नाम से विख्यात परम प्राचीन सनातन ऋषि हुये हैं। एक समय धृतराष्ट्र के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये विदुरजी ने उनका स्मरण किया। तदनंतर उन ऋषि से भी यह जानकर कि विदुर मेरा स्मरण कर रहे हैं, स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन दिया। विदुर ने शास्त्रोक्त विधि से उनका स्वागत किया और कहा - भगवन् ! धृतराष्ट्र के हृदय में कुछ संशय है, जिसका समाधान मेरे द्वारा किया जाना उचित नहीं है, आप ही इस विषय का निरूपण करने योग्य हैं। जिसे सुनकर ये नरेशा सब दुखों से पार हो जायें।

उद्योग पर्व ४१३ अध्याय संपूर्ण तथा ४२वें अध्याय में धृतराष्ट्र के प्रश्नों के उत्तर में ऋषि द्वारा प्रतिपादित दर्शन है।







## ऋषि द्वारा प्रतिपादित मत -

- (१) मृत्यु है ही नहीं, प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है। प्रमाद के कारण ही असुर गण मृत्यु से पराजित हुए और अप्रमाद से ही देवगण ब्रह्मस्वरूप हुए। विषयों का चिन्तन ही लोगों को मार डालता है। इसके बाद वह काम और क्रोध को साथ लेकर जल्दी ही प्रहार करता है। जिसके चित्त की वृत्तियाँ विषय भोगों से मोहित नहीं हुई हैं, उस ज्ञानी पुरुष का इस लोक में, तिनकों के बनाये हुए व्याघ्र के समान मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है? इसीलिये विषय भोगों के मूल कारण रूप अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से दूसरे किसी भी सांसारिक पदार्थ को कुछ भी न गिनकर उसका चिन्तन त्याग देना चाहिए।
- (२) जो निष्काम पुरुष है वह ज्ञान मार्ग के द्वारा अन्य सभी मार्गों का बाध करके परमात्म स्वरूप होता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है।
- (३) जीव की महत्ता नष्ट नहीं होती, क्योंकि माया के संबंध से ही देहादि पुनः उत्पन्न होते रहते हैं। जो नित्य स्वरूप भगवान् हैं, वे ही परब्रह्म माया के सहयोग से इस विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं। वह माया उन्हीं परब्रह्म की शक्ति है। इस प्रकार के अर्थ के प्रतिपादन में वेद भी प्रमाण है।
- (४) धर्म और पाप दोनों के पृथक-पृथक फल होते हैं और उन दोनों का ही उपभोग करना पड़ता है। किन्तु परमात्मा में स्थित होने पर विद्वान् पुरुष परमात्मा के ज्ञान द्वारा अपने पूर्वकृत पाप और पुण्य दोनों का नाश कर देता है। निष्काम भाव से धर्माचरण करने वालों को समयानुसार सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है।

(विस्तृत विवरण अध्याय ४२, उद्योग पर्व में है एवं उद्योग पर्व ४२वाँ

अध्याय संपूर्ण)







तप -

ऋषि द्वारा तप के विषय में प्रतिपादित मत -

इस लोक में जो तपस्या सकाम भाव से की जाती है, उसका फल परलोक में भोगा जाता है। परन्तु जो ब्रह्मोपासक इस लोक में निष्कामभाव से गुरुतर तपस्या करते हैं, वे इसी लोक में तत्त्वज्ञान रूप फल प्राप्त करते हैं और मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही तपस्या बद्ध और समृद्ध के भेद से दो प्रकार की हो जाती है।

यह तप सब प्रकार से निर्दोष होता है। इसमें भोगवासना रूप दोष नहीं रहता। इसलिये यह विशुद्ध कहा जाता है और इसीलिये यह विशुद्ध तप सकाम तप की अपेक्षा फल की दृष्टि से भी बहुत बड़ा होता है। यह (निष्काम) तपस्या ही सारे जगत् का मूल है, वेदवेत्ता विद्वान् इस तप से ही परम अमृत मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

तप के दोष (बाधा) -

तपस्या के क्रोध आदि दोष हैं। (काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिकीर्षा, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा) आत्मा का अनुसंधान अनात्म पदार्थों में तो किसी तरह करे ही नहीं, वेद के वाक्यों में भी न ढूँढकर केवल तप के द्वारा ही उस प्रभु का साक्षात्कार करे। वागादि इन्द्रियों की सब प्रकार की चेष्टा से रहित होकर परमात्मा की उपासना करे। मन में भी कोई चेष्टा न करे।

‘मौन रहने अथवा जंगल में निवास करने मात्र से कोई मुनि नहीं होता। जो अपनी आत्मा के स्वरूप को जानता है; वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता -

ब्रह्मचर्य के पालन से ही देवताओं ने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली मनीषी ऋषियों ने ब्रह्मलोक को प्राप्त किया। इसी के प्रभाव से गंधर्वों और अप्सराओं को दिव्यरूप प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सूर्यदेव समस्त







लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ होते हैं। रसभेद रूप चिन्तामणी से याचना करने वालों को जैसे उनके अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य भी मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाला है ऐसा समझकर ये ऋषि देवता आदि ब्रह्मचर्य के पालन से उस भाव को प्राप्त हुए।

जो इस ब्रह्मचर्य का आश्रय लेता है, वह ब्रह्मचारी यम-नियम आदि तप का आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीर को भी पवित्र बना देता है तथा इससे विद्वान् पुरुष निश्चय ही अबोध बालक की भांति राग द्वेष से शून्य हो जाता है और अंत में मृत्यु को भी जीत लेता है। (उद्योग पर्व ४४ अध्याय २० से २४ तक)

शोक के विषय में विस्तार पूर्वक -

वन पर्व २ अध्याय, २१वें श्लोक से ३९वें श्लोक तक। इन्हें नीति उपदेश में रख सकते हैं।

महर्षि शौनक द्वारा युधिष्ठिर को नीति, धर्म विषयक उपदेश-

पाण्डवों को वनवास हो जाने के पश्चात् अध्यात्म विषय में रत अर्थात् परमात्मा के चिन्तन में तत्पर महात्मा शौनक ने जो कि कर्मयोग और सांख्य योग दोनों ही निष्ठाओं के विचार में प्रवीण थे - राजा से इस प्रकार कहा - 'शोक के सहस्रों और भय के सैकड़ों स्थान हैं, वे मूढ़ मनुष्य पर प्रतिदिन अपना प्रभाव डालते हैं परन्तु ज्ञानी मनुष्य पर वे प्रभाव नहीं डाल सकते। अनेक दोषों से युक्त, ज्ञान विरुद्ध एवं कल्याण नाशक कर्मों में आप जैसे ज्ञानवान् पुरुष नहीं फँसते।

शौनक जी ने युधिष्ठिर से कहा कि - "तपस्या द्वारा वह योग शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये, जिससे ब्राह्मणों का भरण-पोषण हो सके। सिद्ध पुरुष जो वस्तु चाहते हैं, उसे अपने तप के प्रभाव से प्राप्त कर लेते हैं। अतः आप तपस्या का आश्रय लेकर अपने मनोरथ की पूर्ति कीजिए।" -







धर्म -

धर्म का महत्व -

अभयात्मा महातपस्वी मार्कण्डेय जी ने धर्म पालन से ही चिर जीविता प्राप्त की थी।

व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश, शुक तथा अन्य सब महर्षि धर्म के पालन से ही शुद्ध हृदय वाले हुए हैं। ये सभी दिव्य योगशक्ति से सम्पन्न, श्राप और अनुग्रह में समर्थ तथा देवताओं से भी अधिक गौरवशाली हैं। ये अमरों के समान विख्यात और वेदगम्य विषय को भी प्रत्यक्ष देखने वाले महर्षि धर्म को ही सबसे प्रथम आचरण में लाने योग्य बताते हैं।

जिसकी दृष्टि में ऋषियों के वचन और शिष्ट पुरुषों के आचार प्रमाणभूत नहीं हैं, उसके लिये न यह लोक है और न परलोक, यह तत्त्ववेत्ता पुरुषों का निश्चय है।

सर्वज्ञ और सर्वदृष्टा महर्षियों द्वारा प्रतिपादित तथा शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित पुरातन धर्म पर शंका नहीं करना चाहिये। यदि तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्वाध्याय, दान और सरलता आदि धर्म निष्फल होते तो पहले जो श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर पुरुष हुए हैं, ये धर्म का आचरण नहीं करते। यदि धार्मिक क्रियाओं का कुछ फल नहीं होता, वे सब निरीह ठग विद्या होतीं तो ऋषि देवता, गन्धर्व, असुर तथा राक्षस प्रभावशाली होते हुए भी किसलिये आदरपूर्वक धर्म का आचरण करते।

यहां धर्म का फल देने वाले ईश्वर अवश्य है - यह बात जानकर ही उन ऋषि आदि ने धर्म का आचरण किया है। धर्म ही सनातन श्रेय है। धर्म निष्फल नहीं होता। अधर्म भी अपना फल दिये बिना नहीं रहता। विद्या और तपस्या के भी फल देखे जाते हैं। युधिष्ठिर द्रौपदी को समझाते हुए कहते हैं - कृष्ण ! तुम अपने जन्म के प्रसिद्ध वृत्तान्त को ही स्मरण करो, तुम्हारा प्रतापी भाई प्रद्युम्न जिस प्रकार उत्पन्न







हुआ, यह भी तो तुम जानती हो। द्रौपदी और धृष्टुम्न याज और उपयाज ऋषि के तप के प्रभाव से यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुए थे। वेदोक्त पुण्य देने वाले सत्कर्मों और अनिष्टकारी पापकर्मों का फलोदय तथा उत्पत्ति और प्रलय - ये सब देव विषय है। (देवता ही उन्हें जानते हैं) इन देव विषयों में साधारण लोग मोहित हो जाते हैं। जो इन सबके तात्त्विक रूप को नहीं जानता है वह सहस्रों कुरुपों में भी कल्याण का भागी नहीं हो सकता। इन सब विषयों को देवता लोग गुप्त रखते हैं।

देवताओं की माया भी गूढ़ है। जो आशा का परित्याग करके सात्त्विक हितकर एवं पवित्र आहार करने वाले हैं, तपस्या से जिनके सारे पाप दग्ध हो गये हैं तथा जो मानसिक प्रसन्नता से युक्त हैं - वे द्विज (महर्षि) ही देव विषयों को देख पाते हैं। धर्म का फल तुरन्त न दिखायी दे तो इसके कारण धर्म एवं देवताओं पर आशंका नहीं करनी चाहिए। दोषदृष्टि न रखते हुए यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करते रहना चाहिये। कर्मों का फल यहां अवश्य प्राप्त होता है - यह धर्मशास्त्र का विधान है। यह बात ब्रह्माजी ने अपने पुत्रों से कही है।

### श्रीकृष्ण के संबंध में विविध ऋषियों के मत -

श्रीकृष्ण जब वन में पाण्डवों से मिलने जाते हैं तब द्रौपदी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए बताती है कि विभिन्न ऋषिगण आपके विषय में क्या कहते हैं? द्रौपदी कहती है - 'प्रभो ! ऋषि लोग सृष्टि के प्रारंभ काल में एक मात्र आपको ही संपूर्ण जगत् का स्रष्टा एवं प्रजापति कहते हैं। महर्षि असित देवल का यही मत है। दुर्धर्ष मधुसूदन ! आप ही विष्णु हैं, आप ही यज्ञ हैं, आप ही यजमान हैं और आप ही यजन करने योग्य श्रीहरि हैं, जैसा कि जमदग्निनन्दन परशुराम का कथन है। पुरुषोत्तम ! कश्यप जी का कथन है कि महर्षि गण आपको क्षमा और सत्य का स्वरूप कहते हैं। सत्य से प्रकट हुए यज्ञ भी आप ही हैं। भूत भावन भूतेश्वर ! आप साध्य देवताओं तथा कल्याणकारी रुद्रों के अधीश्वर हैं। नारद जी ने आपके विषय में यही विचार प्रकट किया है।'







महर्षि कश्यप -

कश्यप द्वारा क्षमा का महत्व बतलाना -

जब द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके क्रोध को उभारने के लिये संताप पूर्ण वचन कहती है तब युधिष्ठिर उन्हें क्षमा के विषय में बताते हैं और कहते हैं कि कश्यप ऋषि ने भी क्षमा के विषय में इस गाथा का गान किया है - क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है। जो इस प्रकार जानता है वह सब कुछ क्षमा करने योग्य हो जाता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा सोच है। क्षमा ने ही संपूर्ण लग्न धारण कर रखा है। क्षमाशील मनुष्य यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता और तपस्वी पुरुषों से भी ऊँचे लोक प्राप्त करते हैं। सकाम भाव, त्याग और दान आदि कर्म करने वाले मनुष्यों के लोक दूसरे हैं। परन्तु क्षमावानों के लोक ब्रह्मलोक के अंतर्गत है, जो अत्यन्त पूर्ण हैं।

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है। क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है। क्षमा यज्ञ है और क्षमा (मनोनिग्रह) है। इस प्रकार महर्षि कश्यप ने क्षमा के विषय में अपना मत प्रतिपादित किया है।

महर्षि मार्कण्डेय -

धर्मोपदेश -

'राज्य से दूर होकर वन में निवास करने वाले पाण्डवों के उस आश्रम पर प्रचण्ड तेजस्वी पुरातन महर्षि मार्कण्डेय जी अतिथि के रूप में वहां आये। उनकी कांति प्रज्वलित अग्नि के समान उद्भाषित हो रही थी। देवताओं, ऋषियों तथा मनुष्यों द्वारा पूजित महामुनि मार्कण्डेय को आया देखकर युधिष्ठिर ने उनकी यथावत् पूजा की। अमित तेजस्वी तथा सर्वज्ञ महात्मा कृष्ण (द्रौपदी), युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुल सहदेव को देखकर मन ही मन श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके तपस्वियों के बीच में मुस्कुराने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने उदासीन होकर पूछा -







मुने ! ये सब तपस्वी तो मेरी अवस्था देखकर संकुचित हो रहे हैं परन्तु क्या कारण है कि आप इन महात्माओं के सामने मेरी ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक यों मुस्कुराने से दिखायी देते हैं ?'

मार्कण्डेय जी बोले - तात ! न तो मैं हर्षित होता हूँ और न ही मुस्कुराता हूँ। हर्ष जनित अभिमान कभी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। आज तुम्हारी विपत्ति देखकर मुझे अप्रत्याशित दशरथनंदन श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण हो आया। (और आगे वे रामचन्द्र जी की वनवास की बात बताते हैं) श्रीरामचन्द्र के वनवास के समय ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर मैंने ही उनका दर्शन किया था। श्रीरामचन्द्र जी के कार्यों तथा उनका उदाहरण देकर मार्कण्डेय जी युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं। कि -

श्रीराम इन्द्र के समान शांतिशाली थे, जिनका अनुभव महान् था तथा जो युद्ध में अजेय थे। उन्होंने भी संपूर्ण भोगों का परित्याग करके वन में निवास किया था।

नाभाग और भगीरथ आदि राजाओं ने भी समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतकर सत्य के द्वारा उत्तम लोगों पर विजय पायी थी।

काशी और कुरुष देश के राजा अलर्क को सत्य प्रतिज्ञा संत बताया गया है। उन्होंने राज्य और धन का त्याग कर धर्म का आश्रय लिया।

विधाता ने पुरातन वेद वाक्यों द्वारा जो अग्निहोत्र आदि कर्मों का विधान किया है, उसका समादर करने के कारण ही साधु सप्तऋषिगण देवलोक में प्रकाशित हो रहे हैं।

समस्त प्राणी विधाता के विधान के अनुसार ही अपनी योनि के अनुरूप सदा कार्य करते हैं। अतः अपने को बल का स्वामी समझ कर अधर्म का आचरण न करें। अपने सत्य, धर्म यथायोग्य बर्ताव तथा लज्जा आदि सद्गुणों के कारण समस्त प्राणियों से तुम ऊँचे उठे हुए हो। तुम्हारा यश और तेज अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा है। तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इस कष्ट साध्य वनवास की अवधि पूर्ण करके







कौरवों के हाथ से अपनी तेजस्विनी-राजलक्ष्मी को प्राप्त करोगे। तपस्वी महात्माओं के बीच में अपने सुहृदों के साथ बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिर से पूर्वोक्त बातें कह कर महर्षि मार्कण्डेय धौम्य एवं समस्त पाण्डवों से विदा लेकर उत्तर दिशा की ओर (यात्रा पर) चले गये।

**विद्वान् एवं अमर ऋषि -**

एक समय श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर बातचीत कर रहे थे, उसी समय अनेक सहस्र वर्षों की अवस्था वाले तपोवृद्ध धर्मात्मा महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि आये। वे रूप और उदारता आदि गुणों से सम्पन्न तथा अजर अमर थे। वेसे बड़े बूढ़े होने पर भी वे ऐसे दिखायी दे रहे थे मानों पच्चीस वर्ष की अवस्था के तरुण हो। उनके वहां पधारने पर भगवान् श्रीकृष्ण तथा समस्त ब्राह्मणों ने उनका पूजन किया। पूजित होने पर वे अत्यन्त विश्वास करने योग्य मुनिश्रेष्ठ आसन पर विराजमान हो गये। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा - मार्कण्डेय जी। आपके उपदेश सुनने की इच्छा से यहां पाण्डवों के साथ-साथ बहुत से ब्राह्मण भी यहां पधारे हुए हैं। आप प्राचीन काल के नरेशों, नारियों तथा महर्षियों की पुरातन पुण्य कथा सुनाइये और हम लोगों से सनातन सदाचार का वर्णन कीजिए। वे सब लोग वहां बैठे ही थे कि विशुद्ध अतःकरण वाले देवर्षि नारद भी पाण्डवों से मिलने के लिये वहां आये। उस समय उपयुक्त अवसर के ज्ञाता सनातन भगवान् श्रीकृष्ण ने मार्कण्डेय जी से कहा - महर्षे ! आप पाण्डवों से जो कुछ कहना चाहते हैं, वह कहिये। उनके ऐसा कहने पर महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने अपने उपदेश का प्रतिपादन किया।

मार्कण्डेय मुनि से पाण्डवों ने कहा - मुने ! हम श्रेष्ठ ब्राह्मणों का महात्म्य सुनना चाहते हैं, आप उनका वर्णन कीजिये।

उनके ऐसा कहने पर महातपस्वी, महान तेजस्वी और संपूर्ण शास्त्रों में निपुण विद्वान् भगवान् मार्कण्डेय ने यह उपदेश दिया तथा प्राचीन कथा का श्रवण कराया।







नारद -

नीति शिक्षा (शिष्टाचार) पर नारद मुनि के विचार -

श्रेष्ठ मनुष्य वही है जिसमें सदाचार देखा जाये, सदाचार ही उसका लक्षण है। जो मनुष्य सड़क पर, गौओं के बीच में और अनाज में मलमूत्र का त्याग नहीं करते वे श्रेष्ठ समझे जाते हैं। प्रतिदिन आवश्यक शौच का सम्पादन करके आचमन करे फिर नदी में नहाये और अपने अधिकार के अनुसार संध्योपासना के अनन्तर देवता आदि का तर्पण करे। इसे विद्वान् पुरुष मानव मात्र का धर्म बताते हैं। नित्य प्रति सूर्योपस्थान करे। सूर्योदय के समय कभी न सोये। सायंकाल और प्रातःकाल दोनों हाथ दोनों पैर और मुंह इन पाँचों अङ्गों को धोकर पूर्वाभिमुख होकर भोजन करे। भोजन के समय मौन रहे। परोसे हुए अन्न की निंदा न करे। वह स्वादिष्ट हो या न हो प्रेम से भोजन कर ले। भोजन के बाद हाथ धोकर उठे। रात को भीगे पैर न सोये। देवर्षि नारद इसी को सदाचार का लक्षण कहते हैं।

नारद जी द्वारा भविष्यवाणी -

एक समय राजा धृतराष्ट्र और बुद्धिमान विदुर बातचीत कर रहे थे, तब उसी समय सभा में महर्षियों से घिरे हुए देवर्षि - नारद कौरवों के सामने आकर खड़े हो गये और बोले -

आज से चौदहवें वर्ष दुर्योधन के अपराध से और भीम और अर्जुन के पराक्रम के द्वारा कौरव कुल का नाश हो जाएगा। - ऐसा कहकर विशाल ब्रह्म तेज धारण करने वाले देवर्षि प्रवर नारद आकाश में जाकर सहसा अंतर्ध्यान हो गये।

संदेशवाहक का कार्य -

शाल्व और श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के युद्ध के समय जब प्रद्युम्न शाल्व को मारने के लिये उद्यत हो गये तब इन्द्र और कुबेर सहित संपूर्ण देवताओं ने देवर्षि नारद तथा वायु को भेजा। उन दोनों ने प्रद्युम्न के पास आकर देवताओं का यह संदेश







सुनाया - वीरवर ! यह राजा शाल्व युद्ध में कदापि तुम्हारे द्वारा वध्य नहीं है। तुम अपने इस बाण को फिर से लौटा लो। क्योंकि शाल्व तुम्हारे द्वारा अवध्य है। तुम्हारे इस बाण का प्रयोग होने पर कोई भी पुरुष युद्ध में बिना मरे नहीं रह सकता। महाबाहो ! विधाता ने युद्ध में इसकी मृत्यु निश्चित की है। उनका यह संकल्प मिथ्या नहीं होना चाहिए। - यह सुनकर प्रद्युम्न बड़े प्रसन्न हुए और नारद जी का आदर करते हुए एवं उनकी बात मानते हुए बाण वापस लौटा लिया।

इस प्रकार नारद जी ने अनेक बार की तरह इस सन्दर्भ में भी संदेश वाहक का कार्य किया।

दमयन्ती नल से प्रेम करती थी। तत्पश्चात् उसके पिता ने दमयन्ती के स्वयंवर का आयोजन किया। इसी समय देवर्षिप्रवर महान् व्रतधारी नारद इन्द्रलोक में इन्द्र के पास गये। वहां उनका पूजन हुआ। उन्होंने (नारद ने) इन्द्र को दमयन्ती स्वयंवर की सूचना दी एवं उसके रूप गुण का वर्णन किया। तब देवताओं ने भी वहां जाने का निश्चय किया।

### सभा पर्व -

एक दिन सभा में महात्मा पाण्डव अन्यान्य महापुरुषों तथा गंधर्वों आदि के साथ बैठे हुए थे। उसी समय वेद और उपनिषदों के ज्ञाता, ऋषि देवताओं द्वारा पूजित (सभापर्व ५ अध्याय २-१२ श्लोक में, नारदजी के विभिन्न गुणों का वर्णन तथा, उन्हीं से संबंधित उनके अनेक संबोधन का वर्णन है।

महातेजस्वी देवर्षि नारद लोक लोकान्तरों में घूमते फिरते पारिजात, बुद्धिमान, पर्वत तथा सौम्य, सुमुख आदि अन्य अनेक ऋषियों के साथ सभा में स्थित पाण्डवों से प्रेमपूर्वक मिलने के लिये मन के समान वेग से वहां आये और उन ब्रह्मर्षि ने जयसूचक आशीर्वादों द्वारा युधिष्ठिर का अत्यन्त सम्मान किया। युधिष्ठिर ने देवर्षि नारद को आया देखकर भाइयों सहित सहसा उठकर - प्रेम विनय और नम्रतापूर्वक







उन्हें नमस्कार किया और उन्हें योग्य आसन देकर गौ, मधुपर्क तथा अर्घ्य आदि उपचार अर्पण करते हुए रत्नों से उनका विधिपूर्वक स्वागत किया तथा उनकी सब इच्छाओं की पूर्ति करके उन्हें संतुष्ट किया।

देवर्षि नारद का आगमन तथा युधिष्ठिर द्वारा तीर्थयात्रा के फल के विषय में पूछने पर भीष्म पुलत्स्य संवाद की प्रस्तावना -

एक समय महात्मा देवर्षि नारद, उदासमना युधिष्ठिर के समीप गये। देवर्षि अपने ब्रह्मतेज से उदीप्त हो घी की आहुति से प्रज्वलित हुई अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें आया देखकर धर्मराज ने उठकर उन महात्मा का यथा योग्य सत्कार किया। उनकी वह पूजा ग्रहण करके देवर्षि भगवान् नारद ने युधिष्ठिर को उचित सांत्वना दी। तत्पश्चात् वे युधिष्ठिर से बोले - राजन् ! बोलो तुम्हें किस वस्तु की आवश्यकता है ? मैं तुम्हें क्या दूँ ? तब नारद जी को प्रणाम करके युधिष्ठिर ने कहा - उत्तम व्रत का पालन करने वाले महर्षि संपूर्ण विश्व के द्वारा पूजित आप महात्मा के संतुष्ट होने पर मैं ऐसा समझता हूँ कि आपकी कृपा से मेरा सब कार्य पूरा हो गया।

पुलत्स्य ऋषि द्वारा प्रतिपादित तीर्थ यात्रा का फल -

देवताओं और गंधर्वों से सेवित गंगाद्वार (हरिद्वार) में भागीरथी के पवित्र शुभ एवं देवर्षि सेवित तट प्रदेश में श्रेष्ठ धर्मात्मा भीष्म जी पितृ संबंधी (तर्पण आदि) व्रत का आश्रय लेकर महर्षियों के साथ रहते थे। कुछ समय के बाद जब महायशस्वी भीष्मजी जप में लगे हुए थे, अपने पास ही उन्होंने अद्भुत तेजस्वी मुनि श्रेष्ठ पुलत्स्य जी को देखा। वे उग्र तपस्वी महर्षि तेज से देदीप्यमान हो रहे थे। भीष्म ने पुलत्स्य का शास्त्र विधि से पूजन किया। उन्होंने पवित्र एवं एकाग्रचिन्त होकर पुलत्स्य के द्वारा दिये हुए अर्घ्य को सिर पर धारण करके उन महर्षि पुलत्स्य को अपने नाम का परिचय दिया।

पुलत्स्य जी बड़े प्रसन्न हुए और कहा - "उत्तम व्रत का पालन करने वाले महाभान मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। बोलो मैं तुम्हारे किस मनोरथ की पूर्ति करूँ ? तुम जो मांगोगे वही दूँगा। - तब भीष्म ने कहा - श्रेष्ठ महर्षि। यदि मैं आपकी कृपा का पात्र हूँ तो







मैं आपके सामने अपना संशय रखता हूँ, आप उसका निवारण करें। मेरे मन में तीर्थों से होने वाले धर्म के विषय में कुछ संशय हो गया है उसी का समाधान मैं सुनना चाहता हूँ। आप बताने की कृपा करें। देव तुल्य ब्रह्मर्षे ! जो तीर्थों के उद्देय से सारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उसे क्या फल मिलता है? यह करके मुझे बताइये। पुलत्स्य ने कहा - तीर्थ यात्रा ऋषि के लिये बहुत बड़ा आश्रय है। मैं इसके विषय में तुम्हें बताऊँगा। तीर्थों के सेवन से जो फल होता है, उसे एकाग्र होकर सुनो।''

विभिन्न तीर्थों की यात्रा फल के संबंध में पुलत्स्य ऋषि द्वारा भीष्म को बताये गये संपूर्ण बातों को नारद जी ने युधिष्ठिर को बताया और कहा - "महाराज! ऋषि प्रवर वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भारद्वाज, वसिष्ठ, उद्दालक, शौनक तथा पुत्र सहित तपोधन प्रवर व्यास, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा और महातपस्वी जाबाली ये महर्षि को तपस्या के धनी हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन सबके साथ उक्त तीर्थों में जाओ। ये अमित तेजस्वी लोमश तुम्हारे पास आने वाले हैं - उन्हें साथ लेकर यात्रा करो। इस यात्रा में मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा। तुम धर्म से जीती हुई पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करके स्वधर्म पालन के द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन के समान विख्यात होओगे। देवर्षि नारद इस प्रकार राजा युधिष्ठिर को आश्वासन देकर अंतर्ध्यान हो गये।

**बक मुनि -**

दल्भ के पुत्र महातपस्वी बक ऋषि चिरजीवी तथा देवराज इन्द्र के प्रिय मित्र थे। महान् तपस्या के फलस्वरूप वे दीर्घायु हुए थे।

**महर्षि बक द्वारा उपदेशित जीवन दर्शन -**

देवराज इन्द्र महर्षि बक से मिलने उनके आश्रम में गये। बक ने इन्द्र का यथावत सत्कार किया। इन्द्र ने बक से पूछा - मुनिवर ! आपकी अवस्था एक लाख वर्ष की हो गई है। ब्रह्मन् आप अपने अनुभव के आधार पर यह बात बताइये कि







चिरजीवी मनुष्यों को क्या दुःख होता है? बक ने कहा

अप्रिय मनुष्यों के साथ रहना पड़ता है तथा प्रियजनों का वियोग होता है। प्रियजनों का वियोग सहते हुए दुष्ट मनुष्यों के संग रहना - यही दुःख होता है। जीवन निर्वाह के लिये दूसरों के अधीन रहकर तिरस्कार का दुःख भोगना पड़ता है। निर्धन मनुष्यों को दूसरों से तिरस्कृत होना पड़ता है। चिरजीवी मनुष्य अकुलीनों के कुल की उन्नति, कुलीनों से कुल का संहार तथा संयोग और वियोग देखते हैं। लोक में विपरीत अवस्था बहुत दिखाई देती है। यहाँ मानवयोनि में दुःख और क्लेश की अधिकता ही दृष्टिगोचर ही होती है।

तब इन्द्र ने पूछा - महाभाग ! देवता तथा ऋषियों के समुदाय आपकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। ब्रह्मन् ! आप मुझे यह बताइये कि - चिरजीवी मनुष्यों को क्या सुख मिलता है?

महर्षि बक ने कहा - जो थोड़े में ही संतुष्ट रहकर कुमित्रों की शरण में नहीं जाता वह सुखी है। जो अपने पराक्रम से उपार्जन करके घर में केवल शाक बना कर खाता है पर दूसरे किसी का सहारा नहीं लेता उसे ही सुख है। दूसरों के सामने दीनता न दिखाकर अपने ही घर में फल और शाक खाकर रहना अच्छा है। परन्तु दूसरे के घर में सदा तिरस्कार सहकर मीठे पकवान खाना भी अच्छा नहीं है। अतः दूसरों के आश्रित रहकर जीवन निर्वाह के संबंध में साधु पुरुषों का सदा ही विरोध रहा है। जो सदा श्रेष्ठ द्विज, अतिथियों, भूत प्राणियों तथा पितरों को अर्पण करके शेष अन्न स्वयं खाता है उससे बढ़कर महान सुख और क्या हो सकता है। इस अवशेष अन्न से बढ़कर अत्यन्त मधुर और पवित्र कोई दूसरा भोजन नहीं है।

इस प्रकार बक इन्द्र के माध्यम से ऋषि ने जीवन-दर्शन बताया।

--००--



... १५ ... १६ ... १७ ... १८ ... १९ ... २० ... २१ ... २२ ... २३ ... २४ ... २५ ... २६ ... २७ ... २८ ... २९ ... ३० ... ३१ ... ३२ ... ३३ ... ३४ ... ३५ ... ३६ ... ३७ ... ३८ ... ३९ ... ४० ... ४१ ... ४२ ... ४३ ... ४४ ... ४५ ... ४६ ... ४७ ... ४८ ... ४९ ... ५० ... ५१ ... ५२ ... ५३ ... ५४ ... ५५ ... ५६ ... ५७ ... ५८ ... ५९ ... ६० ... ६१ ... ६२ ... ६३ ... ६४ ... ६५ ... ६६ ... ६७ ... ६८ ... ६९ ... ७० ... ७१ ... ७२ ... ७३ ... ७४ ... ७५ ... ७६ ... ७७ ... ७८ ... ७९ ... ८० ... ८१ ... ८२ ... ८३ ... ८४ ... ८५ ... ८६ ... ८७ ... ८८ ... ८९ ... ९० ... ९१ ... ९२ ... ९३ ... ९४ ... ९५ ... ९६ ... ९७ ... ९८ ... ९९ ... १०० ...

... १०१ ... १०२ ... १०३ ... १०४ ... १०५ ... १०६ ... १०७ ... १०८ ... १०९ ... ११० ... १११ ... ११२ ... ११३ ... ११४ ... ११५ ... ११६ ... ११७ ... ११८ ... ११९ ... १२० ... १२१ ... १२२ ... १२३ ... १२४ ... १२५ ... १२६ ... १२७ ... १२८ ... १२९ ... १३० ... १३१ ... १३२ ... १३३ ... १३४ ... १३५ ... १३६ ... १३७ ... १३८ ... १३९ ... १४० ... १४१ ... १४२ ... १४३ ... १४४ ... १४५ ... १४६ ... १४७ ... १४८ ... १४९ ... १५० ...

... १५१ ... १५२ ... १५३ ... १५४ ... १५५ ... १५६ ... १५७ ... १५८ ... १५९ ... १६० ... १६१ ... १६२ ... १६३ ... १६४ ... १६५ ... १६६ ... १६७ ... १६८ ... १६९ ... १७० ... १७१ ... १७२ ... १७३ ... १७४ ... १७५ ... १७६ ... १७७ ... १७८ ... १७९ ... १८० ... १८१ ... १८२ ... १८३ ... १८४ ... १८५ ... १८६ ... १८७ ... १८८ ... १८९ ... १९० ... १९१ ... १९२ ... १९३ ... १९४ ... १९५ ... १९६ ... १९७ ... १९८ ... १९९ ... २०० ...

... २०१ ... २०२ ... २०३ ... २०४ ... २०५ ... २०६ ... २०७ ... २०८ ... २०९ ... २१० ... २११ ... २१२ ... २१३ ... २१४ ... २१५ ... २१६ ... २१७ ... २१८ ... २१९ ... २२० ... २२१ ... २२२ ... २२३ ... २२४ ... २२५ ... २२६ ... २२७ ... २२८ ... २२९ ... २३० ... २३१ ... २३२ ... २३३ ... २३४ ... २३५ ... २३६ ... २३७ ... २३८ ... २३९ ... २४० ... २४१ ... २४२ ... २४३ ... २४४ ... २४५ ... २४६ ... २४७ ... २४८ ... २४९ ... २५० ...



## उपसंहार

# उपसंहार



संज्ञा



## उपसंहार

प्राचीन भारत के इतिहास की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य में 'रामायण', 'महाभारत' और 'पुराणों' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक इतिहास-ग्रंथों की भाँति घटनावलियों और तिथियों का क्रमबद्ध इतिहास भले ही उपस्थित न करते हों, फिर भी भारत के सांस्कृतिक इतिहास के अनुशीलन के लिए वे बहुमूल्य हैं। हमारे प्राचीन राष्ट्रीय जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और व्यावहारिक सभी अंगों पर उनसे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

रामायण की रचना का मुख्य प्रयोजन क्रौञ्चवध से मर्माहत महर्षि की आन्तरिक व्यथा को अभिव्यक्त करना है। रामायण की रचना का आदेश स्वयं ब्रह्मा जी ने दिया था, जब वे श्लोकमयी वाणी में निषाद को दिए गए शाप से चिन्तित थे। उनकी यह श्लोकमयी वाणी उस समय मुखरित हुई थी जब तमसा के तट पर भ्रमण करते हुए निषाद के बाण से बिद्ध तथा रक्त से रंजित क्रौञ्च को एवं उसके दुःख में करुण क्रंदन करती हुई क्रौञ्ची को देखकर उनके अंदर करुणा का उदय हुआ था।

भगवान् विष्णु के अवतारभूत श्रीराम का तथा ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य आदि के अवतारभूत जाम्बवान्, हनुमान, सुग्रीव आदि का चरित्र वर्णन होने से दिव्यकाव्य, श्लोकबद्ध सर्वप्रथम रचना होने से तथा परवर्ती रामचरित आधारभूत होने से आदिकाव्य, राज्याभिषेक से उत्तरवर्ती श्रीराम चरित्र का वर्णन होने से सप्तम उत्तरकाण्ड को उत्तरकाव्य, दृष्ट घटनाओं का वर्णन होने से आख्यान और ब्रह्मा, नारद द्वारा प्राचीनकाल में ही रामचरित का वर्णन किये जाने तथा उसी आधार पर रचित होने के कारण इसे पुरातन इतिहास भी कहते हैं। सत्कवियों द्वारा की गई चार प्रकार की रचनाओं में से शास्त्रकाव्य की कोटि में रखा गया है क्योंकि ये चारों वर्गों को उपदेश देने वाला काव्य है।







सृष्टि के आदि में ही ऋषियों की उत्पत्ति मानी गई है। जो गतिशील होकर परमार्थ की ओर अग्रसर होता है। वही सार्थक अर्थ में ऋषि है। ऋषि का अर्थ है - मिर्मल बुद्धि सम्पन्न जीवनोपयोगी मंत्ररहस्या दृष्टा पुरुष। ये ऋषि ही महान् भारतीय संस्कृति के प्रणेता हैं। ये न्यायी एवं सदाचारी ऋषि सर्वत्र व्याप्त होकर अपने ज्ञान का प्रकाश फैलाया करते थे। कई हजारों वर्षों बाद भी भारतीय संस्कृति का अक्षुण्ण रहना ही इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन ऋषियों द्वारा स्थापित एवं विकसित संस्कृति कितनी सुदृढ़ है।

गतिशील ऋषियों ने सुदीर्घकालीन तपस्या द्वारा स्व मतों की स्थापना की है। उनके द्वारा संस्थापित संस्कृति मूलतः ज्ञानमयी है। ज्ञान का अर्थ ही ब्रह्म और ब्रह्म का अर्थ ही परमेश्वर है - जो 'ब्रह्म, जानाति ब्राह्मणः' अर्थात् जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है।

प्राचीन ऋषि केवल अपने आश्रमों में गाँव से दूर रहते हुए तप अथवा ध्यान और यज्ञ में ही काल यापन करते थे और इस भांति जीवन से संबंधित अन्य सांसारिक कार्यों से मुक्ति पा लेते थे - ऐसी बात नहीं थी। वे परिवार में रहकर कृषि करते, शत्रुओं से लोहा लेते, अध्ययन-अध्यापन करते हुए, लोक संरक्षणार्थ अन्य कार्य भी उसी भांति करते थे। इसके साथ उनकी दैनिक उपासना भी चलती रहती थी। सूर्य, अग्नि, उषा, वरुण, इन्द्र, अरुण, पृथ्वी आदि की विविध शक्तियों को देवी या देवता स्वीकार कर, उसमें तल्लीन होकर, विभिन्न ग्रंथों की रचना करते हुये अनेक धर्म और नीति संबंधी सिद्धांतों का प्रतिपादन भी करते थे। आज का वैज्ञानिक भी प्राचीन ऋषियों की तरह ही हैं वह आज अपनी प्रयोगशाला में बैठकर विभिन्न मिश्रणों के प्रयोग में तल्लीन होकर देश एवं लोक कल्याणार्थ अनेक आविष्कार करता है। आज के वैज्ञानिक, अभियंता, चिकित्सक एवं साहित्यकार को ऋषि कहा जा सकता है क्योंकि वह भी अपने कार्य में तल्लीन हो, तप करता हुआ समाधि की अवस्था में अनेक आश्चर्यजनक अनुसंधान एवं गवेषणा द्वारा लोक संरक्षणार्थ कर्तव्य-कर्म कर रहा है।

महाभारत काल तथा उससे पहले भी, स्त्रियाँ भी ऋषि अथवा तपस्विनी हुआ करती थीं। वे भी अपने पति महर्षियों के साथ-साथ ही तपस्या करती थीं एवं तप शक्ति अर्जित करती थीं। वेदकाल में विश्वावारा, अपाला, लोपामुद्रा, रोमसा आदि स्त्रियाँ उदाहरण







स्वरूप हैं तथा रामायण-महाभारतकालीन, अरुन्धती, लोपामुद्रा, श्रुतावती, अहल्या, रुक्म्या, सुलभा तथा अम्बा आदि स्त्रियाँ प्रमाण स्वरूप हैं। ये स्त्रियाँ केवल गृहलक्ष्मी ही नहीं वरन् जहां एक ओर ये समाज की व्यवस्था की पूर्ण परिचायिका थीं वहीं मुद्गलानी जैसे वीरांगना तथा अपाला, लोपामुद्रा एवं अरुन्धती जैसी तपस्विनी विदुषी भी थीं।

प्राचीन धर्मशास्त्रों तथा महाभारत में भी ऋषि, मुनि तथा सिद्ध शब्दों का उपयोग किया गया है। ऋषि तथा मुनि में समानताओं के साथ विभिन्नताएं भी हैं। उनकी यह भिन्नता उनके कार्यों तथा रहन-सहन, तप विधि, वेषभूषा आदि से ही प्रकट होती है। प्रारंभ में ऋषि धारा तथा मुनि धारा पृथक्-पृथक् थी किन्तु कालान्तर में यह विभिन्नता अस्पष्ट होती गई और ब्रह्म रूप में समान ही प्रतीत होने लगी।

ऋषियों का वर्गीकरण भी सर्वथा निरपेक्ष न मानकर सापेक्ष मानकर ही किया गया है। उनमें कोई स्पष्ट भेदक रेखा नहीं खींची जा सकती, अपितु उनकी तपस्या, तप, शक्ति एवं प्रकृति के आधार पर ही उनके वर्गीकरण का प्रयास किया गया है।

ऋषियों की उत्पत्ति, सृष्टि का आरंभ तथा ऋषियों के जन्म से संबंधित अनेक अद्भुत एवं आश्चर्यजनक कथाएं महाभारत तथा अन्य धर्म ग्रंथों में वर्णित हैं। महर्षि अगस्त्य का जन्म कुम्भ से माना जाता है। महर्षि च्यवन की माता के गर्भ से च्युत होने के कारण ही उनका नाम च्यवन पड़ा। औरव मुनि की जन्म कथा अपनी माता की जंघा को चीरकर होना वर्णित है। अष्टावक्र पिता कहोड़के शाप के कारण आठ अंगों से बक उत्पन्न हुए थे। महर्षि व्यास अपनी माता सत्यवती के कुमारी अवस्था में ही उत्पन्न हो गए थे। महाभारत काल में भी कौमार्य अवस्था में संतानोत्पत्ति की निंदा होती थी। इसका प्रमाण यह है कि पराशर से समागम के पश्चात् उत्पन्न कृष्ण द्वैपायन व्यास को सत्यवती उसी द्वीप में छोड़कर चली गई थीं, जहां वे उत्पन्न हुए थे। किन्तु कालान्तर में भगवान विष्णु के अंशावतार महर्षि व्यास ने अनेकों, लोककल्याण के महान् कार्य करके संस्कृत साहित्य एवं भारतीय संस्कृति को अनेक अमूल्य ग्रंथरत्न प्रदान किया। इसी प्रकार जिने भी ऋषियों का जन्म अप्राकृतिक रूप से हुआ







है उनका कुद न कुछ वैज्ञानिक तथ्य अवश्य रहा होगा किन्तु उसका कोई सुदृढ़ प्रमाण उपलब्ध न होने से उन्हें यथावत् ही स्वीकार करना युक्तिसंगत होगा।

आज मनुष्य के जितने भी गोत्र उपलब्ध हैं, से सभी ऋषियों के नामों पर ही आधारित है। इससे प्रमाणित होता है हम सभी के पूर्वज ऋषि ही रहे हैं और उन्हीं के नाम पर हमारा वंश एवं गोत्र का नाम है। महाभारत तथा उनके धर्म ग्रंथों में ऋषियों के वंशानुक्रमण का वर्णन बिखरे हुए रूप में उपलब्ध था जिन्हें संजोकर एक सूत्र में एकत्र कर पूर्व में ही वर्णित किया जा चुका है।

तपस्या के संबंध में महाभारत में विशद विवरण प्राप्त है। अन्य धार्मिक ग्रंथ भी इस संबंध में अत्यधिक विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत करते हैं। वैदिक कालीन तप, रामायण कालीन तप, महाभारतकालीन तप तथा महाभारत के परवर्ती समय में तप की विधि में विभिन्नता है। वैदिक ऋषियों की तपस्या को पश्चात् के ऋषियों से कहीं अधिक दुष्कर एवं शारीरिक कष्ट से परिपूर्ण वर्णित किया गया है। रामायण तथा महाभारत कालीन ऋषियों की तपस्या में कतिपय भिन्नता के साथ समानता ही अधिक है। महाभारतकाल में ऋषि अनेक प्रकार से तपस्या करते थे। उनकी तपस्या की विधि के आधार पर ही कहीं कहीं ऋषियों का वर्गीकरण किया गया है। यथा मरीचिय ऋषि अर्थात् सूट अथवा चन्द्रमा की किरणों का वान करते हुए तपस्या करने वाले, फलेप अर्थात् तप की अवधि में, बछड़े के दूध पीते समय उसके मुख से निकले हुए फैन का ही आहार करने वाले ऋषि, शीर्णपर्णाशन ऋषि अर्थात् केवल सूख कर गिरे हुए पत्तों का आहार करने वाले ऋषि इत्यादि। इसी तरह तप की अवधि में किये जाने वाले कार्य के आधार पर वर्गीकृत ऋषियों एवं मुनियों विस्तृत वर्णन संबंधित अध्याय में किया जा चुका है।

सुदीर्घकालीन एवं अत्यंत दुष्कर तपस्या से ऋषियों ने अनेकानेक लौकिक एवं अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। अपनी उन सिद्धियों का वे जनहित में प्रयोग करते थे। कतिपय अपवाद भी प्राप्त होते हैं जहाँ ऋषियों ने अपनी तपः शक्ति का दुरुपयोग कर जनहित को हानि पहुंचाया। लोक संग्रहार्थ ऋषियों ने जब अपनी तपःशक्ति का प्रयोग किया तब उनकी







प्रसिद्धि तो हुई ही, साथ ही उनकी शक्तियाँ और विस्तृत हुई, किन्तु जब-जब उन्होंने शाप आदि के द्वारा तपःशक्ति का दुरुपयोग किया तब-तब उनकी शक्ति क्षीण हुई।

ऋषियों ने अपनी तप अवधि में अनेकों देवताओं की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया एवं इच्छित वरदान प्राप्त किया था। उन्होंने शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र इन देवों तथा सरस्वती की स्तुति किया था। उनके तप स्थल भिन्न-भिन्न होते थे। कतिपय ऋषि अपने आश्रमों में ही परिवार सहित रहते हुए गृहस्था जीवन बिताते हुए तपस्या करते थे। कतिपय ऋषियों द्वारा वन के एकांत में तप करने का वर्णन प्राप्त है। कुछ ऋषि पुण्य तीर्थ-स्थानों में भी तप करते थे। नदी के तट पर, हिमालय आदि पर्वतों पर तथा अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए ऋषियों द्वारा की गई तपस्या महाभारत में वर्णित है।

इन ऋषियों के जीवन से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण स्थान आज दान आदि के द्वारा अपने को पवित्र एवं कृतार्थ समझता है। हरिद्वार, हिमालय, आदि में अनेक तीर्थ स्थल आज भी ऋषियों के जीवन तप आदि को प्रमाणित करते हुए स्थित हैं। महर्षि वेदव्यास का एक मंदिर गंगा के पास रामनगर में स्थित है। जहाँ काशी के लोग आज भी वर्ष में एक बार दर्शन प्रत्येक काशी निवासी का अनिवार्य कर्तव्य मानते हैं। इन तीर्थ स्थलों से प्राचीन ऋषियों की महत्ता आज भी प्रतिपादित होती है।

ऋषियों ने तपस्या से अनेक शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ अर्जित कर उनके द्वारा अनेक लोक कल्याण के कार्य संपादित किया है। प्रत्येक असहाय एवं शरण में आए हुए बिना किसी भेदभाव के सहायता की है। शरण में आया हुआ व्यक्ति राजा हो, सामान्य मनुष्य हो अथवा पशुपक्षी ही क्यों न हो, उन्होंने निष्कपट भाव से उनकी रक्षा एवं सहायता की थी। लोक संरक्षणार्थ ऋषियों ने अनेक अद्भुत कार्य किए। देवताओं की सहायता करने तथा उनकी राक्षसों से रक्षा करने हेतु महर्षि अगस्त्य ने तो समुद्र का ही पान कर लिया था। उन्होंने ही वातापि नामक राक्षस को, जो ऋषियों की हत्या कर उन्हें त्रस्त करता था, खाकर पचा लिया था और लोगों की रक्षा की थी। सूर्य का मार्ग अवरुद्ध करने वाले अहंकारी विन्ध्यपर्वत को उन्होंने अपनी तपःशक्ति से बढ़ने से रोक दिया था।







जाजलि मुनि अपनी जटाओं में घोंसला बना लिए पक्षियों को नुकसान न पहुंचाने हेतु अनेक वर्षों तक उसी अवस्था में तप करते हुए उनकी रक्षा करते रहे। शरण में आयी हुई गायों को महर्षि च्यवन ने अभयदान दिया था।

इस प्रकार महर्षि दया एवं कल्याण करते समय शरणार्थी की जाति, उपाधि अथवा किसी भी स्थिति पर विचार न करते हुए समान एवं निरपेक्ष रूप से उनकी सहायता करते थे।

ऋषियों ने अनेक बार मनुष्य एवं पशु पक्षी का जाति क्षय रोका था। महर्षि आस्तीक के द्वारा जनमेजय के सर्पयज्ञ को समाप्त करवा कर ऋषियों ने सर्प जाति का क्षय होने से बचा लिया था। इसी तरह पराशर के भी राक्षस सत्र की समाप्ति के द्वारा ऋषियों ने राक्षसों के वंश का अंत होने से बचाया था।

परशुराम ने जब इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रिक्त कर दिया था तब भी ऋषियों ने ही उनके क्रोध का निवारण कर क्षत्रियों का विनाश रोका था।

कतिपय महाभारतीय ऋषि ब्रह्म ज्ञान के साथ ही शास्त्रास्त्र का ज्ञान भी समान रूप से रखते थे। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वस्थामा तथा परशुराम आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उन्हें धर्मज्ञान, अध्यात्मक तथा ब्रह्मज्ञान के समान ही शास्त्रास्त्रों का भी ज्ञान था। वे मंत्रोच्चार के साथ ही बाणसंधान भी उतनी ही कुशलता के साथ करते थे। सामरिक ज्ञान तथा रण कौशल का प्रयोग वे प्रायः जनकल्याण के लिए करते थे, परन्तु इस संबंध में भी कतिपय अपवाद प्राप्त होते हैं।

महर्षिगण संपूर्ण देश में, राज्यों में भ्रमण कर, उपदेश तथा तपशक्ति से संपादित अनेक कार्यों के द्वारा लोक रक्षण एवं लोक कल्याण के कार्य में सदैव प्रवृत्त रहते थे। कतिपय महर्षि तो अन्य लोकों में भी जाकर भ्रमण करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति करते थे।

प्रत्येक सामाजिक कार्य में उपस्थित होकर उस कार्य को सुव्यवस्थित एवं सफलतार्पूक पूर्ण करने में महर्षिगण सदैव सहायता करते थे। उस समय में अपने आशीर्वाद







तथा वरदान से सामान्य मनुष्यों को वे अनुगृहीत भी करते थे। विवाह आदि कार्य में ऋषियों की उपस्थिति अनेक स्थानों पर महाभारत में वर्णित है।

लोक कल्याण का कार्य करने वाले मनुष्य, देवता आदि की महर्षिगण समान रूप से प्रशंसा किया करते थे। ऐसा करके वे उन्हें पुनः अच्छे कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करते थे।

ऋषियों ने राजसंस्थाओं का समर्थन ही किया है। कतिपय राजाओं का, जो प्रजा विरोधी कार्य करने वाले थे, विरोध भी किया है किन्तु राजसंस्थाओं को ऋषियों द्वारा समर्थन प्राप्त रहता था। कतिपय ऋषियों का राजाओं के सभासद होने एवं उनकी राजसभा की शोभा बढ़ाने के अनेक प्रसंग महाभारत में उपलब्ध है। अपनी पप शक्ति द्वारा ऋषियों ने राजाओं के राज्य की रक्षा भी अनेक बार की थी। राजाओं के राज्य में अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि जैसे दैवी आपदाओं में भी, अपनी तप शक्ति द्वारा उनका निवारण कर राजाओं तथा सामान्य जन को कृतार्थ किया था। ऐसे अनेकों उदाहरण महाभारत में पाये जाते हैं जिनका विशद वर्णन पूरे के अध्याय में ही किया जा चुका है।

ऋषियों का स्वभाव, उनकी व्यक्तिगत विशेषताएं, न्यूनताएं उनके कार्यों, विचारों से ही प्रकट होते हैं। महाभारत में सभी प्रकार की प्रकृति वाले ऋषियों का वर्णन है। क्रोधी, उग्र, शांत, गंभीर, सहनशील एवं द्वेष-वैर से युक्त भाव वाले ऋषियों का भी वर्णन महाभारत में है। कतिपय ऋषियों में कई विशेषताएं एक साथ ही होती थीं, किन्तु कतिपय ऋषि तो अपनी स्वभावगत विशिष्टता के कारण ही प्रसिद्ध थे। उदाहरणार्थ दुर्वासा ऋषि सदैव क्रोधी ऋषि के रूप में ही वर्णित हैं। यदि क्रोध का पर्याय दुर्वासा को कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी तरह अपने उग्र स्वभाव के लिए परशुराम प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपनी उग्रता के कारण ही इक्कीस बार पृथ्वी से क्षत्रियों का नाश कर डाला था। आज भी अत्यंत क्रोधी मनुष्य को दुर्वासा कहकर संबोधित किया जाता है। अपने अत्यंत शांत एवं गंभीर स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका नाम ही इन्द्रियों को तथा क्रोध आदि समस्त दुर्गुणों को वश में करने के कारण ही वसिष्ठ पड़ा था। महर्षि कपित भी अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध वर्णित हैं। उन्होंने अपनी प्रज्वलित दृष्टि से ही हजारों सगर पुत्रों को भस्म कर डाला था।







ऋषियों की इस विशिष्ट प्रकृति से कई बार भीषण जनहानि भी हुई एवं लोकहित के बदले लोक अहित हुआ था। यथा परशुराम के क्रोध के फलस्वरूप क्षत्रियों का वंश ही समाप्त होने लगा था। शाप आदि के द्वारा भी ऋषियों ने अनेक बार मनुष्यों एवं वन्य प्राणियों का अहित किया था। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिकार निर्ममता आदि अनेक न्यूनताएं कतिपय ऋषियों के स्वभाव में आ जाने से अनेक समय में धन-जन की हानि हुई थी।

इन न्यूनताओं के बावजूद भी ऋषियों की अनेक विशिष्टतायें महाभारत के अनेकों घटनाओं द्वारा प्रकट होती हैं।

प्राचीन ऋषियों एवं महाभारतीय ऋषियों ने अपनी तपस्या, गवेषणा एवं सुदीर्घकालीन अध्ययन के द्वारा धर्म, दर्शन एवं नीति संबंधित अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किया है। उन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धांत आज ग्रंथ रूप में प्रतिष्ठित है यथा श्रीमद्भगवद्गीता, पाराशर-गीता, हारीत गीता इत्यादि। श्रीमद्भगवद्गीता ने तो भारतीय जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया है। भारत ही क्यों संपूर्ण विश्व आज गीता के रहस्यमय एवं उपयोगी सिद्धांतों से प्रभावित है। विदेशों में भी अनेक विदेशी भाषाओं में गीता का अनुवाद किया जा चुका है ताकि वहां की, संस्कृत, भाषा जानने वाली सामान्य जनता भी गीता के उपदेशों एवं उसके दर्शन को समझ सके। आज भारतीय चिन्तन वेदों के समान ही महाभारत से भी प्रभावित हैं एवं उसके दर्शन को समझ सके। आज भारतीय चिन्तन वेदों के समान ही महाभारत से भी प्रभावित है एवं उन्हीं में वर्णित समस्त धर्म, दर्शन एवं नीति संबंधित सिद्धांत भारतीय नैतिकता के मानदण्ड भी है। मोक्ष के विषय में महाभारत के अंतर्गत श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित सिद्धांत ही सर्वाधिक मान्य एवं प्रभाणित हैं।

वेद की भाषा अत्यंत क्लिष्ट एवं गंभीर होने के कारण सामान्यजन की समझ से बाहर हैं, किंतु रामायण एवं महाभारत की संस्कृत ने भारतीय जन मानस को अपने सिद्धांतों एवं अभिमत को समझने में अत्यंत सहायता दी है।







सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि आज के इस अशांति एवं अधर्म के युग में, महाभारत में वर्णित धर्म, नीति एवं दर्शन सबसे महत्वपूर्ण एवं अत्यंत उपयोगी है। महर्षि व्यास ने अपने ग्रंथ की कलियुग के समय उपयोगिता का अपने ही ग्रंथ में वर्णन किया है। जब महर्षि व्यास ने समस्त युगों का वर्णन करते हुए कलियुग का वर्णन किया है तब कहा है कि उस समय धर्म पृथ्वी पर से अपने सभी चरण ऊपर उठा लेगा और जब सर्वत्र अशांति, अधर्म एवं अनीति व्याप्त हो जाएगी तब श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश जो "भगवद्गीता" में वर्णित है, वह अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

व्यास का वह सत्य वचन आज यथार्थ रूप में प्रस्तुत है। आज सर्वत्र महाभारत एवं उसमें वर्णित धर्म एवं दर्शन के सिद्धांतों को जानने, उन्हें क्रियान्वित करने की नितान्त आवश्यकता है। भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व भी इन उपदेशों से लाभ-प्राप्त कर सकता है। आज उनके प्रचार एवं प्रसार की महती आवश्यकता है।

---०००---







## सन्दर्भ ग्रंथ सूची



सिद्धांत १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००



## सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- (१) श्री हरिकृष्णदास गोयन्दका :
- : ईशावास्योपनिषद्
  - : केनोपनिषद्
  - : कठोपनिषद्
  - : प्रश्नोपनिषद्
  - : मुण्डकोपनिषद्
  - : माण्डूक्योपनिषद्
  - : ऐतरेयोपनिषद्
  - : तैत्तिरीयोपनिषद्
  - : श्वेताश्वतरोपनिषद्
  - : वेदान्त दर्शन
  - : पातञ्जलयोगदर्शन
- (३) श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार :
- : नृहसिंहोत्तरपनीयेपनिषद्
  - : कैवल्योपनिषद्
  - : ब्रह्मबिन्दूपनिषद्
  - : मृदलोपनिषद्
  - : अक्षुपनिषद्
  - : अमृतनादोपनिषद्
  - : छान्दोग्योपनिषद्
  - : जाबालदर्शनोपनिषद्
  - : सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्
  - : उपनिषद् अङ्कः
  - : भावनोपनिषद्



## विष्णु संहिता

अथ विष्णुसंहिता

विष्णुसंहिता

(१)

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

(२)

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता

अथ विष्णुसंहिता



		:	श्रीमद्भागवत महापुराण
		:	स्कन्द महापुराणाङ्कः
(३)	श्रीराम शर्मा, आचार्य	:	बृहदारण्योपनिषद्
		:	ऋग्वेद
		:	यजुर्वेद
		:	सामवेद
		:	अथर्ववेद
		:	नारद पुराण
(४)	रामनारायण दत्त शास्त्री	:	महाभारत सम्पूर्ण
		:	वाल्मीकि रामायण
		:	हरिवंश पुराण
(५)	जयदयाल गोयन्दका	:	श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी
(६)	गोस्वामी तुलसीदास	:	रामचरितमानस
(७)	उदयवीर शास्त्री	:	वैशेषिक दर्शनम्
(८)	डॉ० गंगासागर राव	:	गङ्गायन ब्राह्मणम्
(९)	डॉ० जितेन्द्र	:	समराङ्गण सूत्रधार
(१०)	पं० सत्यव्रत	:	गोमिलगृह्यसूत्रम्
(११)	पं० परमेश्वरानन्द	:	निरुक्तम्
(१२)	डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र	:	बृहद्पाराशर होरा शास्त्र
(१३)	डॉ० उमेशचन्द्र शास्त्री	:	बौधायन धर्मसूत्रम्
(१४)	पं० रुद्रधर झा	:	तर्कभाषा
(१५)	श्री नारायण मिश्र	:	पाणिनीय शिक्षा
		:	न्याय दर्शन
(१६)	स्वामी ओमनन्द	:	पातञ्जलयोग प्रदीप
(१७)	रामप्रताप त्रिपाठी	:	वायुपुराणम्



## विष्णु सप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः (१)

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः (२)

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः

विष्णुसप्तमोऽध्यायः



		:	श्रीमद्भागवत महापुराण
		:	स्कन्द महापुराणाङ्क
(३)	श्रीराम शर्मा, आचार्य	:	बृहदारण्योपनिषद्
		:	ऋग्वेद
		:	यजुर्वेद
		:	सामवेद
		:	अथर्ववेद
		:	नारद पुराण
(४)	रामनारायण दत्त शास्त्री	:	महाभारत सम्पूर्ण
		:	वाल्मीकि रामायण
		:	हरिवंश पुराण
(५)	जयदयाल गोयन्दका	:	श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी
(६)	गोस्वामी तुलसीदास	:	रामचरितमानस
(७)	उदयवीर शास्त्री	:	वैशेषिक दर्शनम्
(८)	डॉ० गंगासागर राव	:	गङ्गायन ब्राह्मणम्
(९)	डॉ० जितेन्द्र	:	समराङ्गण सूत्रधार
(१०)	पं० सत्यव्रत	:	गोमिलगृह्यसूत्रम्
(११)	पं० परमेश्वरानन्द	:	निरुक्तम्
(१२)	डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र	:	बृहद्पाराशर होरा शास्त्र
(१३)	डॉ० उमेशचन्द्र शास्त्री	:	बौधायन धर्मसूत्रम्
(१४)	पं० रुद्रधर झा	:	तर्कभाषा
(१५)	श्री नारायण मिश्र	:	पाणिनीय शिक्षा
		:	न्याय दर्शन
(१६)	स्वामी ओमनन्द	:	पातञ्जलयोग प्रदीप
(१७)	रामप्रताप त्रिपाठी	:	वायुपुराणम्







(१८)	डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य	:	कूर्म पुराण
(१९)	पं० रामतेज पाण्डेय	:	गरुण पुराण
(२०)	बलदेव उपाध्याय	:	अग्निपुराण
(२१)	राधेश्याम खेमका	:	मत्स्य पुराण
(२२)	जगदीशलाल शास्त्री	:	लिङ्ग पुराण
(२३)	ऋषिकेश शास्त्री	:	वराह पुराण
(२४)	मोतीलाल जालान	:	वामन पुराण
(२५)	मुनिलाल गुप्त	:	विष्णु पुराण
(२६)	तारिणीश झा	:	बृहन्नारदीय पुराण
(२७)	स्वामी परमानंद	:	अवधूत गीता
(२८)	स्वामी जी महाराज	:	ईश्वर गीता
(२९)	एस०व्ही०ओका	:	उत्तरगीता
(३०)	पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र	:	अद्भुत रामायण
(३१)	पं० हरगोविंद शास्त्री	:	अमरकोश
(३२)	पं० ज्वाला प्रसाद	:	देवी गीता
		:	शिव गीता
		:	गणेश गीता
(३३)	विनायक गणेश आप्टे	:	सूत-संहिता
(३४)	डॉ० राधाकृष्णन	:	भारतीय दर्शन
(३५)	पं० काशीनाथ	:	चरक संहिता
(३६)	मुनिलाल	:	विवेक चूड़ामणि

---०००---







(१८)	डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य	:	कूर्म पुराण
(१९)	पं० रामतेज पाण्डेय	:	गरुड पुराण
(२०)	बलदेव उपाध्याय	:	अग्निपुराण
(२१)	राधेश्याम खेमका	:	मत्स्य पुराण
(२२)	जगदीशलाल शास्त्री	:	लिङ्ग पुराण
(२३)	ऋषिकेश शास्त्री	:	वराह पुराण
(२४)	मोतीलाल जालान	:	वामन पुराण
(२५)	मुनिलाल गुप्त	:	विष्णु पुराण
(२६)	तारिणीश झा	:	बृहन्नारदीय पुराण
(२७)	स्वामी परमानंद	:	अवधूत गीता
(२८)	स्वामी जी महाराज	:	ईश्वर गीता
(२९)	एस०व्ही०ओका	:	उत्तरगीता
(३०)	पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र	:	अद्भुत रामायण
(३१)	पं० हरगोविंद शास्त्री	:	अमरकोश
(३२)	पं० ज्वाला प्रसाद	:	देवी गीता
		:	शिव गीता
		:	गणेश गीता
(३३)	विनायक गणेश आप्टे	:	सूत-संहिता
(३४)	डॉ० राधाकृष्णन	:	भारतीय दर्शन
(३५)	पं० काशीनाथ	:	चरक संहिता
(३६)	मुनिलाल	:	विवेक चूड़ामणि

---०००---



























